देहातीत

महापुरुष आरिफ, पीर-पैगम्बर जब धरती पर पदार्पित होते हैं, तो यद्यपि वे देह में आते हैं, लेकिन देह रूप में होते हुए भी सदा सर्वदा, हर पल, हर श्वास में देहातीत ही होते हैं। **'देहातीत'** विषय मधुर, कर्कश, स्वादिष्ट, कड़वा व अन्यथा सब कुछ होते हुए परम आनन्दमय है, आप अति श्रद्धा-विश्वास, एकाग्रता एवं पूर्ण समर्पण से इसका श्रवण कीजिए, निस्सन्देह आपका जीवन आनन्दमय हो जाएगा। जितनी भी कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार सृष्टि दृश्यमान है, जिसे हम अपनी आँखों से देख, कानों से सुन, जीभ से चख, त्वचा से स्पर्श एवं नाक से सूँघ सकते हैं, वह प्रभु की माया है। स्वयं में साकार एवं दृश्यमान यह माया, निराकार में हुई शिव-शक्ति-क्रीड़ा के चिन्मय आनन्द का चिदाभास है। साकार प्रपंचमय मायिक जगत में सर्वोत्कृष्ट, परम विलक्षण, विशेष चमत्कारिक एवं परम रहस्यमयी सुकृति मानव-देह है।

मानव-देह में प्रभु ने मुझे अपनी चेतनायुक्त अति चमत्कारिक बुद्धि से नवाजा है। इसका कार्य मात्र इतना है, कि इसके द्वारा मैं जान जाऊँ, कि 'मैं कुछ नहीं जानता।' अमुक समय, अमुक ग्रह-नक्षत्र में विशेष माता-पिता के अंश से मैं पृथ्वी पर क्यों लाया गया हूँ, मैं नहीं जानता। देह का कोई प्रोग्राम मुझे अथवा किसी को मालूम नहीं है, क्योंकि इसकी कोई स्थिति मेरे हाथ में नहीं है। मेरी देह कब मृतक होगी, मैं नहीं जानता। यदि मैं स्वयं को देह मान भी लूँ, कि मैं अमुक-अमुक नाम-रूप की मानव-देह हूँ और चिन्ताएँ छोड़ कर सद्गुरु-कृपा से गहन चिन्तन करूँ, तो यह देह ही देहातीत क्षेत्र में प्रविष्टि

का **साधन** बन जाती है। देह रूप में जो कुछ भी मैं प्रारब्धवश, लालसाओं वश, वासनावश कर रहा हूँ वह सब कार्य मेरे बिना भी हो सकता था, हो रहा है और मेरे बाद भी होगा। अधिकतर आशा यही है, कि वह मेरे बिना अधिक अच्छा होगा।

देह रूप में एक दिन **'मैं'** था नहीं और एक दिन रहूँगा नहीं। आज मैं हूँ तो मैं क्यों हूँ? यह हूक एक हुंकार रूप में सद्‌गुरु की प्रेरणा व आह्वान बन कर जब उठती है, तो सम्पूर्ण तन्त्रिका तंत्र को हिलाकर देह सहित जगत में प्रकट होती है। **'मैं'** (जीवात्मा) देह से, देह द्वारा, देहातीत क्षेत्र में प्रविष्टि पा लूँ, यही मानव-देह का लक्ष्य है। जो मात्र कृपा-साध्य है। मेरा कोई ऐसा प्रयत्न या कर्म नहीं है, जिसके द्वारा मैं देह से देहातीत हो जाऊँ। उसके लिए एक विशिष्ट मानसिकता चाहिए जिसमें मैं तहेदिल और रूह से यह जान जाऊँ और मान जाऊँ, कि मैं कुछ नहीं जानता। जो मैं जानता हूँ, मैं वही क्यों जानता हूँ, जो मैं नहीं जानता वह मैं क्यों नहीं जानता, जो मैं जानना चाहता हूँ मैं वही क्यों जानना चाहता हूँ और जो मैं नहीं जानना चाहता वह क्यों नहीं जानना चाहता, मैं यह सब कुछ नहीं जानता। मैं इस जान्यता एवं मान्यता की अनुभूति कर लूँ।

मैं हूँ तो क्यों हूँ, यह बुद्धि से उठा प्रश्न नहीं है। मन-बुद्धि से बाहर रूह की गहराइयों से उठी जिज्ञासा है। मन, बुद्धि और साकार देह सहित जगत की समस्त सीमाओं से परे कोई विदेह महापुरुष-सद्‌गुरु ही मेरी जिज्ञासा को शान्त करने में सक्षम है। इस जिज्ञासा की शान्ति के लिए जिज्ञासु, जीवन एवं साकार देह व जगत की समस्त सीमाओं का उल्लंघन कर लेता है। वहाँ जिज्ञासु में देह से, देह द्वारा, देह के लिए, देह के दौरान, देह से बाहर (देहातीत) जाने की आर्तनाद, वहशियत एवं जनून पैदा हो जाता है। देहातीत क्षेत्र न तो देह का अतीत या past है और न देह का वर्तमान है। देह के अतीत में देह और उसका **सर्व** रहता है, देह का वर्तमान देह है, उसमें भी **स्व** सहित **सर्व** होता ही है और शैशव से शव तक जितनी भी स्थूल देह में विभिन्न अवस्थाएँ एवं भविष्य हैं, वे सब देह व जगत सहित हैं। देहातीत, देह

के अतीत, नहीं बल्कि देह से परे का क्षेत्र है। इस मानसिक स्थिति में साकार देह की कोई भी विधा या मर्यादा नहीं होती।

साकार देह व देहों का निराकार देहातीत क्षेत्र है। साकार से निराकार में प्रविष्टि के लिए साकार की वह अवस्था अधिगृहीत करनी होगी, जो साकारातीत है। साकार का अतीत साकार ही होगा क्योंकि किसी देह का अतीत (भूत) उसकी समस्त पीढ़ियों में साकार ही होगा। किसी व्यक्ति, कुल, खानदान, देश, धर्म, जाति, समाज, संस्था, मठ आदि के अतीत को अपने भविष्य का ज्ञान नहीं होता लेकिन भविष्य की योजनाएँ, आकांक्षाएँ आदि रहती हैं। कोई कर्म, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, प्राप्ति, खोना आदि अपनी समस्त सीमाओं के अतिक्रमण द्वारा अति से अतीत हो जाए, तो उस समय वह सब कुछ अपने अतीत, जिसका वह भविष्य है, उससे बिल्कुल परे हो जाता है। जैसे देह **का** भविष्य, जो भस्मी है वह देहातीत है, लेकिन भस्मी का अतीत देह नहीं है। देह है, तो भस्मी होगी ही लेकिन जब भस्मी होगी तो वह भस्मी है, है और है। भस्मी थी, भस्मी है और भस्मी रहेगी—इसे कहा है—देहातीत। यह वह अतीत है मानस की वह अवस्था है, जहाँ साकार देह व जगत सम्बन्धी समस्त प्रतीतियाँ समाप्त हो जाती हैं।

साकार से निराकार की ओर गति के लिए **'अति'** आवश्यक है। अति शब्द से अतीत शब्द बना है। देह+अतीत=देहातीत। **''अति द्वारा देह की समस्त सीमाएँ तोड़कर जहाँ हम पहुँचते हैं, उस मानसिक अवस्था का नाम 'देहातीत' है। इसके बाद जहाँ (साकार देह सहित जगत) से हम चलें हैं, उसकी प्रतीति समाप्त हो जाती है एवं निराकार की अनुभूति होने लगती है।''** इस अवस्था में भूत (अतीत), वर्तमान, भविष्य, इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान, देश-काल, धर्म-कर्म, लिंग, सम्बन्ध, माया के तीनों गुण एवं ब्रह्माण्ड का सब कुछ शून्य में लय हो जाता है। **'स्व'** के साथ **'सर्व'** होता ही है। देहातीत क्षेत्र में **'स्व'** नहीं रहता इसलिए **'सर्व'** भी नहीं होता। देहातीत क्षेत्र में कुल देह अपने सर्वस्व (सर्व और स्व) सहित नहीं रहती।

घर की बाउन्ड्री वॉल घर और बाहर की सीमा निश्चित करती है। घर

को सीमित करने वाली बाउन्ड्री भी घर की है और बाहर भी घर का है। यह सीमा घर की है, बाहर की कोई सीमा नहीं है। यदि घर की बाउन्ड्री वॉल को हटा दिया जाए, तो घर भी बाहर जैसा ही हो जाएगा। घर की सीमा, घर को बाहर से पृथक् व सीमित करती है। जब सीमा हटा दी गई तो घर और बाहर एक ही हो गया। अर्थात् घर असीम हो गया और असीम बाहर सीमित नहीं हुआ। अन्दर और बाहर शब्द सापेक्षिक हैं। बाहर को बाहर तब कहेंगे, जब अन्दर कुछ होगा। इसलिए तब अन्दर-बाहर शब्द ही नहीं रहे। जब हम देह को नाम-रूप में सीमित करते हैं, तो उस सीमा से परे देह का देहातीत है। जब हम सद्गुरु-कृपा से इस सीमा को हटा कर उस मानसिक स्थिति में प्रविष्टि पा लेते हैं, तो वहाँ देह या देहातीत नाम की कोई वस्तु नहीं होती। हम सर्वस्व से परे हो जाते हैं। **'स्व'** होगा तो **'सर्व'** होगा। इस प्रकार देह होगी तो देहातीत होगा। इस स्थिति में **'मैं'** एक और अनेक दोनों से परे होता हूँ।

कृपया एकाग्र करें, मैं पुनः वर्णन करूँगा। मानव-देह स्वयं में असीम है, लेकिन नाम-रूप की सीमा इसे सीमित कर देती है। सीमा घर की है तथा घर और बाहर के बीच है। सीमा और बाहर दोनों घर के हैं। बाहर का घर नहीं है और बाहर की सीमा नहीं है। यदि बाहर की सीमा होती तो वह बाहर न होता। सीमा और बाहर दोनों का Common Factor **'घर'** है। सीमा **'घर'** की ही है, बाहर घर का है लेकिन बाहर घर का **ही** नहीं है। बाहर अन्य घरों का भी है। देहातीत, देह और देहों से परे है और सबका एक ही है। घर में जो कुछ परिवर्तन, परिवर्द्धन, नवीनीकरण, संशोधन आदि होता है वह बाहर से होता है। घर में कुछ काम होना हो तो सामान बाहर से आएगा और दरवाज़े के ज़रिए आएगा। इसी प्रकार देह का समस्त प्राकट्य, पालन, परिवर्तन, परिवर्द्धन, नवीनीकरण और संहार देहातीत से होता है।

हम ज्ञात, अज्ञात रूप से परिवर्तन चाहते हैं, जबकि हर क्षण, देह में स्वतः परिवर्तन होते रहते हैं, कुछ चाहे, कुछ अनचाहे। दुःख कोई नहीं चाहता, परन्तु **जीवन में दुःख आते हैं और दुखाते हैं।** दुःख आना और

उनका दुखाना दो पृथक् आयाम हैं। देह से या देहों से ममत्व होगा, तो दुःख आएँगे और दुखाएँगे। नहीं तो सुख-दुःख रूपी परिवर्तन, प्रकृति का नियम है। इन्हें आनन्द में देखने के लिए देह से देहातीत होना है। देहातीत में सीमाएँ नहीं हैं। घर के बाहर का रसास्वादन करने के लिए सीमा लाँघनी होगी; चाहे दरवाजे से, चाहे बाउन्ड्री वॉल कूद कर और चाहे तोड़ कर।

देह रूपी घर की सीमा मेरे नाम-रूप की परिकल्पना है। जैसे ही मैंने स्वयं को देह के नाम-रूप से पहचाना, तुरन्त मेरी सीमाएँ बन गईं। देह के एक बन्धन ने मुझे अनेक बन्धनों में जकड़ लिया। मैं अपने देहातीत से वंचित हो गया। मुझे देह की धारणा हो गई, कि 'मैं देह हूँ।' नाम-रूप की सीमाएँ जन्मों-जन्मान्तरों में पुष्ट होती रहीं, जिन्हें होश सम्भालते ही मैं परिपुष्ट करता रहता हूँ। कुल, जाति, पद, प्रतिष्ठा, परिवार, धर्म, कर्म, कर्तव्य, रीति, रिवाज, परम्परा, नाम, यश आदि-आदि के असंख्य बन्धन देह के साथ नाम-रूप में बंधने के कारण हैं। जो कुछ मेरे पास होता है वह सीमित ही होता है। देह का बन्धन व इन विधाओं की तथाकथित सीमाओं की दीवार इतनी सुदृढ़ हो चुकी है, कि मैं इसके तोड़ने की बात सोच भी नहीं सकता।

'मैं' (जीवात्मा) देह और देहातीत दोनों से परे ब्रह्माण्डातीत था। लेकिन मैं देह धारणा में देह की असंख्य तथाकथित सीमाओं में बँध गया। इन सीमाओं में रहते-रहते मैं भूल गया, कि घर का बाहर भी मेरा है। सद्गुरु-कृपा से किसी जन्म में घर के बाहर की स्मृति जाग्रत हुई। मैं देह से उस स्थिति में जाऊँ, जहाँ न मैं देह हूँ न जगत हूँ; जहाँ साकार देह व जगत से सम्बन्धित प्रत्येक विधा का अभाव हो जाए। लेकिन बाहर जाने के लिए घर की सीमा की दीवार को मैं यदि न लांघ सकूँ, न तोड़ सकूँ और न द्वार खोल सकूँ, तो मात्र आर्तनाद करके चिल्ला सकता हूँ, कि मुझे कोई बाहर निकालो।

यज्ञ, हवन, सद्गुरु-सेवा, प्राणायाम, भजन, कीर्तन, ध्यान, समाधि, तीर्थ यात्रा आदि देह से देहातीत होने की चाहत में किए गए प्रयत्न हैं। वह चाहना

और प्रयत्न चाहे फलीभूत न हों, लेकिन निष्फल नहीं होते। देह व उस पर आधारित जगत की मेरी परिकल्पित सीमाओं की दीवार इतनी सुदृढ़ है, कि मेरा कोई प्रयत्न और चाहत उसे न तोड़ सकता है न फलांग सकता है। उस दीवार में जो द्वार है, उसका अधीश व स्वामी द्वारकाधीश है। उसकी कृपा के बिना वह द्वार पार नहीं किया जा सकता। मेरा कर्म मात्र त्राहिमाम् त्राहिमाम् पुकारते हुए आर्तनाद करना है, कि ''प्रभु मुझे देह से देहातीत ले जाओ।''

निर्माण, पालन और संहार तीन विधाओं में कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की दृश्यमान सृष्टि प्रपंच है। इनमें संहार, प्रपंच का एक ऐसा अंग है जो प्रपंच के उन्मूलन की आध्यात्मिक वैज्ञानिक विधि है। संहार में ज्ञान होता है, कि यह प्रपंच क्यों है? संहार ही प्रपंच का सार एवं श्रंगार है। प्रपंच के रहस्यों एवं ईश्वरीय मन-माया के चमत्कार को देखने के लिए इस प्रपंच में प्रविष्ट होकर, उससे गुज़रते हुए, प्रपंच द्वारा, प्रपंच से बाहर आना होगा। बाहर आकर ही उसके रहस्यों का ज्ञान होगा, प्रपंच में रहते हुए यह सम्भव नहीं है। जितना प्रपंच है वह सब मेरी अवचेतना में है। इसलिए निर्माण, पालन और संहार तीनों अवचेतना में हैं। जब **'मैं'** (जीवात्मा) सम्पूर्ण प्रपंच की प्रतिनिधि अपनी एक मानव-देह की अवचेतना में स्वयं को निर्माण और पालन में पाता हूँ तो भ्रमवश संहार को भूल कर प्रपंच में लिप्त हो जाता हूँ।

देह समय, स्थान और स्थिति व परिस्थिति के अनुसार सतत् परिवर्तनशील है, क्योंकि **'काल'** के अधीन है। काल के तीनों अंग—समय, स्थान एवं स्थिति में से किसी एक का बन्धन टूट जाए तो काल-बन्धन समाप्त हो जाता है। महामानव काल-बन्धन से परे अपनी यथार्थ कारण देह का दिग्दर्शन कर लेते हैं। देह दो प्रकार की है—पहली Conceptual या दृष्टिगत देह, जिसका माँ के गर्भ में नौ महीने में निर्माण एवं जन्म होता है और शैशव से शव तक विभिन्न अवस्थाओं से गुज़रती है। दूसरी Factual देह काल-बन्धन से परे होती है। इस देह की अनुभूति के लिए एकान्त और एकाग्रता चाहिए। सम्पूर्ण काल प्रत्येक समय, स्थान और स्थिति सहित एक अकाल के अधीन है। महा+काल = महाकाल और महा+अकाल = महाकाल

इस प्रकार काल और अकाल दोनों का स्वामी महाकालेश्वर है।

देह का व देह से बनने वाला एक पदार्थ है, जो मैंने किसी जन्म में नहीं देखा। जन्मों-जन्मान्तरों में देह के दौरान मैंने देह व देहों के लिए असंख्य पदार्थों की चाहना की। उनके लिए प्रयत्न किए और बहुत से पदार्थ पाए भी, लेकिन वे सब निष्फल थे। वे सब निरर्थक, व्यर्थक और अनर्थक थे, क्योंकि उन पदार्थों ने मुझे मेरे अपने अखण्ड पद से च्युत कर दिया। देह से, देह का एक पदार्थ (भस्मी) मेरी देह का निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य **है।** उसकी चाहना मैंने कभी नहीं की। यदि मैं उसे पाने का प्रयत्न करता, तो यद्यपि वह पदार्थ (भस्मी) मुझे देह के रहते जीते जी नहीं मिलता, लेकिन मेरे प्रयत्न निष्फल नहीं होते। वे प्रयत्न सार्थक होते हैं, क्योंकि वे जीवन के वास्तविक **'अर्थ'** के लिए होते हैं। चाहे अर्थपूर्ति हो या न हो, वे सब सार्थक होते हैं। इन प्रयत्नों व प्रकरणों की सार्थकता की अनुभूति तब होती है, जब मैं प्रयत्न करते-करते थक कर, चूर होकर, बेहोश सा होकर उस द्वारकाधीश के सम्मुख ढह जाता हूँ, तो करुणा का सागर द्वारकाधीश कृपा करके द्वार खोल देता है। अतः मैं अपने प्रयत्नों से देह व देहातीत के बीच की सुदृढ़ दीवार के उस द्वार को लाँघ नहीं सकता। द्वारकाधीश (प्रभु) जब चाहेगा कृपा करके मुझे द्वार से पार दिखा देगा। धीरे-धीरे मैं प्रयत्न रहित व प्रयत्न मुक्त हो उसकी कृपा का आश्रित हो जाता हूँ।

मेरी चाहतों का प्रभु चरणों में पूर्णतः समर्पण हो जाए, यही मेरी चाहतों का सुफल है। जब इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक व इच्छाफल स्वयं प्रभु बन जाएँगे, तो कृपा अवश्य होगी। ''हे प्रभु ! मुझे मेरी देह की भस्मी दिखा दो। आपकी इच्छा से मुझमें यह इच्छा पैदा हुई है। यह इच्छा मानवीय नहीं हो सकती। हे प्रभु ! तुमने मुझे देह दी है तो देह का शव भी मेरा है और भस्मी भी मेरी है। तुमने मेरा शव और भस्मी कभी किसी जन्म में मुझे नहीं दिखाई। मैंने देह का बचपन, जवानी, प्रौढ़ावस्था, अमीरी, गरीबी, ऊँचा पद, निम्न पद, ज्ञान, अज्ञान सब कुछ देखा, लेकिन देह का जन्म, निद्रा, मूर्च्छा, शव, भस्मी कभी नहीं देखी। देह का जो-जो मैंने देखा, उसका तो अर्थ ही कुछ नहीं

है।'' देह के रूप में मेरा महत्त्व और मूल्यांकन देहातीत क्षेत्र से होता है। मेरी यह चाहत और इस दिशा में किए गए समस्त प्रयत्न जब ईश्वर समर्पित हो जाएँगे, तो वह द्वारकाधीश कृपा करके मुझे मेरे शव और भस्मी स्थिति की अनुभूति करा देगा। वह मुझसे प्रयत्न भी करवाएगा। जब मैं थक कर, हार कर **'त्राहि माम्'** की आर्तनाद करूँगा, तो वह अवश्य कृपा करेगा। वह देहातीत ले जाकर फिर भीतर ले आएगा। तब वह भीतर भी मेरे लिए बाहर की नाईं दिव्य होगा।

देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य भस्मी है, लेकिन भस्मी का अतीत कोई देह विशेष नहीं है। भस्मी पंच-महाभूतों की देह से परे तत्त्वातीत तत्त्व है। जीवन-काल में किसी भविष्य के साथ **'है'** शब्द नहीं लगता, केवल गा, गे, गी लगता है। मात्र इस एक भविष्य के साथ **'है'** लगता है। अतः जीवन-काल की किसी भी देह के दौरान **'मैं'** इसकी धारणा कर सकता हूँ, क्योंकि ये **'है'।** एक व्यक्ति विशेष की **भस्मी** उसकी कुल समष्टि की होगी। युगों-युगान्तरों के किसी भी व्यक्ति की हो सकती है, जो मर चुके हैं, अब हैं अथवा आगे पैदा होंगे। भस्मी शंकरत्व की प्रतिनिधि है।

पितरों का तर्पण और श्राद्ध वस्तुतः देहातीत का पूजन है। हमारे पूर्वज, बुजुर्ग जो अपनी देह को त्याग चुके हैं, उनकी सद्गति हो और हमें उनका आशीर्वाद मिले। हमने देह नहीं त्यागी है। अपने देहातीत को सद् एवं आनन्दमय करने के लिए पितृ पक्ष एक प्रकार से देहातीत व निराकार का पूजन है। हमारा निराकार देहातीत आनन्दमय और चेतनयुक्त होगा, तो साकार प्रकटीकारण **सद्'** होगा। जब कोई साकार देहधारी निराकार एवं देहातीत पितरों के प्रति श्रद्धा समर्पित करता है, तो साकार का निराकार सुन्दर हो जाता है। पितरों की सद्गति या दुर्गति निराकार भाव है। जिनकी देह छूट चुकी है उनकी सद्गति या दुर्गति का अर्थ यह है, कि मुझ पर साकार में उनका क्या प्रभाव है। युगों-युगान्तरों से जो देह छोड़ गये हैं, उनके लिए मैं विविध तर्पण, अर्पण करूँ, इसके पीछे छिपे रहस्य को हृदयंगम करना आवश्यक है।

मैं अपने देहातीत क्षेत्र का आशीर्वाद चाहता हूँ। देहातीत सबका एक ही है। वर्ष में 15 दिनों का पितृ पक्ष और उसमें श्राद्ध, पिण्डदान आदि प्रकरण जो महापुरुषों ने रखे हैं, वे प्रतीकात्मक हैं। मेरे माता-पिता, दादा-परदादा मेरे पितर हैं और मेरी आज से पहले की देहें भी मेरी अपनी देह का अतीत हैं। वे समस्त देहें पितर देहें हैं अर्थात् **मैं स्वयं का पितर हूँ।** उसका मेरे मानस पर पड़ा प्रभाव अनेक भावों में मेरी साकार देह को प्रभावित कर रहा है। अतीत की कुछ घटनाओं को जब भी हम याद करते हैं, तो वे हमारे हृदय को विदीर्ण करती हैं। मैं आक्रोश से भर उठता हूँ। वे घटनाएँ बीत चुकी हैं, लेकिन मेरी वह देह और उस पर आधारित जगत की छाप है, जो इस समय मेरे निराकार भाव में है। वह निराकार भाव मेरे मन को इस समय व्यथित कर रहा है, जिससे मेरी साकार देह तद्नुसार प्रभावित होती है।

पितृ पक्ष वस्तुतः विचार पक्ष है। हम विवेक बुद्धि से विचार करें, कि अपने बुर्जुगों की सद्गति के लिए हम **'गया'** गए अथवा किसी ब्राह्मण द्वारा उनका तर्पण, अर्पण, पिण्डदान आदि कराया तो अगले वर्ष पुनः श्राद्ध क्यों? इस बाह्य आडम्बर एवं कर्मकाण्ड के पीछे छिपी वास्तविकता अनावृत नहीं होती। वस्तुतः हम सब एक प्रसन्न भाव चाहते हैं, कि मेरे पूर्वज मुझ पर प्रसन्न हों। मेरी समस्त देहों में से एक देह जिसके वे बुजुर्ग हैं उनका आशीर्वाद मिले अर्थात् माता-पिता के देह छोड़ देने के बाद भी मेरे भीतर एक पुत्र है, जो हमेशा उनका बच्चा ही बना रहता है। मेरे पिता चालीस वर्ष की आयु में देह छोड़कर गए तब मैं 20 वर्ष का पुत्र था। आज पिता जी को गुजरे 30 वर्ष हो गए, अब मैं स्वयं पचास वर्ष का हूँ। अपने चालीस वर्ष की आयु में देह छोड़ कर गए पिता को बीस या बीस से कम का बच्चा बन कर ही याद करता हूँ। पचास वर्ष के मुझ को अपना चालीस वर्ष का पिता अब भी पिता ही लगता है। मेरे भीतर अब भी वह बच्चा है जो 20 वर्ष या बीस वर्ष से कम का है। वह बीस या बीस वर्ष से कम आयु की पुत्र देहें मेरी पितर हैं; जो 30 साल पहले गुजर चुकी हैं। मेरे भीतर के उस पुत्र ने अपने पिता को

याद किया अर्थात् मैं अपनी 20 वर्ष की आयु या इससे कम कम आयु की देह पर आधारित Memory की वजह से पिता देह को पिता मान कर याद करता हूँ। मुझे मेरी 20 या इससे कम वर्ष की आयु की देहें याद आ रही है।

सारांश में मुझे मेरी आज की अपनी देह की पितर देहें याद आ रही हैं, जो विह्वलता, पश्चात्ताप, वेदना, उद्वेग, छाप अथवा तथाकथित प्रभाव भाव रूप में मेरे मानस या देहातीत में है उसका प्रभाव मेरी साकार देह में यदा-कदा होता रहता है। जैसा मैं सुपुत्र या कुपुत्र था, वे देहें मुझे नहीं छोड़ रही हैं। श्राद्ध पक्ष या पितर विसर्जन, तर्पण, पिण्डदान आदि मेरे देहातीत का पूजन है, जिसे मैं देह के अतीत के रूप में पूजता हूँ। स्वर्गवासी पिता का पूजन मैं अपनी देह के अतीत की पुत्र देह के रूप में करता हूँ। मैं अपनी ही उस पुत्र देह का तर्पण करूँ, जिसका वह पिता था। वह पुत्र देह मेरा पितर है। मैं श्राद्ध कर्म, पितर तर्पण द्वारा देह छोड़ चुके पितरों को देह के बाद पूजन कर रहा हूँ, जो मेरी देह व मेरे जगत में अभी भी हैं। क्योंकि जिस देह पर वे आधारित थे, वे मेरी बचपन की देहें अब भी मेरे भीतर विद्यमान हैं। वे देहें मेरी अब की देह का अतीत हैं, जो वास्तव में मेरी पितर देहें हैं। वह मुझे कभी सुखी कभी दुःखी करती हैं।

देह का अतीत समय-समय पर विभिन्न स्थानों व स्थितियों में प्रकट असंख्य देहें हैं, साथ ही तद्नुसार प्रकट जगत की असंख्य देहें हैं। मेरे जीवन-काल का प्रत्येक एपीसोड साकार देह **जो, जब, जहाँ, जैसी भी थी, है और होगी; चार 'ज' से चार्ज होता है।** समय (जब), स्थान (जहाँ), स्थिति (जैसी) से जो देह बँधी है, वह काल से बँधी है। काल से बँधी हर देह कर्म-बन्धन एवं प्रारब्ध-बन्धन युक्त है। जो, जब, जहाँ, जैसी है वह काल-बद्ध देह है, क्योंकि काल-बद्ध सभी देहों का **देहभाव** (मैं देह हूँ) काल से पुष्ट व तुष्ट है, कि मैं काल से बँधा हुआ ही हूँ। काल-बन्धन युक्त देह भाव मेरा स्वभाव बन गया, कि मैं जो भी, जब भी, जहाँ भी, जैसा भी था, अब हूँ और हूँगा मैं काल से बँधा हुआ ही था, हूँ और हूँगा। इस काल-बन्धन के साथ कर्म-बन्धन स्वतः हो जाता है और यही देह धारणा है। धारणा देह की नहीं;

देह भाव की है। **'धारयति इति धर्म'** यह देह धारणा मेरा देह भाव है। इस भाव में देह ही जब मेरा धर्म बन गई, तो मैं **देह व देहों के लिए** पदार्थ एकत्र करने की दौड़ में अपने अविरल, विशुद्ध स्वरूप से पदच्युत हो गया और **'प्रारब्ध'** में बँध गया। प्रारब्ध के वशीभूत जो, जहाँ, जब, जैसी असंख्य देहों को मैंने एक देह मान लिया। मैं असंख्य देह व देहों के मोह से घिरा हुआ **एक देह भाववश** जन्मों-जन्मान्तरों की जीव -सृष्टि में युगों-युगान्तरों से भटक रहा हूँ। यदि मैं इस प्रकार अपने देह के अतीत को पितरों के तर्पण, श्राद्ध आदि द्वारा सन्तुष्ट करना चाहता हूँ, तो यह करोड़ जन्मों के बाद भी सम्भव नहीं होगा। इसके लिए मुझे शंकर की शरण की में जाकर उसके सुचिन्तन (भस्मी चिन्तन) द्वारा अपने देहातीत का संशोधन करना होगा। वह देहातीत एक ही है जो अब भी है। मुझे देह का अतीत नहीं **'देहातीत'** यानि देह से परे के क्षेत्र का चिन्तन करना होगा। उसमें प्रविष्टि के बाद मेरी सद्गति के अतिरिक्त कोई अन्य गति होगी ही नहीं:—

''हरे गुरौ सुभक्तिमाशु याति नान्यथा गति
विमोहनं हि देहिनाम सुशंकरस्य चिन्तनम्।''

भगवान शंकर का सुचिन्तन **'भस्मी चिन्तन है'** यह भस्मी चिन्तन मेरी देह व देहों के मोह को निर्मूल कर देगा।

देहातीत, देह का अतीत, वर्तमान, भविष्य सब कुछ है और तीनों से परे है। इस देहातीत के पूजन से सम्पूर्ण साकार जगत जो था, है और होगा उसका संशोधन एवं कल्याण होगा। सबका देहातीत एक ही है, लेकिन देह व देहों के अतीत भिन्न-भिन्न हैं। मैं यदि देह के अतीत का पूजन करता हूँ, तो मुझे देहातीत क्षेत्र का स्पर्श भी नहीं मिलेगा। मेरे साथ मेरा पितर पक्ष चिपका रहेगा। यदि मैं सद्गुरु-कृपा से देह की भस्मी के चिन्तन से देह से देहातीत में प्रवेश पा जाऊँ, तो वह मेरे ही नहीं समस्त विश्व के पितरों की सद्गति करवा देगा। वह मुझे मेरे सर्व सहित सौन्दर्य, ज्ञान, ख्याति, ऐश्वर्य, शक्ति एवं विरक्ति से विभूषित कर देगा। मैं स्वयं अपना पितर हूँ इसलिए मैं **'आत्मदान'** करूँ। जो भी मेरे मन में अपनी इस देह व देह के अतीत की देहों

के संकल्प-विकल्प हैं, उन सबका विसर्जन करूँ। यह कैसे हो? **'शंकरस्य सुचिन्तनम्'** भस्मी चिन्तन है जो मुझे देह व देहों के मोह से बचा लेगा।

जब मैं भस्मी चिन्तन द्वारा समाधिस्थ होकर आनन्दमयी स्थिति में हो जाऊँगा, तो मेरा **'स्व'** और **'सर्व'** यानि सर्वस्व जो था, है और होगा, आनन्दमय होकर प्रारब्धमुक्त हो जाएगा। सद्गुरु कहता है, कि ''जिनकी शीतल भस्मी तूने गंगा यमुना में प्रवाहित की है, वह अग्निमुक्त भस्मी तेरी देह के अतीत की है। उसका तर्पण-अर्पण करके तू अब अपनी अग्नियुक्त भस्मी को उद्दीप्त, प्रदीप्त, प्रज्ज्वलित व दिग्दर्शित कर। उसके साथ आत्मसात् हो। उसके साथ आत्मसात् होने की प्रार्थना, निवेदन, आवेदन, संघर्ष त्राहिमाम् त्राहिमाम् करते हुए आर्तनाद कर !'' इस प्रकार अग्निमुक्त भस्मी का ध्यान-चिन्तन तेरी अग्नियुक्त भस्मी को वैराग रूप में जाग्रत कर देगा। सारे ब्रह्माण्ड के समस्त प्राणी जो थे, हैं और होंगे वे सब तेरे पितर हैं, क्योंकि वे सब एक देह भाव के मोह पर आधारित हैं। देह भाव के मोह का मूलोच्छेदन अग्निभाव, भस्मी भाव द्वारा ही होगा, वह देहातीत है। **देह की भस्मी से आत्मसात् होना आत्मदान है।''** यही आत्मदान हमारे भीतर विरक्ति शक्ति को प्रदीप्त करता है। यही विरक्ति समस्त ईश्वरीय विभूतियों का रसास्वादन करवाती है एवं जीवन आनन्दमय हो जाता है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(9 जुलाई से 9 अगस्त एवं 11 से 13 सितम्बर, 2009)

लब्ध

'लब्ध' शब्द **'लभ'** धातु से बना है और इसका अर्थ है—**प्राप्य**। ईश्वर ने हमें अपनी समस्त संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट, चमत्कारिक एवं परम रहस्यमयी सुकृति **'मानव-देह'** से नवाज़ा है। देह सहित जगत प्रकट होता है, इसलिए देह के साथ सब कुछ **'लब्ध'** है। इतनी रहस्यमयी मानव-देह जिसमें करोड़ों, अरबों क्रियाएँ हमारी बिना किसी जानकारी के अविरल, अबाध, निरन्तर, चिरन्तन, अकाट्य, अति सारगर्भित, परम विशिष्ट, संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक—इन दस विधाओं (दशानन) में अदृश्य रूप से चलती रहती हैं, हमें स्वतः लब्ध हुईं।

देह के भीतर चलती ये क्रियाएँ सन्तुलित एवं सुसम्बद्ध हैं। अपनी होश में जिसका हम एक बाल, एक नाखून तक नहीं बना सकते, वह देह हमने उपलब्ध नहीं की। जब हमने होश सम्भाला, हमें अपनी देह तथा उसके साथ जगत, पंच-महाभूत (पृथ्वी, जल, आकाश, वायु, अग्नि) सूर्य, चन्द्रमा, समुद्र, नदियाँ, ग्रह-नक्षत्र, विभिन्न वनस्पतियाँ, अन्न, फल आदि सब कुछ बना-बनाया मिला। इस सबके लिए हमने कुछ नहीं किया। माँ, पिता, भाई, बन्धु, घर, आस-पड़ौस, स्कूल, स्कूलऽके संगी-साथी, अध्यापक आदि भी सब लब्ध थे। डिग्रियाँ आदि भी मुझे लब्ध हुईं। मैं भ्रमवश समझता रहा, कि मैंने मेहनत करके उपलब्ध की हैं। मुझे एक डिग्री लब्ध कराने के लिए मेरे सर्व में असंख्य ज्ञात-अज्ञात कार्य हुए। स्कूल, कॉलिज का निर्माण, मुझे पढ़ाने वाले अध्यापकों का प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम, परीक्षाओं का प्रबन्धन, प्रश्नपत्रों की योजनाएँ, परीक्षक आदि-आदि असंख्य ज्ञात-अज्ञात कार्यों के

एवज़ में मुझे कोई डिग्री मिलती है। उसमें मुझसे भी थोड़ा बहुत पढ़ाई आदि का कार्य करवा लिया जाता है। जो पढ़ाई मैंने की, उसके लिए एकाग्रता भी प्रभु-प्रदत्त ही थी। मैंने जो पढ़ा वही परीक्षा में आए या न आए, इसकी भी मुझे सुनिश्चितता नहीं होती। परीक्षा के समय मेरी देह स्वस्थ रही और बाह्य प्रकृति एवं परिस्थितियाँ अनुकूल रहीं। सारांश में डिग्री की कोई भी विधा मेरे हाथ में नहीं थी। इसीलिए डिग्री **'लब्ध'** हुई। मैंने उपलब्ध नहीं की।

देह के पालन-पोषण के लिए विभिन्न कार्य होते हैं। यदि मैं इस विषय पर सोचना शुरू करूँ, मेरी बुद्धि निरुत्तर हो जाती है। एक समय आया, पत्नी या पति बना-बनाया मिला। कालान्तर में बच्चे भी बने-बनाए मिले। मैंने इन्हें प्राप्त करने के लिए कुछ नहीं किया। इसी प्रकार मुझे अर्थी, शमशान, अर्थी को उठाने वाले भी बने-बनाए मिलेंगे। गर्भाधान होते ही हम बच्चे के कैरियर और उसे कुछ न कुछ बनाने के विषय में सोचने लगते हैं। माता-पिता अपने खुद के कैरियर एवं कार्य-स्थल की स्पर्धाओं में अपने बच्चों के बचपन का रसास्वादन नहीं कर पाते। जो स्वतः लब्ध है, उसके लिए उपलब्धियों की वृत्ति के कारण उसका हम भोग नहीं कर पाते।

जीवन में सब कुछ लब्ध होता है। मुझसे यह बहुत बड़ी भूल हुई, कि जैसे ही मैंने होश सम्भाला अर्थात् जब मैं स्वयं निर्णय लेने, दूसरों को परामर्श देने और कार्य करने योग्य हो गया तो मैं कुछ न कुछ करने लगा। जो मुझे **'लब्ध'** था, उसे मैंने तथाकथित कर्म करके **'उपलब्ध'** करना प्रारम्भ कर दिया। **'लब्ध'** को उपलब्ध करते ही **'लब्ध'** का अवमूल्यन हो गया।

मैंने होश सम्भालते ही अपनी देह को नाम-रूप की सीमा में सीमित कर लिया, जबकि देह स्वयं में असीम है। देह साकार है और नाम-रूप में बँधी है। नाम-रूप इसकी सीमा है। देह व जगत का प्रबन्धक एवं नियन्त्रक हमारा देहातीत क्षेत्र है। हम भ्रमवश मान लेते हैं, कि मैंने मेहनत करके पाया। जबकि जो कार्य देहातीत क्षेत्र में हो चुकता है, उसकी प्रस्तुति के लिए प्रभु ने हमसे जो करवाना है, करवा लेते हैं। कोई भी बाह्य कृत्य **'स्व'** का नहीं **'सर्व'** का है। वस्तुतः मेरी समष्टि ही मेरी व्यष्टि है। कृपया एकाग्र करें।

होश सम्भालने से पूर्व जब तक मैं कुछ कमाता नहीं था, मुझे देह के साथ सब कुछ लब्ध था। जो, जितना और जैसा **'लब्ध'** था, उसका मैं भरपूर भोग करता था। लेकिन बुद्धि का विकास होते ही जब मैंने उसी को **'उपलब्ध'** किया, तो उसका अधिक से अधिक **उपयोग** करना चाहा। अतः मेरा ईश्वर से **'योग'** आच्छादित सा हो गया। **लब्ध** को कर्ताभाव में ईश्वर से विमुखता सी में उपलब्ध किया इसलिए दैवीय अधिनियमानुसार **'प्रालब्ध'** के अन्तर्गत सज़ाएँ भुगतने लगा। मुझे प्रभु ने मानव-देह दी और इसका 'अर्थ' मैंने न समझा, न समझना चाहा और अवचेतना में ईश्वर प्रदत्त चेतन बुद्धि का दुरुपयोग करके दुर्गति को प्राप्त हुआ।

मानव-देह स्वयं में साधन है, जिसे धन से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह देह Duty free, Maintenance free, Fully Automatic, Computerised और fully Airconditioned है। यह साधन हमें स्वतः **'लब्ध'** हुआ। हमने अज्ञानवश, मोहवश साकार जगत की विभिन्न विधाओं एवं पदार्थों को साधन मान लिया। जब हमारे लिए देह ही सब कुछ बन गई, तो हम मात्र देह के लिए (देहार्थ) सुख-साधन एकत्रित करने की होड़ एवं जोड़-तोड़ में लग गए। हम देहों से देह व देहों के लिए सुख-साधन उपलब्ध करने लगे। हमने पदार्थों को साधन मान लिया और देह साध्य बन गई। जबकि देह सद् स्वरूप की अनुभूति का साधन थी। इसके लिए सद्गुरु कृपा एवं शरणागति आवश्यक है। सद्गुरु के सद् निर्देशन में हमारे भीतर आत्म ज्ञान की पिपासा जाग्रत होती है और जिज्ञासा रूपी अप्रकट ज्ञानाग्नि का संघनन होता है। सद् की शरण में जाने पर ही मानव-देह जो स्वतः लब्ध है, उसका सदुपयोग होता है।

किसी पदार्थ में अग्नि अप्रकट रूप में होगी, तभी प्रकट होगी। अप्रकट अग्नि को प्रकट करने के लिए भी अग्नि चाहिए। ज्वलनशील वस्तु के भीतर अप्रकट अग्नि होती है, जिसे अग्नि द्वारा प्रकट किया जाता है। अतः अप्रकट अग्नि को प्रकट करने के लिए प्रकट अग्नि चाहिए। प्रकट अग्नि, अप्रकट अग्नि को प्रकट करके स्वयं हट जाती है। ईंधन में अप्रकट अग्नि स्वयं में

समाहित रहती है। प्रकट अग्नि मात्र एक इशारा है, जो उसके भीतर अप्रकट अग्नि को प्रकट कर देता है।

आत्मज्ञान की जिज्ञासा अप्रकट ज्ञान है, जो प्रकट होने के लिए लालायित है। जिज्ञासु जाना हुआ है, लेकिन अप्रकट ज्ञान के कारण वह नहीं जानता, कि वह जाना हुआ है। जिज्ञासु **'सद्'** का खोजी होता है और वह किसी भी कीमत पर सद् की अनुभूति करना चाहता है। सद्गुरु जिज्ञासु की ज्ञान की पिपासा को पहचान लेता है और अपनी प्रकट ज्ञानाग्नि के संकेत मात्र से उसके भीतर छिपे अप्रकट ज्ञान को प्रकट कर देता है। ज्ञान बाहर से प्राप्त नहीं होता।

किसी भी सार्थक एवं सारगर्भित प्रश्न **का** उत्तर प्रश्न में ही समाहित होता है, प्रश्न **से** उत्तर निकालना होता है। लेकिन प्रश्न, प्रश्न है और उत्तर, उत्तर होता है। इसी प्रकार जिज्ञासा में ज्ञान समाहित होता है। कोई भी जिज्ञासा ज्ञान गम्य है। लेकिन ज्ञान, ज्ञान है। **'मैं'** कौन हूँ और क्यों हूँ ? यह प्रश्न नहीं जिज्ञासा है। ज्ञान की पिपासा को जिज्ञासा कहते हैं, जिज्ञासा स्वयं में ज्ञेय है, क्योंकि उसमें ज्ञान समाहित है। **आच्छादित ज्ञान ही जिज्ञासा है।** ज्ञान स्वरूप सद्गुरु उसी का अनाच्छादन कर देता है। आच्छादित ज्ञानी ही प्रकट रूप में जिज्ञासु होता है। आत्म-ज्ञान के पिपासु आत्म-चिन्तकों का मन-मस्तिष्क बहुत सकारात्मक होना आवश्यक है। जिसे हम खोज रहे हैं, उसके होने का प्रमाण हम सबके पास है। हमारे हृदय की एक-एक धड़कन, एक-एक श्वास ही ईश्वर से हमारी सान्निध्यता की पुष्टि है।

सद्गुरु के श्रवण, प्रवचन, मनन, स्पर्श, दृष्टिपात आदि से अप्रकट ज्ञान अग्नि एक विशिष्ट सीमा में संघनित हो जाती है और ज्ञान पिपासा बन जाती है। उदाहरणतः प्रैशर कुकर में सीटी बजने के लिए भाप की एक विशिष्ट मात्रा का संघनित होना आवश्यक है, इसी प्रकार अप्रकट ज्ञानाग्नि अप्रकट रूप में ही जब तक संघनित नहीं होगी, तब तक प्रकट अग्नि द्वारा भी प्रकट नहीं की जा सकती। तप की अग्नि जिज्ञासा रूपी अप्रकट अग्नि

को अप्रकट रूप में संघनित करके प्रकट करती है।

तप प्रकरणों में हम देह की सहज प्रकृति के विरोध में कुछ न कुछ दैहिक क्रियाएँ करते हैं अथवा जो कुछ हमारी मानसिकता को ठीक नहीं लगता, उसे आनन्द में ही सहते हैं। देह सीमित है अतः देह द्वारा सहने की शक्ति भी सीमित है। देह द्वारा हम वह जानना और अनुभव करना चाहते हैं, जो देहातीत है।

देह व जगत के अवलोकन, चिन्तन, मनन एवं रसास्वादन के लिए मानव-देह अवलम्बन है। मानव-देह के अवलम्बन के बिना ईश्वर की माया और माया के अस्ति **'तत्त्व'** का ज्ञान सम्भव नहीं है। मानव-देह साकार एवं दृश्यमान है, लेकिन देह-दर्शन निराकार एवं अदृश्य है। देह का देहत्व, तत्त्वातीत तत्त्व, देह से परे है। यह तत्त्व सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड की देहों और देहों पर आधारित देहों का एक ही है। देह का देहत्व, जीवात्मा का आत्मत्व एवं ईश्वर का ईश्वरत्व—ये तीनों तत्त्व एक ही हैं। तीनों एक ही समय आच्छादित होते हैं और एक साथ ही अनावृत्त होकर प्रकट होते हैं। जीवात्मा का आत्म तत्त्व अदृश्य एवं निराकार है। जन्मों-जन्मान्तरों से मुझ जीवात्मा को **'देह धारणा'** है, क्योंकि आत्म तत्त्व **'मैं'** का प्रकटीकरण प्राणयुक्त सक्रिय देह के साथ लगने से होता है। यह देह धारणा इतनी हृष्ट, पुष्ट एवं तुष्ट हो चुकी है, कि यह ज्ञान ही नहीं है, कि **'मैं'** और **'देह'** पृथक् हैं।

देह धारणा स्वयं में अद्वैत है। देह धारणा 'मैं देह हूँ' के साथ जीवात्मा की कोटि-कोटि जीवों की जीवकोटि में जाति, कुल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, रोग, दोष, वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, मर्यादा, मान, अपमान, पाप, पुण्य, आधि, व्याधि, उपाधि, अच्छा, बुरा, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहं, रीति, रिवाज आदि-आदि असंख्य धारणाओं का मिथ्या जाल उसका स्वभाव बन गया। यह निराकार व अदृश्य **'मैं'** एवं साकार व दृश्यमान (देह) का चमत्कारित अद्वैत है। 'मैं' और देह दोनों बिल्कुल अलग-अलग हैं। देहधारणा में दोनों एक दूसरे से इतना तद्रूप हो गए, कि उन्हें अपने पारस्परिक द्वैत का आभास नहीं रहा। इसलिए अद्वैत का भी आभास नहीं रहा। अद्वैत और द्वैत सापेक्षिक हैं। जहाँ द्वैत होगा,

वहीं अद्वैत होगा और अद्वैत होगा, तो द्वैत भी होगा।

'मैं' और देह परस्पर इतना एक रस हो गए, कि उन्हें अद्वैत-द्वैत किसी का भी ज्ञान नहीं रहा। जीवात्मा स्वयं में ईश्वर का अभावमय एवं अखण्ड आनन्दमय मानस है, लेकिन जीव-सृष्टि में उसकी मानसिकता में जन्म-मृत्यु, पाप-पुण्य, आधि-व्याधि-उपाधि, काम-क्रोध, लोभ-मोह एवं अहंकार मानसिक विकार उसके स्वभाव बन गए। **विकार मानसिकता में है, मानस में नहीं है।** जन्मों-जन्मान्तरों में जीव इस मानसिकता में जीता-मरता रहता है, लेकिन इनसे बाहर नहीं आ पाता। पुनः पुनः गर्भ में पदार्पित होता हुआ तथाकथित जीवन ढोता है। यह सिलसिला क्या है ? यह पाप, पुण्य, भाग्य, दुर्भाग्य क्या है ? मैं सौभाग्य चाहता हूँ, तो यह दुर्भाग्य क्या और क्यों है ? सुख चाहता हूँ, तो दुःख और कष्ट क्यों है और इनका निवारण क्या है ? जब यह जिज्ञासा मन में तीव्रतम हो जाती है, तो जीव की बुद्धि आश्वस्त हो जाती है, कि यह समाधान उससे परे का विषय है। बुद्धि निरुत्तर होकर उत्तर की खोज में आपे से बाहर हो जाती है। देह से देहातीत होने की चाह में उठाया गया यह पहला कदम है। देह की समस्त सीमाएँ एवं शक्तियाँ स्वयं को अक्षम एवं असमर्थ पाती हैं। ज्ञानस्वरूप सद्‌गुरु जिज्ञासु की अज्ञानता का आवरण हटाकर जिज्ञासु के ही आच्छादित ज्ञान का अनाच्छादन करता है।

एक ही **'मैं'** को लगाने वाले अलग-अलग हैं। इस पर किसी को आपत्ति नहीं है और किसी का किसी से कोई झगड़ा नहीं है। **'मैं'** सबकी एक ही है और एक ही **'मैं'** सबने लगाई है। यह **'मैं'** क्या है? **'मैं'** निराकार तत्त्व है जो बोलने-सुनने में आता है, लेकिन दृश्यमान नहीं होता। **'मैं'** जीवात्मा तत्त्व है, जो शब्द रूप में प्रकट होता है। **'मैं'** का अपना कोई नाम-रूप नहीं है, लेकिन किसी भी प्राणयुक्त देह सहित जगत के साथ लगने से नाम-रूप क्रियान्वित होता है। सुषुप्त, मूर्च्छित, विस्मृत, मृतक देह **'मैं'** नहीं लगा सकती। जिस देह के साथ **'मैं'** लगेगी, उस देह का प्राणयुक्त होना बहुत आवश्यक है। जो, जब, जहाँ, जैसी देह है, यदि उसने

'मैं' लगा दी, तो इसका अर्थ है, कि वह थोड़ी बहुत क्रियाशील अवश्य है। यदि किसी ने **'मैं'** नहीं लगाई अथवा वह किसी कारणवश **'मैं'** लगाने योग्य नहीं है, तो वह अर्थहीन ही होगा। असंख्य देहें **'मैं'** लगाने से ही Active होती हैं और **'मैं'** स्वयं में देहातीत है। **'मैं'** का स्वयं में किसी देह की क्रिया या अक्रिया से कुछ लेना-देना नहीं है। मैं डॉक्टर हूँ, मैं नाई हूँ, मैं पनवाड़ी था, मैं मोची हूँ। जिसने भी **'मैं'** लगाई वह Active हुआ। Activity पृथक्-पृथक् हुई, लेकिन **'मैं'** वही रही। **'मैं'** देह के बाद का नहीं, देह से परे का तत्त्व है, जो सबका एक ही है। मैं देह नहीं हूँ, क्योंकि **'मैं'** अलग है, देह अलग है। लेकिन जब देह के साथ **'मैं'** लगी और मैंने देह के साथ स्वयं को पहचाना, कि मैं देह हूँ, तो मैं चेतना से अवचेतना में जीवकोटि में उतर गया।

एक **'मैं'** जब देह रूप में सोता हूँ, तो मेरे साथ मेरा सारा जगत भी सो जाता है और जब मैं देह रूप में उठता हूँ, तभी मेरे साथ मेरा सारा जगत उठता है। मेरी सुषुप्ति के दौरान मुझे यह ज्ञान नहीं होता, कि मैं सोया हुआ हूँ। लेकिन निद्रा से उठने पर मुझे ज्ञान होता है, कि मैं उठा हुआ हूँ और मैं अपनी समस्त समष्टि के साथ उठता हूँ। सुषुप्ति और उठना इन दोनों स्थितियों में बहुत अन्तर है। सुषुप्ति में मुझे अपने सोने का ज्ञान एवं अभिमान नहीं होता। उठने का अभिमान मुझे एक से अनेक बनाकर दिन भर थकाता है और रात्रि में सुषुप्ति के लिए मुझे पुनः निरभिमान होना होता है। यही हमारा जीवन है, जो निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में शनैः शनैः अधोगति को प्राप्त होता रहता है। क्योंकि जो स्वतः लब्ध है, उसे अपनी तथाकथित कर्मठता में अज्ञानवश मैं उपलब्ध करता रहता हूँ। जब मैंने अपने अभिमान से लब्ध को उपलब्ध बना लिया, वहीं पर दैवीय अदालत की डिवाइन पीनल कोड के तहत 1008 धाराओं के अन्तर्गत धारावाहिक सज़ाएँ मुझ पर लागू हो जाती हैं। मुझसे देह सहित जगत की समस्त लब्धियों के भोग का अधिकार छीन लिया जाता है। इस case file का नाम **'प्रारब्ध'** है।

मेरी एक-एक सोच, एक-एक क्रिया-अक्रिया व प्रक्रिया की निगरानी दैवीय संस्थान पल-पल करते हैं। **'लब्ध'** की उपलब्धियाँ मुझे दुर्बल बना देती

हैं, क्योंकि इनके भोग का अधिकार मुझसे छीन लिया जाता है। जब सद्गुरु-कृपा से उसकी दी वस्तुओं को उसके समर्पित किया, कि ***''त्वदीयं वस्तुं गोविन्द तुभ्यमेव समर्पयेत।''*** ''प्रभु ! मैंने कुछ नहीं किया, सब कुछ करने-कराने वाले आप हैं'' तो प्रारब्ध या प्रालब्ध की केस फाइल नष्ट कर दी जाती है। मैं दुर्बल से दुर्लभ वस्तुओं की लब्धि का अधिकारी बन जाता हूँ। **'लब्ध'** को प्रभु दुर्लभ बना देते हैं। जिन **लब्धियों'** ने मुझे प्रारब्ध के अन्तर्गत दुर्बल बनाया था, वे लब्धियाँ दुर्लभ रूप में स्वतः मुझे लब्ध होने लगीं।

'लब्ध' का हमारे पास स्वामित्व होता है और जो उपलब्ध किया जाता है, वह possession होता है। possessions are poison. उपलब्ध से हम सुख चाहते हैं और लब्ध आनन्द देता है। हम स्वतः लब्ध देह पर अधिपत्य एवं अध्यास के कारण ही जन्मों-जन्मान्तरों से भटक रहे हैं। आनन्द लब्धि से व लब्धियों के समर्पण से मिलता है, तब वह लब्धि ही देहातीत व दुर्लभ हो जाएगी। सद्गुरु कहता है, कि ''देह तुझे प्रारब्धवश मिली है, तू इसे प्रारब्धमुक्त कर। जब भी यह मिली, तूने इसे प्रारब्धयुक्त ही रखा, इसलिए देह तेरी कभी नहीं हुई। तू इसे प्रारब्धमुक्त कर तो यह देह तेरी चेरी हो जाएगी, तेरी शाश्वतता को स्वीकार करेगी। तू ईश्वर की भाँति पूजनीय हो जाएगा, देह सहित समस्त लब्ध जगत तेरे लिए होगा।''

कुछ स्थितियों में देह सहित जगत से मैं परे होता हूँ। उसकी मूल अवश्यकता यह है, कि मुझे मेरी निद्रा, मूर्च्छा, विस्मृति, मृत्यु और तुरिया समाधि का रंच मात्र भी अभिमान न हो। ये कुछ ऐसे कर्म हैं, जिन कर्मों का कोई अभिमान किसी को नहीं होता। विश्राम या शान्ति का कारण निरभिमानता है, लेकिन तुरिया समाधि के अतिरिक्त शेष चारों स्थितियाँ जड़ता की हैं, आनन्द की नहीं, क्योंकि इनमें मुझे अपना स्वयं का भी कोई ज्ञान नहीं होता। मुझे समाधि में अपना ज्ञान होता है। देह व जगत भी होता है, क्योंकि मैं देह से ही समाधिस्थ होता हूँ। लेकिन मुझे देह व जगत से परे अपने विशुद्ध देहातीत चेतन स्वरूप की अनुभूति होती है। यह मेरी जागृति की स्थिति है।

जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी है। मृत्यु निश्चित होते हुए भी अनिश्चित है, क्योंकि कभी भी आ सकती है। जो परदा गिरना ही है, भाव द्वारा उसे पहले क्यों न गिरा दूँ। परदा गिरते समय **'मैं'** कहीं का भी नहीं रहूँगा। जो मृत्यु होगी ही उसे मैं भाव द्वारा जीते जी क्यों न धारण कर लूँ। जो मृत्युत्व या शवत्व है, वही अमरत्व है। अपनी मृत्यु और मृतक काया (शव) किसी ने उसी प्रकार नहीं देखी, जिस प्रकार किसी ने अपना जन्म नहीं देखा। मैंने देहधारणावश मान लिया, कि मैं पैदा हुआ, अतः मैंने मरना भी है। जब मैं मरूँगा, तो मुझे मालूम नहीं होगा, कि मैं मरा हुआ हूँ। मृत्यु जब होगी, तो मैं नहीं देख पाऊँगा। जो शव किसी ने अपना देखा नहीं और देख पाने की सम्भावना भी नहीं है, तो वह शवत्व क्या है ? जीवन-काल समाप्त होने पर जो स्थिति होगी, उसे मैं जीवन के दौरान क्यों नहीं देख सकता ? जीवन-काल समाप्त होने पर देश, धर्म, कर्म, सम्बन्ध, लिंग, माया के तीनों गुण, मर्यादाएँ, मेरा लेना-देना, पद-प्रतिष्ठा, मान-अपमान आदि सब कुछ छूट जाएगा, लेकिन मुझे इनके छूटने का आभास नहीं होगा। मृत्यु और देह के शव का मुझे कोई लाभ नहीं होगा। शमशान में अपनी हर शान के शमन होने पर होने वाली स्थिति के नशे से मैं अनभिज्ञ ही रहता हूँ। इसलिए आजीवन देह व जगत की साकार विधाओं की झूठी शान मुझे ईश्वर से परे या दूर करती हुई परेशान करती रहती है। देह व जगत की समस्त साकार विधाएँ मेरे होने से होती हैं और मेरे न होने पर नहीं होती। मैं हूँ और देह व जगत होते हुए भी मेरे लिए न हो यह स्थिति **मृत्यु दर्शन** है। जो मेरे लिए अदृश्य रहता है, उस परिदृश्य को आत्मसात् करना और उसकी अनुभूति करना ही **'दर्शन'** है। शव दर्शन शवत्व की मानसिक स्थिति का दर्शन है। किसी ने अपना शव नहीं देखा और न देख पाने की सम्भावना है, उस शवत्व की स्थिति को जीते जी आभास करते हुए आत्मसात् करना **'शव-दर्शन'** है।

देह व जगत में मेरे लिए सब कुछ होते हुए भी मेरी दृष्टि में उसका कोई महात्म्य न हो–यह समाधि स्थिति है। निद्रात्व समाधि है। अपनी निद्रा

तो किसी ने नहीं देखी, मैं अपनी उस निद्रा की स्थिति का आभास व अनुभूति कर लूँ। निद्रा के उस तत्त्व की अनुभूति निद्रा-दर्शन है। दर्श+न= दर्शन। अपनी निद्रा व मृत्यु जो किसी को दिखाई नहीं देती, उसकी अनुभूति व आभास निद्रात्व एवं शवत्व का दर्शन है।

जगत में सुने-देखे हुए मृतकों के आधार पर मैंने अपनी मृत्यु की धारणा स्वयं पर आरोपित कर ली है। सद्‌गुरु कहता है, कि ''निद्रा में तेरी देह होती है, लेकिन तेरे लिए नहीं होती और तेरी देह पर आधारित साकार जगत की धन, सम्पदा, परिवार, कर्म, कर्तव्य आदि विधाएँ होते हुए भी तेरे लिए नहीं होतीं। तूने अपनी निद्रा नहीं देखी लेकिन देह व जगत से पीछा छुड़ाने के लिए तू सोता है और उनके पीछे लगने के लिए उठता है। जिनसे पीछा छुड़ाने के लिए तू नशा करता है या सोता है, तेरी मानसिक स्थिति ऐसी हो जाए, कि ये सब विधाएँ हों और तेरे लिए उनका कोई भाव न हो तो तुझे स्वतः अपनी चेतना का नशा हो जाएगा। वही वास्तविक जगत दर्शन है। एक देखना बाह्य आँखों से होता है, एक अन्तर्चक्षुओं से होता है। जो आँखों से दिखाई नहीं दे रहा, उसकी हृदय से अनुभूति करना, **'दर्शन'** है। निद्रा, शव स्थिति जो बाह्य रूप से मैं नहीं देख पाता उस स्थिति की हृदय से अनुभूति करना उनका दर्शन है। **'वेदान्त'** दर्शन है। सद्‌गुरु कहता है, कि ''जो तेरे लिए निराकार व अदृश्य है, उस स्थिति को तू अपनी होश में अनुभव कर ले, तो वहाँ तेरे मानस से सारी मानसिकताएँ हट जाएँगी।''

देहार्थ मानसिकताओं में विभिन्न पदार्थ चाहिए, लेकिन देह के अर्थ के लिए स्वयं देह चाहिए। देह का अर्थ मात्र भस्मी ही है। मृत्यु के बाद देह के पंच-महाभूतों में विलीन होने के बाद प्रकट होने वाली भस्मी को देह के दौरान प्रकट करने के लिए देह का अवलम्बन लेते हैं, तो वह भस्मी **'विरक्ति'** भाव के रूप में प्रकट होती है। देह के अर्थ का अर्थ विरक्ति है। भस्मी भी पदार्थ है, जो देह से देह का ही है। उसे उपेक्षित करने के कारण निरर्थ, व्यर्थ एवं अन्य अर्थों (अनर्थ) में तथाकथित व्यस्तता के नाम पर देह अस्त-व्यस्त हो गई और लब्ध को उपलब्ध करने लगी।

इस अर्थ रहित देह का अवलम्बन लेने से जीवात्मा अवचेतना में तद्रूपतावश जीवकोटि में कालवश, कर्मवश एवं प्रारब्धवश होकर विवश हो गया। बिजली की अर्थिंग न की जाए, तो करन्ट लगने पर झटका देकर व्यक्ति को दूर नहीं फेंकती, बल्कि साथ ही चिपका लेती है। जीवात्मा भी अर्थ रहित देह के साथ तनिक सा अवलम्बन लेने में ही जीव कोटि में उतर कर देह सहित जगत की अनेक स्थितियों के साथ चिपक गया। देह का अर्थ सम है। जो, जब, जहाँ, जैसी भी स्थिति, परिस्थिति, आयु, अवस्था, पद, प्रतिष्ठा, सम्बन्ध, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्तर, देश, विदेश, धर्म, कर्म, लिंग, माया के तीनों गुणों की देह है, उसका अर्थ एक ही भस्मी है, जो एक जैसी है।चोर की भस्मी चोर नहीं होती, साधु की राख साधु नहीं होती। जवान, बूढ़े, पापी, पुण्यी किसी भी देह की भस्मी **सम** है। देह का अर्थ सम है और इस अर्थ को जीवन-काल में आत्मसात् करना ही समर्थ है।

मैं मानव हूँ, मुझे मानव-देह का मानवत्व सिद्ध करना होगा। **'मैं'** (जीवात्मा) ने जगत के दिग्दर्शन, अधिग्रहण के लिए देह का अवलम्बन लेना था, लेकिन देह अर्थ रहित थी। देह को अर्थ सहित होने के लिए अपनी ही भस्मी का अवलम्बन लेना आवश्यक था। जिस दिन सद्गुरु कृपा से देह अपनी भस्मी का अवलम्बन लेगी, उसी दिन अर्थपूर्ण व सार्थक हो जाएगी। इस सार्थक देह के साथ मैं कभी भी तद्रूप नहीं हो सकती। सार्थक देह का अवलम्बन लेने पर अवचेतन जीव, चेतन हो जाएगा और उसका आत्म तत्त्व जाग्रत हो जाएगा। देह का यथार्थ प्रकट होने पर **'मैं'** (जीवात्मा) और देह (जीव) दोनों मिलकर परमात्मा का दर्शन व अनुभूति करेंगे। जिस प्रकार देह लब्ध हुई, उसी प्रकार समय-समय पर विभिन्न स्थितियों में सब कुछ लब्ध ही है। जीवात्मा का आत्म स्वरूप भी उसे **'लब्ध'** है, उसे कहीं बाहर से उपलब्ध नहीं करना। इसके लिए सब धारणाएँ छोड़कर उसे मात्र सद्गुरु का शरणागत मात्र होना है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(25 जुलाई, 2009 एवं 20 से 22 जनवरी 2010)

अज्ञात-अज्ञेय

माया की निर्माण, पालन एवं संहार तीन विधाएँ हैं। साकार एवं दृश्यमान मानव-देह सहित जगत का सतत् निर्माण होता है, निर्मित का पालन होता है और पालित का संहार होता है। इस समस्त **दृश्यमान** माया में सतत् हो रहे निर्माण, पालन और संहार के नेपथ्य में छिपी **ईश्वरीय सत्ता** स्वयं में **निराकार** और **अदृश्य** है। उस निराकार व अदृश्य ईश्वरीय सत्ता का मात्र एक प्रतिनिधि **'दृष्टा' जीवात्मा है** और उसका शब्दरूप में प्राकट्य **'मैं'** शब्द है। ईश्वर की ही भाँति जीवात्मा को देखा, चखा, छुआ, सूँघा नहीं जा सकता, केवल **'मैं'** शब्द रूप में सुना जा सकता है। **'मैं'** शब्द रूप में ब्रह्म है।

युगों-युगान्तरों में विस्तृत कोटि-कोटि साकार महाब्रह्माण्डों की सम्पूर्ण माया का प्रतिनिधित्व एक मानव-देह करती है। निर्माण, पालन एवं संहार वस्तुतः मानव-देह की तीन विधाएँ हैं। मानव-देह की अपनी पृथक् सत्ता है, जो मात्र ईश्वर द्वारा निर्मित, पालित व संहारित है अतः देह, स्वयं में अपौरुष है, जिसके हृदय की एक-एक धड़कन व श्वास ईश्वर द्वारा ही प्रेरित व संचालित है। जीवात्मा (**'मैं'**) ईश्वर अंश स्वयं में देहातीत है। निराकार और अदृश्य जीवात्मा (**'मैं'**) की जब सम्पूर्ण माया की प्रतिनिधि साकार एवं दृश्यमान मानव-देह के साथ तद्‌रूपता हुई, कि 'मैं देह हूँ' तो वहाँ एक जीवात्मा, जीव बनकर कोटि-कोटि जीवों की कोटि में पतित हो गया। इसमें ईश्वर का ईश्वरत्व और जीवात्मा का आत्म तत्त्व आच्छादित होने के साथ-साथ मानव-देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) भी लुप्त हो गया। जीवात्मा

और मानव-देह दोनों पृथक्-पृथक् सत्ताओं का **सद्** (ईश्वर) एक ही था। लेकिन जीवात्मा (**'मैं'**) की मानव-देह के साथ तद्रूपतावश जीव कोटि में असंख्य एवं गणनातीत देहें एक जीव के गले पड़ गईं। मानव-देह और जीवात्मा दोनों तद्रूप हो गए, लेकिन यह तद्रूपता **अज्ञात व अज्ञेय** रही। जीवात्मा और देह दोनों भूल गए, कि मैं जीव कोटि में हूँ। तद्रूपता का ज्ञान न होने के कारण एक जीवात्मा कोटि-कोटि जीव कोटि में जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित काल-चक्र में युगों-युगान्तरों से भटक रहा है। जब तद्रूपता का ज्ञान हुआ तो इसे अपनी भटकन का आभास हुआ। इस बिन्दु पर सद्गुरु-कृपा से जीवात्मा और देह में दरार पड़नी प्रारम्भ हो गई। कृपया एकाग्र करें, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

जीवात्मा, पारब्रह्म परमेश्वर का अंश एवं मात्र एक सीधा प्रतिनिधि है, उसका **'मैं'** शब्द रूप में प्रकाट्य है। मानव-देह साकार एवं दृश्यमान है, जो सम्पूर्ण साकार मायिक सृष्टि की मात्र एवं मात्र एक प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप है। दूसरे शब्दों में सम्पूर्ण माया एक देह का विस्तार है। यह मानव-देह अपौरुष है तथा इसकी निर्माण, पालन एवं संहार तीनों विधाएँ मात्र ईश्वर द्वारा ही प्रेरित, संचालित एवं सम्पादित हैं। दोनों में तद्रूपता से जीव कोटि में कल्पित जीव-सृष्टि का प्रकाट्य होने लगा। साथ ही यह जीव कोटि की सृष्टि तद्रूपता के अज्ञान एवं अज्ञातता के कारण जीवात्मा एवं मानव-देह दोनों के लिए अज्ञात एवं अज्ञेय रही। जीवात्मा **'मैं'** और साकार जगत सहित एक मानव-देह दोनों बिल्कुल पृथक् हैं। वस्तुतः दोनों अज्ञानवश तद्रूप हैं इसका ज्ञान दोनों को नहीं हुआ। इस अज्ञात (तद्रूपता) का जब ज्ञान होगा, तब ज्ञेय होगा, कि दोनों में अज्ञानवश तद्रूपता है। देह धारणा में जीवात्मा (**'मैं'**) को यह ज्ञान ही नहीं है, कि मुझे (जीवात्मा को) देह धारण हो चुकी है। 'मैं देह हूँ' का भ्रमपूर्ण देहाध्यास, 'देह तो मैं हूँ ही' के रूप में देह धारणा बना और 'धारयति इति धर्म' के अनुसार देह ही जीवकोटि में जीवात्मा (**'मैं'**) का धर्म बन गई। जीवात्मा की देह के साथ अज्ञात तद्रूपता में देह धारणा कोटि-कोटि जीवों की जीव कोटि है,

जो इसके लिए जन्मों-जन्मान्तरों में अज्ञेय बनी रहती है। शास्त्रीय भाषा में कोटि-कोटि जीवों की जीव कोटि में जीवात्मा **अज्ञात अज्ञेय** है। उस अज्ञात अज्ञेय का जब ज्ञान हुआ तो जीवात्मा (**'मैं'**) को अपनी भूल (तद्‌रूपता) का आभास होने लगा।

देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) जीवात्मा का आत्म तत्त्व और ईश्वर का ईश्वरत्व तीनों **'साध्य'** की सिद्धि के लिए **मानव-देह साधन है।** उस साध्य की सिद्धि अथवा प्राप्ति के लिए **'सद्‌गुरु'** निर्देशक है। **जीव** जिसका विशुद्ध स्वरूप (जीवात्मात्व) खो सा गया है, वह **'साधक'** है। सद्‌गुरु के निर्देशन में इसके द्वारा किए गये प्रकरण, कृत्य, अकृत्य एवं सब कुछ **'साधना'** है। किसी भी कर्म या प्रकरण के लिए विशिष्ट शक्ति अपेक्षित है, उस शक्ति का नाम **'श्रद्धा'** है। सद्‌गुरु, साधक, साधन, साधना, साध्य एवं श्रद्धा—इन छः बिन्दुओं के परिवेश के अन्तर्गत आध्यात्मिक जीवन की सारी कहानी चलती है। एक विशिष्ट बिन्दु ऐसा है जो इन सबमें समान (Common) है। वह बिन्दु है—**'अर्थ'**। सद्‌गुरु का अर्थ, साधक (जीव) का अर्थ, साधन (देह) का अर्थ, साधना (सद्‌गुरु के निर्देशन में किए जाने वाले समस्त कृत्य-अकृत्यों) का अर्थ, साध्य (आत्मा तत्त्व) और श्रद्धा का अर्थ एक ही है। इन छः में से किसी एक का अर्थ हृदयंगम होते ही सबकी **'अर्थ'** सिद्धि हो जाती है। **'अर्थ'** पकड़ने की जिज्ञासा, वेग, उत्कंठा, उद्वेग, दीवानगी और जनून से ही समस्त छः बिन्दु कार्यान्वित होंगे।

सद्‌गुरु, साधक, साधन, साधना, साध्य एवं श्रद्धा में **'साधन'** (मानव-देह) सबसे महत्त्वपूर्ण है। साधक को अपने साधन (मानव-देह) का **'अर्थ'** अधिगृहीत करने की तीव्र इच्छा, लालसा एवं जुनून होना आवश्यक है। देह रूपी इस साधन का विशिष्ट एवं परिष्कृत होना एवं उस परम साध्य की उपलब्धि के उपयुक्त होना अत्यावश्यक है। अन्यथा न श्रद्धा हो सकती है, न साधना हो सकती है और न ही सद्‌गुरु दर्शन हो सकता है। जब तक अज्ञात अज्ञेय है तब तक साधना का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि साधन (देह) और साध्य (विशुद्ध जीवात्मा स्वरूप) दोनों एक हो गए और यह

तद्‌रूपता अज्ञात-अज्ञेय है। कोटि-कोटि जीव कोटि में जीव, अज्ञात अज्ञेय है। जब अज्ञात ज्ञेय होगा, कि **'मैं'** (जीवात्मा) देह के साथ तद्‌रूप हुआ जीव नहीं हूँ, यह जीव भाव या देह भाव मेरा भ्रम है, वहाँ **'देह'** साधन बनेगी और जीव (देह के साथ तद्‌रूप सा जीवात्मा) साधक बनेगा। जब अज्ञात ज्ञेय हुआ तो **'मैं'** (साधक) ने पाया, कि उसकी देह विकृत एवं विश्रंखलित है।

तद्‌रूपता में देह जन्म-मृत्यु, जरा, रोग, काल-बन्धन, कर्म-बन्धन, प्रारब्ध, वैर-वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, भय, त्रास, मल, विक्षेप, धर्म, कर्म, लिंग, सम्बन्ध, आधि-व्याधि-उपाधि, रजोगुण, सतोगुण, तमोगुण, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकृतियों से आच्छादित, विश्रंखलित एवं विकृत देह थी। यह विकृत एवं विश्रंखलित देह साधना के लिए साधन नहीं बन सकती। इस विश्रंखलित देह और कोटि-कोटि जीवों की जीव कोटि में साधक जीवात्मा (**'मैं'**) को श्रद्धा (सद् को धारण करने की क्षमता) कैसे मिलेगी और वह सद्‌गुरु को कैसे पहचानेगा ? इस स्थिति में सद्‌गुरु, साधक, साधन, साधना, श्रद्धा एवं साध्य सभी छः अंग विश्रंखलित एवं विकृत ही होंगे।

अज्ञात अज्ञेय में अज्ञात (तद्‌रूपता) का ज्ञेय हो जाना भी कृपा-साध्य है। मैं जीवात्मा हूँ और भ्रम एवं अज्ञानवश देह के साथ तद्‌रूप हूँ। मैं कोटि-कोटि जीवों की जीव कोटि में युगों-युगान्तरों से विभिन्न कल्पित जन्मों-जन्मान्तरों के मिथ्या व आधारहीन काल-चक्र में भटक रहा हूँ। मेरे पास इस मिथ्या काल-चक्र से बाहर आने का साधन देह है, जो विकृत एवं विश्रंखलित है। इस भ्रम, त्रास, विक्षेप में जीव बना जीवात्मा भटकता है और अज्ञात अज्ञेय (तद्‌रूपता) के ज्ञान में इसे अपनी और देह की भटकन एवं पीड़ा का आभास होने लगता है। इस पीड़ा, विक्षेप व भटकन में जीव साकार देह सहित जगत की विविध विधाओं के प्रति उदासीन सा होने लगता है। यह जान जाता है, कि नाम-रूप की देह से स्वयं को पहचानना मेरी भूल है। यहाँ जीवात्मा जीवकोटि में सद्‌गुरु का शरणागत होकर अपनी भूल कबूल

कर लेता है, कि ''प्रभु ! मैं भटक रहा हूँ। जो कुछ करता, पाता, खोता या होता है, उससे अतृप्त, असंतुष्ट रहता हूँ। आसक्तिवश बार-बार जन्म लेता व मरता हूँ। मेरी भटकन की श्रंखला देह की विश्रंखलता में अन्तहीन होती जा रही है। विश्रंखलित देह में जो कुछ पाता हूँ कर्ताभाव में उसका मुझे अभिमान हो जाता है। अभिमान और कर्ता भाव में हुई प्राप्तियाँ ही मुझे भोग रही हैं।''

''धन-सम्पदा, परिवार, सम्बन्धों, ज्ञान, पद, प्रतिष्ठा आदि के मद में मेरी विभूतियों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य एवं ख्याति) का मूल (विरक्ति) अमूल (आसक्ति) हो गया। मूल के अमूल होने से मेरी पाँचों विभूतियाँ और विभूत्यातीत विभूति (विरक्ति) जिनसे मैं विभूषित था, वे विश्रंखलित देह के मोह में काम, क्रोध, लोभ, मोह एवं अहंकार रूप में विकृतियाँ बन गईं। इस विकृत एवं विश्रंखलित देह से मैं साधना कैसे करूँ? मैंने अपना स्वाभिमान (स्व+अभिमान) खो दिया है, क्योंकि मेरी स्व (देह) विश्रंखलित एवं विकृत है।''

न केवल आध्यात्मिक जगत, बल्कि भौतिक जगत में भी किए-करवाए जाने वाले कृत्यों के अर्थ पकड़ना अति आवश्यक है। उदाहरण के लिए हम किसी नौकरी या व्यापार द्वारा अर्थपूर्ति चाहते हैं। हमें उस अर्थ का अर्थ जानना और मानना अत्यावश्यक है। इतना करने से मुझे इतना मिल जाएगा, फिर मैं आगे मेहनत करूँगा तो और इतना मिल जाएगा चाहे वह कोई पदार्थ, प्राणी, धन, प्रौपर्टी, सन्तान अथवा साकार जगत की कोई विधा हो। जो मिल जाएगा हमारे लिए हमारे कृत्यों का वही अर्थ होता है। लेकिन उस **'अर्थ'** का क्या अर्थ है? अर्थार्थ जानने की इच्छा रखने से भौतिक जगत ही आध्यात्मिकता में प्रविष्टि का हेतु बन जाता है। अन्यथा हम भौतिक जगत में भटक जाते हैं। इसलिए अर्थ (धन) अथवा साकार जगत की किसी भी विधा की प्राप्ति के लिए किए-करवाए गए कृत्य भी निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थकारी हो जाते हैं और करने-करवाने वाला भी अधोगति को प्राप्त होता रहता है।

मैं मानव हूँ, मुझे ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह मिली है, जो उपहार नहीं है, इसलिए कभी भी छीन ली जाएगी। तो मैं जो दिन-रात इतनी मेहनत कर रहा हूँ, उससे जो पाता या खोता हूँ, उस अर्थ का अर्थ क्या है? देह-चिन्तन में जब अर्थ का अर्थ जानने की तीव्र इच्छा हो जाएगी तो कर्ता भाव, हर कृत्य, उसकी मात्रा और गुणात्मकता अवश्य प्रभावित होगी। भौतिक जगत में प्राप्तियों और विभिन्न अर्थों का **'अर्थ'** निरर्थ, व्यर्थ व अनर्थकारी दृष्टिगत होते हुए

जीव को आध्यात्मिक जीवन की ओर उन्मुख कर देगा। धीरे-धीरे आध्यात्मिक जीवन में आत्मचिन्तन का अर्थ ब्रह्मत्व या शिवत्व की ओर प्रवृत्त कर देगा। वहाँ आत्मानुभूति ही ब्रह्मानुभूति में रूपान्तरित होने लगेगी। इस देह सहित जगत में कुछ भी सद्, चेतन एवं आनन्द से परे नहीं है।

'सद्' इसलिए सद् है क्योंकि सद् के सम्मुख है और 'असद्', इसलिए असद् है क्योंकि सद् के विमुख है। दोनों में 'सद्' Common है। सम्मुखता एवं विमुखता सद् की दो विधाएँ हैं। दोनों का मूल 'सद्' है। जो सद् के विमुख है वह सद् की इच्छा से है और जो सद् के सम्मुख है वह भी सद् की इच्छा से है। जहाँ यह भाव प्रबल हो जाए, कि मैं सद् के विमुख हूँ तो उसकी इच्छा से हूँ और मैं सद् के सम्मुख हूँ तो सद् की इच्छा से हूँ, वहाँ विमुखता और सम्मुखता का भेद समाप्त हो जाता है।

भौतिक जीवन में तथाकथित विकास एवं प्रगति तथा आध्यात्मिक जीवन में आत्मोत्थान एवं ब्रह्मत्व की सिद्धि के लिए **'मानव-देह'** ही साधन है। मानव-देह सच्चिदानंद की सर्वोत्कृष्ट, विशेष चमत्कारिक एवं परम रहस्यमयी सुकृति है। मानव-देह का सद् है, कि देह जन्म और मृत्यु से बँधी है। इसका जन्म-मृत्यु की अवधि में बँधा, पल-पल परिवर्तनशील एवं नश्वर होना सद् की इच्छा से है। यह देह प्रारब्ध से बँधी है तो सद् की इच्छा से है और जब प्रारब्ध से छूटेगी तो भी सदेच्छा से ही छूटेगी। यह बन्धन युक्त है चाहे बन्धनमुक्त है **'देह'** का अर्थ एक ही है। जैसे ही मैं अर्थ की ओर उन्मुख होता हूँ तो प्रारब्ध, काल और कर्म-बन्धन का शिकंजा ढीला पड़ने लगता है।

मैं अपनी देह का अर्थ और उस अर्थ का अर्थ स्वयं नहीं पकड़ सकता, इसके लिए मुझे सद्गुरु का शरणागत होना पड़ेगा। साधन (देह) का अर्थ जब साधक पकड़ना चाहता है, तो पाता है, कि साधन (देह) का अर्थ उसकी ही देह की भस्मी है। देह जो जब, जहाँ, जैसी थी, है और होगी तो उसका अन्तान्त भस्मी है। जीव जान जाता है, कि वह भस्मी तो मेरा (जीवात्मा का) अर्थ है, अतः वह अर्थ (भस्मी) ही मेरा साध्य है। जो साधन, साध्य और साधक का अर्थ है वही श्रद्धा का अर्थ है और वही साधना और सद्गुरु का अर्थ है। इस प्रकार एक का अर्थ पकड़ते ही छः बिन्दुओं का **'अर्थ'** प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से पल्ले पड़ना आरम्भ हो जाता है। सद्गुरु-कृपा से अपनी एक देह का अर्थ (भस्मी) सिद्ध होने से आत्मतत्त्व एवं ब्रह्मत्व भी सिद्ध हो जाता है।

'मैं' जीवात्मा हूँ। मैं साधक हूँ। मैं स्वयं में जन्म-मृत्यु से रहित, अपरिवर्तनीय, शाश्वत् एवं अजर-अमर हूँ। मैं अपने साधन देह के साथ भ्रमवश, अज्ञानवश, मोहवश तद्रूप हो चुका हूँ। मेरा यह साधन (मानव-देह) जन्म-मृत्यु के दो छोरों में मेरे लिए अनिश्चित अवधि में बँधा एवं पल-पल परिवर्तनशील है। यह ईश्वरीय माया में सर्वोत्कृष्ट सुकृति है। यह मुझे मिली है और कभी भी छीन ली जाएगी। इसका निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य भस्मी है। प्रत्येक पल होते परिवर्तनों में वह भस्मी ही एक ऐसा परिवर्तन है जो स्वयं में अपरिवर्तनीय है। वही देह में और जीवन में समस्त भविष्यों का **'अर्थ'** है। अर्थात् देह की परिवर्तनशीलता का अन्तिम परिवर्तन स्वयं में अपरिवर्तनीय है।

अतः मुझ जीवात्मा को सर्वप्रथम अपने साधन (मानव-देह) का अर्थ सिद्ध करना है। मैं स्वार्थी होकर अपने **'स्व'** (देह) के अर्थ का अर्थ जानने का इच्छुक **'अर्थार्थी'** होकर ही सद्गुरु का कृपा पात्र हो सकता हूँ। स्व का अर्थ, स्वा (भस्मी) है और यह **'स्वा'** (भस्मी) ही स्व सहित सर्व का अर्थ है। इस प्रकार मेरा स्वार्थ ही सर्वार्थ है। जो देह जब (समय), जहाँ (स्थान), जैसी (स्थिति) भी देह है उसका अर्थ मात्र भस्मी ही है, क्योंकि जीवन

भौतिक निरन्तरता नहीं है। कोई अरबपति होकर मरा तो वही भस्मी और भिखमंगा हो कर मरा तो वही भस्मी। किसी स्थान, लिंग, आयु, जाति का व्यक्ति मरे तो उसकी भस्मी में कोई अन्तर नहीं होता। माया के तीनों गुणों में व्यक्ति सतोगुणी, रजोगुणी, तमोगुणी किसी भी स्वभाव का हो, भस्मी एक ही है और एक ही जैसी होती है। देह का अर्थ देह से परे है, इसलिए **'भस्मी'** ही देह का वास्तविक अर्थ है। अंग्रेज़ी में अर्थ (Earth) को मिट्टी कहते हैं। देह जन्म-मृत्यु से बँधी है और अर्थ (भस्मी) जन्म-मृत्यु से रहित है। देह देश, काल, कर्म, धर्म, कर्तव्य, लिंग, सम्बन्ध, माया के तीनों गुणों से बँधी है लेकिन **'भस्मी'** देह की इन सभीं विधाओं से मुक्त है। भस्मी स्वयं में देह से मुक्त है। देह का अर्थ जो और जैसी भस्मी है वही जीवात्मा के आत्मतत्त्व का अर्थ है। क्योंकि आत्मा भी भस्मी की तरह देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत, माया के तीनों गुणों से अतीत है।

एक ही चाहत, एक ही टेक जनून एवं वहशियत बन जाए, कि ''हे प्रभु ! मुझे मेरी भस्मी से आत्मसात् करवा दो। यह मैं नहीं कर सकता। जन्मों-जन्मान्तरों में मैं अहं करता रहा हूँ, कि मैं सब कुछ कर सकता हूँ, लेकिन मेरी देह की भस्मी से मुझे तुम ही आत्मसात् करा सकते हो।'' समर्थ सद्गुरु वह है जिसने अपनी देह के इस सम **'अर्थ'** (भस्मी) का जीते जी अधिग्रहण कर लिया है। विरक्त शंकर के दिगम्बर तत्त्व की भौतिक प्रतिनिधि यह भस्मी ही है। यह भस्मी पंच-तत्त्वों की प्रपंचमय देह के शव के पंच-तत्त्वों में विलीन हो जाने के बाद अवशेष तत्त्वातीत तत्त्व है। पंच-महाभूतों की सृष्टि में अप्रकट एवं अदृश्य भस्मी ही शंकर की विभूत्यातीत विभूति विरक्ति की प्रतिनिधि है।

सद्गुरु अपने शरणागत शिष्य को निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में भटकती विश्रृंखलित देह के उस अर्थ से अवगत कराता है, जो सभी देहों का सम है। सद्गुरु कहते हैं, ''बेटा ! तू देह के मोह में अभी तक देह के अर्थ को छू नहीं पाया है, लेकिन छटपटा मत। तेरी उच्छृंखल एवं विश्रृंखलित देह तथा यथार्थ देह का अर्थ एक ही है। वह मात्र—**'भस्मी'** है। इसलिए मानव-देह

रूपी यह साधन जो भी, जैसा भी तुझे मिला है, उसे परिष्कृत करते-करते और सुधारते-सुधारते तू सिधार जाएगा। इसका अर्थ (भस्मी) अधिगृहीत कर, क्योंकि प्रारब्ध से बंधी देह का अर्थ भी भस्मी है और प्रारब्ध मुक्त देह का अर्थ भी भस्मी है। भस्मी स्वयं में काल-बन्धन, कर्म-बन्धन एवं प्रारब्ध-बन्धन से मुक्त है। तू देह रूपी साधन का अर्थ पकड़ यही साधना का अर्थ है।'' सद्‌गुरु का आशीष्य साधक आर्तनाद करता है, ''हे प्रभु ! मैं तुम्हारे सम्मुख हूँ तो मेरी भस्मी बनाओगे, मैं यदि विमुख हूँ तो तुम मेरी भस्मी ही बनाओगे। मैं उस भस्मी से आत्मसात् होना चाहता हूँ, क्योंकि भस्मी मेरी देह, जिसकी मुझे जन्मों-जन्मान्तरों में धारणा हो चुकी है उसका निश्चित, परिलक्षित, दर्शित **'अर्थ'** है। जिसमें मैं सम्मुख या विमुख हूँ उसका भी यही **'अर्थ'** है। जिससे मुझे कभी सम्मुखता या विमुखता होती है, उसका भी यही **'अर्थ'** है। सम्मुख होने के लिए शक्ति श्रद्धा है, उसका भी अर्थ यही है। सद्‌गुरु के निर्देशन में समस्त साधना का अर्थ भी यही है।'' इसके बाद सब कुछ जो भी होगा, वह साधनार्थ नहीं, सिद्धार्थ ही होगा।

अज्ञात-अज्ञेय को स्वप्न के चलते जब ज्ञान हो जाए, कि यह स्वप्न है, तो अज्ञात तद्‌रूपता का आभास ज्ञात व ज्ञेय होने लगता है। स्वप्न में मेरा विचरण अज्ञात व ज्ञेय है। स्वप्न के दौरान यह आभास, कि यह स्वप्न है—यह अज्ञात (तद्‌रूपता) ज्ञेय है और पूर्णतः आश्वस्त होना, कि साकार जगत वास्तव में स्वप्न है, यही इस स्वप्नवत् संसार का रसास्वादन है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(18 से 27 दिसम्बर 2009)

बन्धन एवं मुक्ति

मानव-देह हमें प्रारब्धवश मिलती है। जिस ग्रह, नक्षत्र, स्थान, परिवार, समाज, देश-विदेश की परिस्थितियों में जिस माता-पिता के अंश से जन्म होना है, बचपन कैसे बीतेगा, पढ़ाई-लिखाई कैसी, कहाँ, किस प्रकार होगी, विभिन्न पाठशालाओं के अध्यापक एवं सहपाठी कौन-कौन होंगे, रोज़ी-रोटी का प्रबन्ध, विवाह-शादी का समय व स्थान, सन्तान और उनकी पढ़ाई तथा विवाह आदि सब कुछ इस प्रारब्ध रूपी कैसेट में पहले से ही अंकित हो चुका है। जन्म से मृत्यु तक विभिन्न घटनाएँ प्रकार की आर्थिक स्थितियाँ, विभिन्न प्रकार के रोग-दोष, उन्नति-अवनति, मृत्यु का समय, स्थान, स्थिति, पाना-खोना मूलतः जो भी देहार्थ (देह के लिए) है, वह प्रारब्ध है। प्रारब्ध का अंकन **'देहार्थ'** विधाओं से ही हुआ है। देह की धारणावश हम मानव होश सम्भालते ही समय-समय पर विभिन्न स्थितियों एवं अवस्थाओं की देह व देहों के लिए आजीवन कुछ न कुछ करते-करवाते रहते हैं। विभिन्न स्थितियों एवं अवस्थाओं में देह के लिए आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। कभी हमारे लिए हमारे माता-पिता ने किया-करवाया, कभी हम माता-पिता बनकर कुछ न कुछ करते-करवाते रहते हैं। देहार्थ किए गए इन्हीं कृत्यों को हमने अज्ञानवश अपना कर्म मान लिया।

प्रभु की कार्यप्रणालियाँ अदृश्य, रहस्यमय एवं पूर्णतः कम्प्यूटराइज़्ड हैं। होश सम्भालने पर जैसे ही हम में 'मैं देह हूँ' का भाव जाग्रत होता है, उस भाव की साकार में जगत सहित निराकार रूप में Recording हो जाती है। देह स्वयं में एक अदृश्य व निराकार भाव है। देह भाव कर्ता भाव में ले आता

है। 'मैंने कुछ किया है' यह भी अदृश्य व निराकार भाव है। उस विशिष्ट स्थिति या परिस्थिति में उस भावानुसार जो भी साकार में आपका स्वरूप होगा, यह पहले निराकार रील में Record हो जाता है। Recording में भावानुसार समय-समय पर संशोधन, परिवर्तन, विस्तार, संकुचन, संहार, नवीनीकरण आदि होता रहता है। भावों को भाव रूपान्तरित करते हैं, भावों का भाव हृष्ट-पुष्ट-तुष्ट अथवा रुष्ट करते हैं और भाव सतत् बदलते रहते हैं। अन्ततः भावों के समन्वित स्वरूपानुसार निराकार मानस में उन भावों का साकार में अंकन हो जाता है। इस Case file का नाम प्रारब्ध है। इसीके अनुसार जीवन में विशिष्ट मोड़, सुख-दुःख, पाना-खोना आदि चलता रहता है।

'प्रारब्ध' दैवीय निर्णयों की Case file है। प्रारब्ध हमारा भाव है और इसकी निराकार में हुई Recording साकार है। देह सहित जगत में स्वतः होते कृत्यों के प्रति अहं में विशिष्ट भाव होने से हमारा क्या होगा यह दैवीय कार्य प्रणाली पूर्णतः कम्प्यूटराइज़्ड है। वहाँ पाप-पुण्य, मर्यादाओं आदि की समस्त सीमाएँ समाप्त हो जाती हैं। संस्कारों एवं स्वभाव वश किसी विशिष्ट कृत्य के नेपथ्य में मानव की नीयत (Intention), वस्तु की प्राप्ति या खोने पर बनने वाले भावों की श्रेणी के अनुसार साकार नाम-रूपों में अंकित हो जाती है। अन्ततः उस समस्त Recording के **अन्तिम प्रारूप का नाम 'प्रारब्ध' है।** मानव अहंवश ईश्वर विमुखता में देहार्थ जो भी करता-करवाता है, प्रारब्ध की रील में वे कृत्य साकार रूप में अंकित हो जाते हैं और जन्म से मृत्यु तक एवं अन्तिम संस्कार होने तक समय-समय पर देह की स्थितियों एवं अवस्थाओं के अनुसार हमारे सम्मुख आने लगते हैं। उसमें संशोधन, परिवर्तन, नवीनीकरण, परिवर्द्धन आदि होते हैं, वे आगे चलते हैं। इस प्रकार प्रारब्ध एक प्रकार से सज़ाओं का लेखा-जोखा है।

विभिन्न मानसिक स्थितियाँ बनती हैं, जो हमारे सुख-दुःख, लाभ-हानि, पाना-खोना, मिलना-बिछुड़ना आदि का कारण बनती हैं। जीवन में आने वाली विभिन्न स्थितियों का अधिग्रहण हम अपने भावानुसार करते हैं और

तदनुसार ही प्रभावित होते हैं अथवा निर्लिप्त रहते हैं। सारा खेल निराकार में, निराकार द्वारा, निराकार के लिए चलता है और साकार में प्रकट होता है। साकार में हुआ प्रकाट्य पुनः निराकार मानस और भावों को प्रभावित करता है। ईश्वर का यह रहस्यमय खेल मानवीय बुद्धि से परे का चमत्कार है। हम सब मानव विशिष्ट स्वरूपों-रूपों में एक दैवीय कार्य प्रणाली के अन्तर्गत बँधे हुए हैं।

मन निराकार एवं अदृश्य है और मन की चाहतें, आसक्तियाँ, विभिन्न भाव और विरक्ति भी दिखाई नहीं देती। दृश्यमान एवं साकार जगत की विविध विधाओं से स्वयं में निराकार एवं अदृश्य आसक्ति या चाहतें कभी पूरी नहीं होती। क्योंकि चाहत या आसक्ति मानसिक है भौतिक नहीं है तथा निराकार एवं अदृश्य है। इच्छित वस्तु या पदार्थ, प्राणी अथवा देह सहित साकार जगत की किसी विधा के प्राप्त होने पर भी मनोकामना कभी पूरी नहीं होती है। प्राप्त वस्तु में संशोधन, परिवर्तन, विस्तार, संकुचन की कामना हो सकती है अथवा किसी अन्य पदार्थ की कामना हो सकती है। चाहतों का रूपान्तरण होता रहता है।

चाहत या आसक्ति का साकार जगत की विभिन्न विधाओं एवं पदार्थों की प्राप्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है। चाहत एक निराकार एवं अदृश्य मानसिकता है। देह सहित साकार दृश्यमान जगत निराकार से विभिन्न मानसिकताओं के अनुसार निर्माण, पालन के विभिन्न रूपों में प्रकाट्य है। जीव को भ्रम हो जाता है, कि मेरी चाहत पूरी हुई है, मैंने संघर्ष करके प्राप्त किया है। देह सहित साकार जगत विभिन्न मानसिकताओं के अनुसार स्वतः होता प्रकाट्य है। देह की जैसी मानसिक स्थिति समय-समय पर होती है, समय-समय पर जगत भी तदनुसार ही होता है। यह मानसिक स्थिति प्रारब्धानुसार बनती है। जब अहंवश मैं स्वयं को कर्ता मान लेता हूँ (जोकि मैं न हूँ, न था और न हो सकता हूँ) वहाँ से ईश्वर विमुखता में प्रारब्ध बनना शुरू होता है। ईश्वर कभी मेरे विमुख नहीं होता और मैं कर्ता बनकर विमुख सा हो जाता हूँ। प्रारब्धवश मिली देह, एक सज़ा है। देह में होश सम्भालते ही मैं

स्वयं को आसक्त पाता हूँ। कोई न कोई अभाव, चाहतें, महत्त्वाकांक्षाएँ, इच्छाएँ मुझे घेर लेती हैं। आजीवन मैं आसक्तियों में विचरता हूँ। करना, पाना-खोना-होना, बनना-बनाना आसक्तियों में शुरू होकर आसक्तियों में चलता है और आसक्तियों में ही समाप्त हो जाता है। कृपया एकाग्र करिए, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

देह, प्रारब्ध से बँधी है। जन्मपत्रियाँ, हाथ की रेखाएँ प्रारब्धानुसार ही बनती हैं। किस उम्र में किस प्रकार विशेष घटनाएँ घटेंगी, दुर्घटनाएँ, रोग आदि आएँगे कुशल ज्योतिषाचार्य जन्मपत्रियों एवं हाथ की रेखाओं से पढ़ लेते हैं और बता देते हैं। ज्योतिषी वस्तुतः भविष्य नहीं, जो अतीत में हो चुका है वह बताता है, क्योंकि घटित घटनाएँ अंकित हो चुकी हैं। समय-समय पर देह की स्थिति बनने पर उनका प्रकाट्य होना शेष है। प्रारब्ध का अंकन मेरे द्वारा कर्ता भाव के अहं एवं ईश्वर विमुखता में किए गए कृत्यों की सज़ाओं के रूप में Case file है। आगे फिर मैं कुछ न कुछ करता हूँ और प्रारब्ध और आसक्ति को लेकर फिर मरता हूँ तथा यह अर्न्तहीन सिलसिला जन्मों-जन्मान्तरों में चलता रहता है।

यहाँ महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है, कि मैं कौन हूँ, जिसे प्रारब्धवश देह दी जाती है ? यह मैं, जीवात्मा नहीं, देह के साथ तद्‌रूप हुआ जीव है, जिसका आत्म तत्त्व, देह का यथार्थ एवं ईश्वर का ईश्वरत्व तीनों आच्छादित हो चुके हैं। मैं जीव भाव में स्वयं को देह मानता हुआ पहले से ही विकृत मानसिकता से ग्रसित हूँ। देह में रोग के लक्षण प्रकट होने पर और उनसे दुःखी होकर रोगी स्वयं को रोगी मानकर ही चिकित्सक के पास इलाज हेतु जाता है। मेरा मन युगों-युगान्तरों एवं जन्मों-जन्मान्तरों से सिक (Sick) है और महादुर्भाग्य-वश मुझे अपनी Sickness का भी ज्ञान नहीं है।

जीव-सृष्टि में प्रारब्धवश देह प्राप्त करके अहंवश, कर्मठता को लिए होश सम्भालते ही **'मानसिक जीव'** पुनः जीवन में आगे बढ़ता है। आजीवन कुछ न कुछ आसक्तिवश करता-पाता-खोता है और बहुत कुछ मिलता एवं होता है। लेकिन उसे अपने दुःख, चाहतों, आसक्तियों, अभाव, भय, त्रास,

विक्षेप, आधि-व्याधि-उपाधि आदि का मूल कारण अज्ञात ही रहता है। देहधारणा की मानसिकता के ग्रसित होने के कारण जीव को प्रारब्धवश बार-बार देह मिलती है। अपनी मानसिकतावश पुनः पुनः वह देह धारण करता है वह प्रारब्ध से मुक्त कैसे होगा ? जीव प्रारब्धवश देह, प्रारब्ध से मुक्त होने के लिए मिलती है। प्रारब्ध की सज़ा सुधारने के लिए दी जाती है। कोई चोरी के इल्ज़ाम में पाँच वर्ष कैदी रहा और जेल से छूटकर फिर चोर रहा, तो सज़ा तो धारावाहिक चलती रहेगी। इसी प्रकार जीव प्रारब्धवश मिली देह में आजीवन प्रारब्ध भुगतता हुआ एक और प्रारब्ध लेकर मर जाता है। पुनः प्रारब्धवश देह मिल जाती है। इस **'वश'** से बाहर आने के लिए उसे विवश, बेबस होकर आर्तनाद करनी होगी, कि प्रभु ! मैं फंसा हुआ हूँ मुझे बाहर निकालो। मैं देह से, देह के दौरान, देह के लिए बाहर आना चाहता हूँ ताकि प्रारब्ध से मुक्त होकर तुम्हारी रची सृष्टि का रसास्वादन करूँ। एक सज़ा भुगतता रुग्ण मानसिकता वाला जीव प्रभु की माया का रसास्वादन नहीं कर सकता उसके द्वारा फंसास्वादन ही होगा। रुग्ण मानसिकताओं को लिए जीव देह में होश सम्भालते ही जीवन का स्वयं नेता बन जाता है। देह व जीवन तो प्रारब्धानुसार चलना ही है उसे नहीं पता, कि वह जो स्वयं को देह समझ एवं मानकर कर-करवा रहा है यह उसका अज्ञान, भ्रम एवं रोग है।

देह जिसने बनाई है, जो इसे चला रहा है, वास्तव में वही सब कुछ करता है। लेकिन अज्ञानवश एवं महादुर्भाग्यवश देह के साथ तदरूपता सी में, जीव-कोटि में हमें कर्ता होने का भ्रम हो जाता है। इस भाव में स्वतः होने वाले कार्य भी पुनः हमारे बन्धन के हेतु बनते रहते हैं। हम सब अपने विचारों की संकीर्णता अथवा विशालता, मान्यताओं, धारणाओं, स्थितियों की कैद में बँधे हुए हैं। यह संसार एक खुली हुई जेल है। हमारा सम्पर्क, मिलना-जुलना सब कुछ कैदियों से ही है। कल्पना करें, कोई कैदी यदि जेल से छूट जाए, तो उस व्यक्ति के अधिकार कितने असीम हो जाएँगे। जब संसार रूपी तथाकथित कारागार में रहते हुए किसी को सद्गुरु-कृपा से मुक्ति मिलती है, तो उसी व्यक्ति की हर स्थिति एक स्थित्यातीत स्थिति में रूपान्तरित हो

जाती है, जो प्रारब्ध, काल एवं कर्म बन्धन से मुक्त होती है। जीव-कोटि में प्रारब्ध बन्धन, स्वयं में एक मानसिक बन्धन है, जो देह के साथ तद्‌रूपता सी में समय-समय पर देह व जगत के विभिन्न साकार रूपों में प्रकट होता रहता है।

यह धारणा कि 'मैं देह हूँ' स्वयं में गैरकानूनी भाव है और दैवीय दृष्टि का अपराध है। क्योंकि मैं देह नहीं हूँ और देह मेरी भी नहीं है। जन्म, माता-पिता और जन्म से लेकर मृत्यु तक होने वाली कोई घटना मेरे हाथ में नहीं है। देह के अगले श्वास की भी मुझे कोई सुनिश्चितता नहीं है, कल जो हुआ वह वैसा ही होना था। आज जो हो रहा है, वैसा ही होना है और कल यदि मेरे लिए आएगा तो जैसा होना होगा, वैसा ही होगा।

जीवकोटि में जीवात्मा देह-धारणा से आविर्भूत ही रहता है और देहार्थ ही सब कुछ सोचता एवं करता-करवाता है। मानव देहधारी होने पर भी इसमें मानव-देह का अर्थ जानने की जिज्ञासा नहीं होती। देह का अर्थ इसके सम्मुख स्पष्ट दिखाया गया था, लेकिन जानते हुए भी जानबूझ कर इसने जानने का प्रयत्न नहीं किया। मैं मानव-देहरूप में क्यों हूँ, देह रूप में मेरे होने का अर्थ क्या है ? देह प्रारब्धवश मिली है और एक दिन मुझसे छीन ली जाएगी। देह रूप में कुछ भी कर-करवा लूँ, कुछ भी पा लूँ या खो लूँ, कुछ बनू या न बनू देह एक न एक दिन भस्मी बन जाएगी। देह को मैं और मेरा मानना ईश्वर विमुखता है और यह सबसे बड़ा पाप है। देह व जीवन का अर्थ देहातीत है और वह है—डेढ़ दो किलो **'भस्मी'**। जीव को प्रभु ने देह के इस अर्थ से अवगत कराते हुए भस्मी को देह से बाहर रखा है। जीव के धर्म-कर्म, सम्बन्ध, मर्यादाओं, लाभ-हानि, सुख-दुःख सबका अर्थ एक ही है। जीव भाव में जिसको मैंने अपना भविष्य बनाया हुआ है, वह मेरा भविष्य है ही नहीं। भस्मी का देह के होने या न होने से कोई सम्बन्ध नहीं है, यही निश्चित, परिलक्षित व दर्शित है। इस **'अर्थ'** को उपेक्षित करके ही **'मैं'** (जीवात्मा), जीव कोटि में प्रारब्ध, काल और कर्म बन्धनों की अन्तहीन श्रृंखला में जकड़ा हुआ निरर्थ, व्यर्थ एवं अनर्थकारी मिथ्या काल-चक्र में भटक रहा हूँ।

किसी भी कर्म के बाह्य देह व जगत में प्रकट होने से पहले देह की आन्तरिक कार्य प्रणालियों का सन्तुलित एवं सुव्यवस्थित होना अति आवश्यक है। इसी प्रकार प्रकृति, मौसम, समाज व देशकाल एवं बाह्य जगत की समस्त विधाओं का तदनुसार सुसम्बद्ध होना भी अत्यावश्यक है। हम मानव होने के नाते यह जानते हैं, कि कोई भी कर्म हमारे किसी के हाथ में नहीं है। फिर भी हम कर्म के अभिमान (मैंने किया, मैं कर सकता हूँ, मैं करूँगा आदि) से मुक्त नहीं हो पाते। बार-बार देखते हैं, कि करते कुछ हैं, होता कुछ और है। बिना किए भी बहुत कुछ हो जाता है, कभी बहुत कुछ करने पर भी कुछ नहीं होता। लेकिन अविवेक एवं अज्ञान के वशीभूत हुए हम प्रारब्धवश जकड़े ही रहते हैं।

बड़ी जेलों में सज़ा भुगतते कैदियों को जेलर द्वारा उनके अच्छे-बुरे व्यवहार एवं आचरण के तदनुसार सुविधाएँ दीं या छीनी जाती हैं और विभिन्न कार्य सोंपे जाते हैं। उन कैदियों की अपनी विशिष्ट प्रतिभाओं, रुचियों, सम्बन्धियों, पद-प्रति ठा आदि को एक तरफ रखकर मात्र उनके अपराधों को मद्देनज़र रखा जाता है। यदि कोई कैदी जेल को तोड़कर भाग जाए, तो भागे हुए कैदी का अपराध दुगना हो जाता है। सज़ा की अवधि है, उसके भीतर वह सुधर जाए अथवा अवधि समाप्त होने से पूर्व भी उसके असाधारण चाल-चलन को देखते हुए उसे छोड़ दिया जाता है।

इस संसार रूपी कारागार में सज़ा की अवधि, देह की अवधि से मिलती नहीं है। देह की अवधि सज़ा की अवधि से अधिक भी हो सकती है। सज़ा की अवधि के भीतर कैद में रहते हुए उससे जो करवाया गया, उन कर्मों का उसकी प्रतिभाओं, योग्यताओं, रुचियों, गुणों आदि से कोई सम्बद्ध नहीं होता। उसका मिलना-जुलना अन्य कैदियों से ही होता है और उसे वही कैद की सज़ाओं से भरा जीवन ही वास्तविक जीवन लगने लगता है। देह के साथ तद्रूपता व जीवकोटि में किए जाने वाले कर्म है; जो ईश्वर रूपी जेलर हम सबसे जबरदस्ती करवा रहा है। मानव होने के नाते जीव का वास्तविक कर्म यह है, कि सज़ा समाप्त करके इस संसार रूपी जेल से जल्दी से जल्दी

बाहर आ जाए। तब उसे अपना आपा, अपनी हैसियत का ज्ञान हो जाएगा।

प्रारब्धवश रहते हुए तो जीव यह भी नहीं जान सकता, कि वह कौन है और उसकी मानव-देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) क्या है ? देह में जो निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ हैं, उसी को भ्रमवश अपनी तथाकथित कर्मठता और जीवन माने हुए है। उसकी बुद्धि इतनी कुण्ठित हो जाती है, कि जेल में ही मिली सुख-सुविधाओं को अपनी तथाकथित प्रगति और विकास माने हुए है। जेल में ही कुछ कैदियों के नेता भी बन जाते हैं। जेल के साथी ही वोट देते हैं। हम जानते ही नहीं हमारा स्वरूप क्या है। देह का यथार्थ क्या है? जेल में जाते-जाते सब कुछ भूल गए। हमारी माँगे भी सीमित हैं। जन्मों-जन्मान्तरों से जेल में रहते-रहते बुद्धि इतनी कुण्ठित हो गई है, कि इससे बाहर की बात सोच ही नहीं पाते। इसे ही प्रारब्ध कहा है।

देह सहित जगत में सब कुछ लब्ध था, उसे इसने कर्ता भाव में उपलब्ध किया। पृथ्वी, जल, आकाश, वायु अग्नि सब कुछ बने-बनाए मिले थे। अन्न, जल, फल, वनस्पतियाँ, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह-नक्षत्र, माता-पिता, बाल-बच्चे, परिवार, सम्बन्धी सब कुछ लब्ध थे। अहंवश कर्म बन्धन के कारण लब्ध को देहार्थ उपयोग के लिए उपलब्ध किया। इस प्रकार हम सब योग से उपयोग में आ गए और जिनका हमें भोग लेना था, वे पदार्थ व प्राणी ही हमें भोगने लगे। सदुपयोग हम भूल ही गए। सदुपयोग, सद् की शरण में जाने पर ही होगा। लब्ध को उपलब्ध करने में ही प्रारब्ध बना। जब तक प्रारब्ध से मुक्त नहीं होगा, तब तक जीव इस संसार रूपी जेल से बाहर नहीं आ सकता।

प्रारब्धवश कर्ता भाव में ईश्वर विमुखता में हुए कृत्यों की सजा के रूप में संसार रूपी जेल में मानव-देह देकर प्रभु जीव को एक स्वर्ण अवसर प्रदान करते हैं, कि वह शीघ्रातिशीघ्र अपनी देह का अर्थ जाने, माने और प्रारब्ध की सज़ाओं से मुक्त हो जाए। पहले जीव को यह जानना और मानना आवश्यक है, कि मैं जेल में सज़ा भुगतने वाला एक कैदी हूँ। हम सब मानव देहधारी है, हमें आत्मविश्लेषण करना अति आवश्यक है, कि जो देह किसी भी दिन छिन ली जाएगी उस देह में देह द्वारा, देह के लिए अधिकतम प्राप्तियों का भी अर्थ

क्या है? मेरी चाहतों, आकांक्षाओं, लालसाओं का अन्ततः क्या होगा? प्रारब्धवश दैवीय सज़ा मिली है इससे छूटना लगभग असम्भव है। देह में जो कुछ करना, पाना, खोना, होना है वह प्रारब्धानुसार स्वतः होता रहेगा तो **'मैं'** क्यों हूँ ? मैं क्या सज़ाएँ भुगतने के लिए संसार में लाया गया हूँ ? प्रारब्धानुसार देह व जगत मिला है, इसमें मैं फिर कुछ न कुछ करूँगा, तो प्रारब्ध फिर बन जाएगा। मैं इससे बाहर कैसे आऊँगा। मानव-देह व जीवन का अर्थ सज़ा भुगतना नहीं हो सकता।

जहाँ जीवन का अर्थ जानने की जिज्ञासा प्रबलतम हो जाती है वहीं दैवीय कृपावश सद्‌गुरु का जीवन में पदार्पण हो जाता है। सद्‌गुरु कहता है, कि ''तेरे मानस की आसक्तियाँ विभिन्न मानसिकताओं के रूप में प्रारब्ध बन जाती हैं। तू बँधा हुआ नहीं है। कर्ता भाव से जो तेरी मानसिकता विकसित हुई उनके कारण तू स्वयं को बँधा हुआ सा आभास कर रहा है। तू खुदा की सन्तान है, तू खुला हुआ ही है लेकिन तू **बँधा सा** मान रहा है, यही तेरी सज़ा है। जब तू बँधा सा नहीं होगा, तुझे खुले होने और अपनी जीवन मुक्त स्थिति का आनन्द आएगा।''

सद्‌गुरु कहता है, कि ''यह सज़ा इसलिए मिली है क्योंकि तू देहार्थ ही सब कुछ करता-करवाता रहा और देह का अर्थ तूने जानना नहीं चाहा। जबकि देह का अर्थ तेरे सम्मुख है, तूने स्पष्ट दृष्टिगत इस अर्थ को जानबूझ कर उपेक्षित किया है। तेरी देह का अर्थ तेरी भस्मी है। **तू बहुत कुछ जानता है; यह भी जानता है, कि तेरी देह की खाक बनेगी और कभी भी बन सकती है।** लेकिन खाक के बारे में तू खाक जानता है! तू हर कृत्य का अर्थ देख कर ही कार्यरत होता है। देह व देहों का अर्थ सबके सामने रखा हुआ है, कि देह अन्ततः **'भस्मी'** बनती है। देह का यह अर्थ देह से परे है। जो, जब, जहाँ, जैसी भी देह थी, है और होगी इसका अर्थ एक ही है और यह अर्थ सबका एक ही जैसा है जो इस अर्थ को जानते हैं उसे जानबूझ कर उपेक्षित करते हैं, वे मानव नहीं जानवर हैं। जो जानता है और उपेक्षित नहीं कर रहा, वह मानव है। जो जानबूझ कर जानते हुए जानना चाहता है वह महामानव

या महापुरुष है और जो केवल हर पल, हर क्षण केवल उसी अर्थ को ही महात्म्य देता है और आत्मसात् करना चाहता है वह महात्मा है। जिसने उसे आत्मसात् कर लिया है वह परम आत्मा (परमात्मा) है।''

जलचर, थलचर, नभचर एवं अन्य मानवेतर प्राणी जगत के लिए देहार्थ **'प्रकृति'** ही सब कुछ करती है। समुद्रों में जीवों के लिए अनुकूलन और प्रबन्धन प्रकृति के ही हाथ में है। उन्हें तो अपनी देह का अर्थ मालूम ही नहीं है। मानवों से प्रकृति की कोई शत्रुता तो नहीं है। मुझे मानव होने के नाते सतर्क एवं जागरूक रहना होगा, कि मैं किस ओर बढ़ रहा हूँ। देह का अर्थ भस्मी है, वह किसी भी दिन बन सकती है। मैं उसे आत्मसात् करने की इच्छा करूँ। एक ही देह रोज़ अलग-अलग है और सब देहें असम और विषम हैं। लेकिन सबका अर्थ **'सम'** है। सद्गुरु कहता है, कि इस अर्थ से आत्मसात् होना तो कृपा-साध्य है परन्तु तू इच्छा तो रख। इस इच्छा से ही तेरी देह सार्थक होनी शुरू हो जाएगी। देह की हर क्रिया-अक्रिया और सब कुछ प्रभु की उपासना बन जाएगा।'' कृपया एकाग्र करिए।

सांसारिक अदालतों द्वारा भी किसी को कैद आदि सज़ाएँ देने का उद्देश्य उसे पीड़ित करना नहीं होता। सज़ा की पीड़ाओं में वह अपनी गलती को सुधार ले, यही कोर्ट द्वारा दी गई सज़ा का लक्ष्य होता है। इसके लिए सज़ा के दौरान उसे यह याद रखना होगा, कि मैं अपनी गलती के लिए सज़ा भुगत रहा हूँ और यहाँ से छूटने के बाद ऐसी गलती कभी नहीं करूँगा। यही सज़ा का अर्थ है। युगों-युगान्तरों से विभिन्न जन्मान्तरों में जीव को मानव-देह की धारणा हो चुकी है। जीव पहले से ही आसक्ति या मन की Sickness से ग्रसित है, वह अपना सुधार कैसे करेगा ? एक रोगी किस कर्म द्वारा अपना सुधार करेगा ? सुधार के लिए पहले उसे स्वयं आश्वस्त होना होगा, कि मैं रोगी हूँ, नहीं तो उसका प्रत्येक कर्म समय-समय पर उसकी मानसिकता के अनुसार ही होगा।

प्रारब्धवश मिली देह से, विकृत एवं रुग्ण मानसिकता को जीव किसी भी कर्म द्वारा कैसे संशोधित एवं उत्कृष्ट कर सकता है। एक विकृत एवं रुग्ण

मानसिक जीव को ईश्वर ने अपनी माया में सर्वोत्कृष्ट संरचना मानव-देह प्रारब्धवश दे दी। वह उसमें संशोधन एवं परिष्कार न करके उसे और विकृत और रुग्ण कर लेता है। अन्ततः पदार्थों की आसक्ति को लेकर देह छोड़ता है, साथ ही देह सहित समस्त पदार्थ भी यहीं छूट जाते हैं। उस विकृत साधक की साधना, साधन, श्रद्धा, साध्य सब कुछ विकृत ही होगा। उसकी तथाकथित साधना व श्रद्धा जीव भाव की विकृत मानसिकता को हृष्ट-पुष्ट एवं तुष्ट करते हुए प्रारब्ध को परिपुष्ट करने के लिए होती है। ऐसे तथाकथित साधकों की साधना देहार्थ बहुत सी सिद्धियाँ प्राप्त करने के लिए होती है जिससे देह रूप में उनकी श्रेष्ठता एवं वर्चस्व बना रहे।

साधना वस्तुतः साध्य (आच्छादित आत्म तत्त्व) के अनावरण के लिए किया जाने वाला आर्तनाद है। जब तक वह आर्तनाद नहीं होगी तब तक साध्य (आच्छादित आत्म तत्त्व का अनावरण) उपेक्षित ही रहेगा। देह व जीवन के **'अर्थ'** के लिए आर्तनाद अपेक्षित है। देह व जीवन के अर्थ के लिए किया जाने वाला नाद, अर्चना (अर्थ नाद) है। अराधना (अर थ + नाद) भी अर्थ के लिए आर्तनाद है। नाद में शब्द नहीं होते, विह्वल एवं विवश होकर किए जाने वाले अश्रुपूरित नाद को आर्तनाद होता है। जहाँ जीव अपनी स्थिति का वर्णन करने की स्थिति में भी नहीं होता, वहाँ से आर्तनाद का प्रस्फुटन होता है।

प्रारब्धवश जन्म-मृत्यु की अवधि में बँधी देह इसलिए मिलती है, कि शीघ्रातिशीघ्र प्रारब्ध कट जाए। हाथ की रेखाओं और जन्मपत्रियों में प्रारब्ध का लेखा-जोखा है, इससे छूटने का लेखा-जोखा नहीं है। प्रारब्ध काटने के लिए सद्‌गुरु-कृपा एवं पुरुषार्थ चाहिए और इसके लिए विवशता, समर्पण एवं अर्थ के लिए आर्तनाद अपेक्षित है। विवशता, बेबसी का उद्‌घोष (आर्तनाद) ही पुरुषार्थ का बीज है।

प्रारब्ध की वशता से बाहर आने के लिए विवशता में किया गया आर्तनाद, पुकार, अश्रुपूरित मौन नाद ही एकमात्र उपाय है। यही साधना है। अपनी उत्कृष्टतम बुद्धि से उद्‌घोष कर दें, कि मैं प्रारब्ध में बँधा हुआ विवश

जीव हूँ, इसलिए स्थाई तौर पर अभाव में ही हूँ और अभाव में ही रहूँगा। "प्रभु मेरी बुद्धि इस योग्य ही नहीं है, कि मैं प्रारब्ध से बाहर आ पाऊँ। त्राहि माम्! आप कृपा कीजिए। मैं कौन हूँ, मैं नहीं जानता और आप कृपा करके तो मुझे जनवा सकते हैं। यह देह क्या है, मुझे क्यों मिली है, मैं नहीं जानता और न जान सकता हूँ। मैं पाप-पुण्य, शुभ-अशुभ कुछ नहीं जानता और स्वयं इससे बाहर आने में असमर्थ एवं अशक्त हूँ। है प्रभु ! मुझे मेरी देह की भस्मी से आत्मसात् करा दो।"

यह विशुद्ध इच्छा देहार्थ सभी चाहतों को निगल जाएगी। जो देहार्थ से परे का अर्थ है उसके लिए आर्तनाद को प्रार्थना (प्रा अर्थ ना) कहा गया है। सद्गुरु कहता है, कि "तूने इस अर्थ को जानते हुए भी नहीं जानना चाहा और जानबूझ कर उपेक्षित किया। इसलिए तू जानवरों से भी बद्तर जीवन जी रहा है। अपनी उत्कृष्टतम देह से, देह द्वारा, देह के लिए वह सब एकत्र कर-करवा रहा है, जो तुझे मालूम है किसी भी दिन छोड़ कर जाना पड़ेगा। देह का अर्थ तूने जानना नहीं चाहा और देहार्थ (देह व देहों के लिए) वह सब करता रहा, जो स्वतः हो रहा था। तेरी सबसे विषम और असम देह का अर्थ **'सम'** है। **'भस्मी'** सम अर्थ है और वही तेरी समर्थ है। अपनी देह के इस अर्थ को जानने की इच्छा से ही तू स्वयं को अति विशिष्ट, असमान्तर एवं समर्थवान अनुभव करेगा। देह का अर्थ भस्मी है लेकिन इस अर्थ का अर्थ विरक्ति है। धीरे-धीरे तेरा देह भाव, भस्मी भाव में रूपान्तरित हो तुझमें विरक्ति जाग्रत कर देगा। विरक्ति वीरता है और आसक्ति अशक्ति है।"

अपनी देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य जो है, वह किसी ने नहीं देखा, लेकिन मैं देह के साथ तद्रूपतावश यह मान कर चलता हूँ, कि मैं पैदा हुआ था। जन्मदिवस मनाता हूँ और मृत्यु से भयभीत रहता हूँ। यद्यपि जन्म की तरह आज तक किसी ने अपनी मृत्यु भी नहीं देखी। मैंने अपना जन्म देखा नहीं और मृत्यु देखनी नहीं। मृत्यु नहीं देखनी तो शव और भस्मी देखने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। किसी ने अपनी निद्रा भी नहीं देखी, यद्यपि मैं रोज़ सोता हूँ और सोना चाहता हूँ। मुझे ज्ञान है, कि मैं सोया था

और आज दिनभर थक कर फिर सोऊँगा। निद्रा में जिस देह के साथ तद्‌रूपता के कारण मैं अपना जन्म हुआ मानता हूँ और मृत्यु से भयभीत रहता हूँ वह देह और समस्त साकार जगत की विभिन्न विधाएँ मेरे लिए नहीं रहती। मैं सोकर बहुत शान्ति और विश्राम अनुभव करता हूँ। सोते समय जब मेरी देह सहित जगत मेरे लिए नहीं था, उस स्थिति की अनुभूति मैंने नहीं की। निद्रा का द्योतक कोई पदार्थ मेरे पास नहीं है, जिसकी मैं अवधारणा कर सकूँ। लेकिन देह की अन्ततः बनने वाली **'भस्मी'** एक निश्चित पदार्थ रूप मेरे सम्मुख है।

मेरी साकार देह के साथ तद्‌रूपता है। निद्रा देह की निराकार अवस्था है और **'मैं'** (जीवात्मा) ईश्वर का इकलौता मानस-पुत्र स्वयं में निराकार ही हूँ। साकार देह के साथ तद्‌रूपतावश मैं स्वयं को देह मान लेता हूँ और जन्म-मृत्यु की निरर्थक कल्पनाओं में जन्म-दर-जन्म भटकता रहता हूँ। साकार देह का निराकार देह के रहते भी है। निद्रा रूप में, मूर्च्छा रूप में, विस्मृति रूप में और मृत्यु रूप में देह होती है, लेकिन मेरे लिए नहीं होती। ये सब अवस्थाएँ स्वयं में अवस्थातीत हैं, लेकिन उनकी अवधारणा मैं नहीं कर सकता, क्योंकि इन अवस्थाओं का द्योतक कोई **'पदार्थ'** नहीं है। एक पदार्थ के रूप में भस्मी है, जो देह के साथ तद्‌रूप हुआ जीवात्मा देख सकता है, कि मैं यह भस्मी बनूँगा ही। यह निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **है, था** और **होगा।** यह **'भस्मी'** रूप पदार्थ देह में जीवन-काल में भी है, लेकिन दिखाई नहीं देता।

जीवात्मा सद्‌गुरु से प्रार्थना करता है, कि **मुझे मेरी भस्मी दिखा दो। जीवन-काल में जब 'मैं' उसका ध्यान करके कल्पना भी करूँगा, कि मैं भस्मी बन गया हूँ, तो यह भस्मी एकमात्र ऐसा पदार्थ है, जिसको जीवन-काल में धारण करने से 'पद' हट जाता है और अर्थ रह जाता है। तब मुझे जीवन का 'अर्थ' मिल जाता है।** भस्मी रूप इस पदार्थ को जीवन-काल में किसीने नहीं देखा और इस पदार्थ के लिए लालायित भी कोई नहीं होता। **'भस्मी'** प्रभु की अतिशक्ति विरक्ति का प्रतीक है जो समस्त

विभूतियों का स्रोत है। इसलिए जीवन-काल में अन्य पदार्थों का महत्त्व शून्य ही है। वास्तव में एक ही **'पदार्थ'** है अन्य समस्त पदार्थों का एक ही अर्थ है वह है भस्मी रूप पदार्थ। यही देह का यथार्थ है। भस्मी से आत्मसात् होते ही **'अर्थ'** रह जाता है। वहाँ विरक्ति जाग्रत होती है। यह विरक्ति **'धर्म'** है। जो पुरुषार्थ (पुरुष+अर्थ) का दूसरा सोपान है। पुरुषार्थ-अर्थ से प्रारम्भ होता है। यह पदार्थ **(भस्मी)** देहार्थ व जीवनार्थ का द्योतक है। जीवन में अन्य पदार्थ जीवन का अर्थ छीन लेते हैं और एक यह पदार्थ जीवन का अर्थ दे देता है। यह पदार्थ (भस्मी) **'मैं'** (जीवात्मा) ने जन्मों-जन्मान्तरों में उपेक्षित किया हुआ था। जीवन में समस्त पदार्थों की इस एक पदार्थ में परिणित होती है इसकी अवधारणा अन्य समस्त पदार्थों को परे हटा देती है। यही देह का सदुपयोग है। यह देह का पदार्थ है जो देह द्वारा निर्मित है और पदार्थ देहातीत है देह का नहीं है। सब अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष की बातें करते हैं और जीवन में अर्थ को छू भी नहीं पाते। देह व जीवन में विभिन्न पदार्थों के लालायित रहते हुए आसक्तियों से युक्त जीवन में **'अर्थ'** को भी नहीं छू पाते। निरर्थ, व्यर्थ, अनर्थ में भटकते हुए असीम अधोगति को प्राप्त होते रहते हैं। जीवन में **'अर्थ'** को मैं तब छू पाता हूँ जब मैं अन्तिम पदार्थ **'भस्मी'** का जीवन-काल में दिग्दर्शन कर लूँ, कि मैं भस्मी हूँ, आज भी बन सकता हूँ। यह एक ऐसा पदार्थ है जो देह रूप में मेरे समस्त पद और पदार्थ अपना अस्तित्व खोकर महत्त्वहीन हो जाते हैं। तब मैं जीवन में **'अर्थ'** को छू पाता हूँ। धीरे-धीरे **'भस्मी'** का दिग्दर्शन और अवधारणा से मेरे भीतर विरक्ति प्रकट हो जाती है। यह विरक्ति समस्त विभूतियों का मूल स्रोत है। मैं अर्थ से **'धर्म'** पुरुषार्थ के दूसरे सोपान को स्पर्श करता हूँ। यह विरक्ति ईश्वर भक्ति (काम) को जाग्रत कर देती है। **विरक्ति'** होते ही आसक्तियाँ और विरक्तियाँ लुप्त हो जाती हैं और मात्र ईश्वर की कामना हो जाती है। प्रभु से प्रभु के लिए प्रेम हो जाता है। प्रभु की महामाया सतर्क हो जाती है, कि यह मेरे प्रभु को चाहता है। इसलिए महामाया ईश्वर को चाहने वालों को साकार महाब्रह्माण्ड के समस्त अधिकार दे देती है और परीक्षा लेती है, कि प्रभु को प्रभु के लिए

चाहता है अथवा प्रभु की विभूतियों का इच्छुक है। जिस भाव से प्रभु का ध्याता है, साधक को प्रभु का वह स्वरूप मिल जाता है। सारूप्य, सामीप्य और सायुज्य। मोक्ष साकार में प्रभु को नाम-रूप में मानने वालों के लिए है। कैवल्य मोक्ष में ज्योति, ज्योति में समा जाती है। मोक्ष समस्त बन्धनों पर हावी हो जाता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(24 जून 2009 एवं 8 जनवरी से 13 जनवरी 2010)

शवत्व

यह **'सद्'** सर्वविदित है, कि यदि मेरा जन्म हुआ है तो मृत्यु अवश्य होगी। मृत्यु कब, कैसे और कहाँ होगी, यह मैं न जानता हूँ न जान सकता हूँ। कोई भी दिन मेरे जीवन-काल का अन्तिम दिन हो सकता है। इसलिए जो कुछ भी मैं कर-करवा रहा हूँ व जो कुछ भी तथाकथित मेरा है, वह सब उसी क्षण मेरे लिए **'था'** हो जाएगा। मेरे लिए वह 'सब कुछ' 'कुछ नहीं' भी नहीं रहेगा। इसलिए सद्गुरु कहता है, कि ''इस 'सब कुछ' के द्वारा तू अपना **'कुछ नहीं'** प्राप्त कर ले। क्योंकि तू प्रातः जब उठता है इस **'सब कुछ'** के साथ उठता है, जो तेरा है नहीं। **'सब कुछ'** प्रभु का है और तेरा **'कुछ नहीं'** है। अपना **'कुछ नहीं'** (भस्मी) गँवा कर तू जन्मों-जन्मान्तरों में **'कभी कुछ' 'कभी कुछ'**, के लिए भटक रहा है। तू देह के साथ लगा तो देह के साथ **'सब कुछ'** उठ गया। इस उठे हुए **'सब कुछ'** से तू अपना **'कुछ नहीं'** प्राप्त कर ले, तू जाग्रत हो जाएगा और उठना यथार्थ एवं सार्थक हो जाएगा।''

मुझे मानव-देह क्यों मिली? मैं जो-जो चाहता हूँ, उन चाहतों का अर्थ क्या है? क्या वह मेरी देह का लक्ष्य है? यदि आज का दिन ही वह अन्तिम दिन हो, तो मेरे पल्ले क्या पड़ा? मेरी डिग्रियाँ, पद-प्रतिष्ठा, परिवार, धन-सम्पदा, मान-सम्मान, धर्म, समाज, सन्तान आदि कुछ भी तो नहीं रहेगा, तो मैं इन विधाओं की मात्र **मानसिकता** लेकर दुनिया छोड़ दूँगा। **यह मानसिकता अन्त रहित है।** आनन्दमय मानस, आसक्तियों से परिपूरित हो विकृत और विरक्ति रहित हो गया। यह अन्त विहीन मानसिकता मेरी अनन्त इच्छाओं, चाहतों, योजनाओं, परियोजनाओं, महत्त्वाकांक्षाओं, आसक्तियों से

लबालब भरी हुई है। उसमें **'अन्त'** का पूर्णतः अभाव है, इसलिए वह अधूरी एवं अभाव में है। इस मानसिकता में अभाव बहुत हैं। जीवात्मा स्वयं में पूर्ण अभावमय आनन्द से ओत-प्रोत विरक्त **'मन'** है, जिसमें स्वयं का कोई **'भाव'** नहीं है और किसी का कोई भाव नहीं है।

इस मानसिकता का एक ही समाधान है, कि जीव देह व जीवन के रहते देह का न केवल अन्त (मृत्यु) बल्कि अन्तान्त (भस्मी) देख ले। देह की भस्मी की अवधारणा मानस को मानसिकता से बचा लेगी। जीवन का भविष्य जो निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित है, इसकी अवधारणा हम क्यों नहीं कर सकते ? जबकि जीवन में विभिन्न भविष्य जो अनिश्चित हैं, उनकी कल्पना करके ही हम कार्यरत होते हैं। All the attempts are made to full fill the temperory temptations. देह Temporary है, लेकिन इस अस्थाई देह के साथ तद्रूपता सी में बुद्धि का विकास होते ही मैं अवचेतना में जीव बना हुआ Temporary देह में, देह के द्वारा, देह के लिए ही आजीवन Temporary Temptations में Tempt होता रहा और मृत्यु होने तक उन्हीं के लिए विभिन्न Attempts करता रहा। उसी में समस्त ऊर्जा निःशेष हो गई, जो अन्ततः मुझे अवसाद में ले गई। इस अवसाद से बचने के लिए मुझे अपने **'शव'** एवं **'भस्मी'** की जीते जी अवधारणा करनी होगी। वह **'शवत्व'** एवं **'भस्मत्व'** मुझे मेरे शाश्वत् पद की स्मृति दिलाएगा।

'मैं' (जीवात्मा) जन्म-मृत्यु से परेृशाश्वत् हूँ। मैं पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश पंच-तत्त्वों से परे देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत और माया के तीनों गुणों से अतीत देहातीत तत्त्व हूँ। **'देह'** इन समस्त विधाओं से युक्त है, युक्त थी और युक्त रहेगी। **'मैं'** (जीवात्मा) इन सबसे मुक्त था, मुक्त हूँ और मुक्त रहूँगा। दोनों की तद्रूपता हो ही नहीं सकती। लेकिन तद्रूपता **सी** में भ्रम हो गया, कि 'मैं देह हूँ'। किसी भी प्राणयुक्त देह के साथ **'मैं'** लगी तो देह, 'जगत सहित, उठ गई और **'मैं'** हटा, तो जगत सहित देह सो गई। देह की उस सुषुप्ति में **'मैं'** देह और जगत नहीं था, लेकिन मुझे यह भी ज्ञान नहीं था, कि मैं देह और

जगत नहीं हूँ। मैंने भी स्वयं को सोया हुआ मान लिया। प्रश्न उठता है, कि उस जड़ स्थिति में जगत सहित मेरी सुषुप्ति का दृष्टा कौन है? मृतकावस्था में देह प्राणरहित होती है, मेरी मृतकावस्था का दृष्टा कौन है? कोई तो मेरी मृत देह के शव को चिता तक ले जाने और अग्नि दहन द्वारा भस्मी में रूपान्तरित करने-करवाने का प्रबन्ध करता है। प्राणरहित देह के साथ **'मैं'** लगता ही नहीं। जब **'मैं'** किसी देह के साथ नहीं लगता, तो मेरा दृष्टा परम पिता परमात्मा होता है। मैं सुषुप्ति में भी चलते स्वप्न का दृष्टा होता हूँ, लेकिन सुषुप्ति, मूर्च्छा, मृत्यु का दृष्टा नहीं होता। ऐसे समय वह स्रष्टा व पालनकर्ता ही दृष्टा होता है। वस्तुतः वह स्रष्टा ही मुझ दृष्टा (जीवात्मा) का महादृष्टा है।

आत्मज्ञान एवं आत्मानुभूति स्वयं में **'नाद'** है, जो जीवात्मा का स्वरूप है। उसे जाग्रत करना मानव-देह व जीवन का लक्ष्य है। इसके लिए 'देह सहित' सब कुछ (जगत) के रहते जीव को अपना अन्त (शव) एवं अन्तान्त (भस्मी) देखना होगा, तभी उसका दृष्टात्व (आत्मत्व) जाग्रत होगा और दृष्टा (जीवात्मा) अपने महादृष्टा (परमात्मा) को देख पाएगा। 'देह सहित जगत' की हर विधा में उसे तू ही तू नज़र आएगा। परमात्मा 'एक' है, जीवात्मा 'एक' है और कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार मायिक सृष्टि की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप 'मानव-देह' भी एक है। सद्गुरु कहता है, कि "हे एक जीवात्मा ! तू एक ही दृष्टा है और तेरा एक ही दृष्टा परमात्मा है। सतत् परिवर्तित होती सृष्टि में तू एक से अनेक बन गया, आज तू कुछ कहता है, कल कुछ और यह समस्त सृष्टि उस स्रष्टा परमात्मा की है, तेरी नहीं है। इसका निर्माणकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता भी वही है। यदि तुझे सृष्टि देखनी है, तो पहले **संहार** को देख। अनेक रूपों में सृष्टि में **'एक'** मात्र संहार ही है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के निर्माण व पालन में वैविध्य एवं भिन्न-भिन्न भिन्नताएँ हैं, लेकिन संहार मात्र एक ही है। तू संहार देख लेगा, तो तुरन्त अपने विशुद्ध महास्वरूप महादृष्टा (परमात्मा) की अनुभूति कर लेगा। फिर तुझे अनेका-अनेकों में उसी 'एक' (परमात्मा) की झलक मिलेगी

और तू हर विधा का रसास्वादन ही करेगा। इसलिए निर्मित, पालित सृष्टि का सदुपयोग तू इसके **'संहार'** के अधिग्रहण के लिए कर। यह संहार तत्त्व तुझे **'एक'** से एकान्त में ले जाएगा। उस एकान्त में तुझे अपना **'दृष्टाभाव'** दृष्टिगोचर होगा।'' कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

आत्मज्ञान एवं आत्मानुभूति का अन्तिम लक्ष्य अपने स्वरूप की पहचान है। वह स्वरूप दिव्य है, उसे सिद्ध करना मानव-देह धारण करने का उद्देश्य है। मानव-देह स्वयं में अपौरुष है, क्योंकि किसी पुरुष द्वारा निर्मित नहीं है। इसी प्रकार वेद, उपनिषद, गीता आदि आध्यात्मिक ग्रन्थ अपौरुष ही हैं। क्योंकि किसी पुरुष द्वारा उनकी रचना नहीं हुई। जिस पुरुष ने पुरुषार्थ द्वारा अपना स्वयं का अपौरुष स्वरूप सिद्ध कर लिया है, मात्र उसे ही आध्यात्मिक ग्रन्थ लेखन व प्रवचन का अधिकार है। कई लोगों को यह भ्रान्ति होती है, कि वेद, उपनिषद आदि ग्रन्थ आकाश से प्रकट हुए होंगे, परन्तु ऐसा कुछ नहीं है। जीवात्मा को मिली मानव-देह स्वयं में अपौरुष है, देह का एक-एक रोम, एक-एक कोशिका स्वयं ईश्वर द्वारा निर्मित है। सम्पूर्ण मानव-देह का न केवल निर्माण, बल्कि इसका समस्त क्रियान्वयन दैवीय ही है। मात्र मानव को प्रभु ने अपनी चेतना युक्त बुद्धि और आनन्दमय मन से नवाज़ा है। यह चेतनायुक्त बुद्धि सीधा ईश्वर से सम्पर्क साध सकती है। यदि कोई मानवीय बुद्धि ईश्वर से सम्पर्क नहीं साधती अथवा ईश्वर से जुड़ना ही नहीं चाहती, तो वह मानव-देह अपने अपौरुष स्वरूप के दिग्दर्शन का अधिकार खो देती है।

अपने अपौरुष स्वरूप को कोई पुरुष ही पहचान सकता है। यहाँ पुरुष लिंग दृष्टि से पुरुष देह नहीं है। **चेतना प्रधान मानव-देह को पुरुष कहते हैं।** क्योंकि वह अपने चेतनामय अपौरुष स्वरूप को पहचानती है। मानव-देह अपौरुष है, लेकिन जीवात्मा इसके साथ तद्रूपता सी में चेतन स्वरूप होते हुए भी जीव बनकर अवचेतना में उतर आया। सद्गुरु सेवा, प्रवचन, श्रवण, चिन्तन-मनन, नित्याध्यासन से उसकी देह चेतनामयी या मैंमयी हो जाती है। मैंमयी देह आत्मचिन्तन में सहायक होती है। चेतनामयी देह चिन्तनमयी

होती है। जिस देह में **चेतना** का बाहुल्य होगा, वही **चिन्तन** करेगी, नहीं तो **चिन्ता** करेगी। चिन्ता जीवित व्यक्ति को जलाती है और चिता मृतक याृशव को जलाती है। **'भविष्य'** की चिन्ता होती है और अतीत या **'भूत'** का शोक होता है। चिन्तन मात्र वर्तमान का होता है और चिन्तन का विषय स्वयं में **'देहातीत'** है इसलिए **चिन्तन, चिता और चिन्ता** दोनों को लील जाता है।

देह द्वारा चिन्तन और मनन देहातीत का है। देह में जीवन-काल में देहातीत होने के लिए देह द्वारा, देह का देहातीत स्थिति में प्रविष्टि आवश्यक है। निद्रा-दर्शन, मृत्यु या भस्मी की अवधारणा देहातीत ले जाती है। निद्रा, मृत्यु और भस्मी तीनों स्थितियों में मेरे लिए मेरी देह नहीं होती। मुझे देह से देहातीत होना है। जब मैं देह द्वारा, देहातीत हो जाता हूँ, तो उस समय चिन्तन स्वतः प्रारम्भ हो जाता है। मैं की देह के साथ तथाकथित तद्रूपता में शोक और चिन्ताएँ स्वतः शुरू हो जाती हैं। शोक भूत का है, इसलिए वह हो चुका है और चिन्ताएँ भविष्य की हैं, जो अभी आया ही नहीं है। अतः चिन्ताएँ हमारी अपनी कल्पनाएँ ही होती हैं। चिन्तन, चेतन स्वरूप का होगा, जो देहातीत है इसलिए चिन्तन द्वारा भविष्य की कल्पनाओं की कल्पना स्वतः समाप्त हो जाती है।

पंच महातत्त्वों की देह के **'शव'** ने अग्नि दाह के बाद पंच-तत्त्वों में विलीन हो जाना है। यद्यपि शव से देह की पहचान होती है, लेकिन देह का शव स्वयं में किसी देह और देहों को नहीं पहचानता। शव के स्वरूप का मानसिक अधिग्रहण शवत्व है। शव की पहली विशेषता है–स्थिरता। जीते जी शववत् होते ही मैं जीवन के प्रत्येक उतार-चढ़ाव में स्थिर हो जाता हूँ। मेरे मन में अपना या किसी और का कोई भाव नहीं होता। शव स्वयं में अवस्थातीत होता है। बूढ़े या जवान का शव है, लेकिन शव बूढ़ा या जवान नहीं है। न केवल दैहिक बल्कि मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक सभी अवस्थाओं से **'शव'** अतीत होता है। शव की मानसिक अवस्था सभी अवस्थाओं में **'सम'** है। जिसका मानस जीते जी शवत्वपूर्ण हो जाता है, वह स्वयं में अपरिवर्तनीय हो

जाता है। उसकी प्रज्ञा दृष्टि खुल जाती है और बाह्य नेत्रों से ईश्वरीय मायिक सृष्टि का रसास्वादन करता है।

हमारी बाह्य दृष्टि बाह्य प्रकट दृश्य को देखती है। जब हम आँखें बंद करते हैं, तो बाहरी प्रकट दृश्य दिखाई देने बन्द हो जाते हैं। लेकिन दिल-दिमाग में घूमने वाला अप्रकट-प्रकट जगत और भी अधिक स्पष्ट दिखाई देने लगता है। बाह्य दृष्टि के लिए अप्रकट-प्रकट जगत गौण होता है, लेकिन बाह्य दृष्टि से दिखाई देने वाले प्रकट जगत में जब हम एकाग्र नहीं कर पाते इसका कारण यह होता है, कि भीतरी अप्रकट जगत अति सक्रिय हो जाता है। मैं बाहर बैठा सा होता हूँ, क्योंकि बाहरी दृश्य में मेरी उपस्थिति गौण होती है। कोई बैठने के लिए किसी मर्यादा या स्वार्थवश बैठता है, कोई जबरदस्ती बिठाया जाता है और कोई पूरी तरह से एकाग्र होकर बैठता है। कोई बिठाया जाता है तो बैठ नहीं पाता, वह उठा हुआ बैठा सा रहता है और कोई बिठाने पर पूरी तरह से बैठ जाता है। वह भूल जाता है, कि मुझे कहीं और जाना था। यह अप्रकट-प्रकट जगत के कारण होता है। यह अप्रकट जगत इतना प्राथमिक होता है, जो न आशीर्वाद लेने देता है न वरदान ग्रहण करने देता है।

शवत्व की मानसिक स्थिति होने पर आपका सर्व आपसे आपके लिए जुड़ना चाहता है। आपके प्रज्ञा चक्षु खुल जाते हैं। निद्रा में देखे गए स्वप्नों में भीतरी अप्रकट जगत को देखने वाला मेरा मानस का स्मृति पटल होता है। वह अदृश्य दृष्टि है। दृष्यमान दृष्टि आँखे मूंदने पर बन्द हो जाती है, लेकिन अदृश्य दृष्टि द्वारा प्रकट होने वाला अप्रकट जगत और भी सक्रिय होकर प्रकट हो जाता है। इस अदृश्य अन्तः दृष्टि को बन्द करने के लिए शवत्व की मानसिक स्थिति चाहिए। एक आँखें मुँदती हैं, तो मैं सोता हूँ, एक आँखें मुँदती हैं, तो मैं मूर्च्छित होता हूँ या शव बनता हूँ।

शव की बाहरी आँखें मुँदने पर प्रकट-अप्रकट जगत दोनों से आँखें मुँद जाती हैं। अन्यथा आँखें खुलने के लिए ही मुँदती हैं और इन मुँदी हुई आँखों से प्रकट दृश्यमान जगत तो ओझल हो जाता है, लेकिन अदृश्य अन्तर्दृष्टि

उन दृष्यों को देखती है, जो अभी प्रकट नहीं हुए। लेकिन मेरे मानसिक अप्रकट जगत में कल्पना द्वारा प्रकट हो जाते हैं। यह दृष्टि स्मृति नहीं, मैं मरी (Memory) की होती है। यह ही मेरे प्रत्येक वर्तमान को भूत के शोक और भविष्य की चिन्ताओं से बोझिल रखती है। यह अदृश्य अन्तर्दष्टि (Memory) भूत कालीन बेकार दृश्यों को देखती रहती है और भविष्य की बेबुनियाद कल्पनाएँ करती रहती हैं, जो व्यर्थ की चिन्ताओं को बढ़ाती है। वह हुआ नहीं है लेकिन अतीत की Memory के कारण मैंने उसके होने की कल्पना कर ली। जिससे मैं भयभीत और चिन्ताग्रस्त हो जाता हूँ। इन कल्पनाओं की चिन्ता करने वाला मेरा मानस मुझे हर वर्तमान में चिन्तित रखता है।

चिन्तित मन से व्यर्थ ही किसी चिन्ता का कारण निर्मित हो जाता है। मैं उसका जगत मैं कुछ अनुकूल एवं अपने भावनुसार प्रकाट्य चाहता हूँ। वह अनुकूल प्रकाट्य भी मेरी कल्पना में बन जाता है। ऐसा न हो जाए और ऐसा हो, दोनों कल्पनाएँ जीवन में कल्पाती रहती हैं। ऐसा न हो जाए, वैसा हो जाए तो और ऐसा हो जाए, वैसा न हो, तो दोनों तरह से मेरा तनाव बना रहता है। एक का होना और एक न होना दोनों मानस की बेबुनियाद कल्पनाएँ हैं। दोनों कल्पनाएँ मानस द्वारा की जाती हैं और मानस को ही भयभीत एवं चिन्तित रखती हैं। इसके लिए मुझे ऐसी तकनीक चाहिए, जो इस मानसिक अदृश्य दृष्टि को बन्द कर दे और मेरा अप्रकट जगत समाप्त कर दे। इस दृष्टि को बन्द करने के लिए शवत्व चाहिए। एक अपनी देह को शववत् करना बाहर के प्रकट अनचाहे दृश्यों एवं अन्तः जगत में अप्रकट रूप से प्रकट दृश्यों के उन्मूलन का एक मात्र उपाय है। यह **प्रज्ञा** है। शवत्व की मानसिक स्थिति की परिपक्वता के बाद ही मानव सुख-दुःख में समान व आनन्दित रह सकता है। समस्त साकार ब्रह्माण्ड एक मानव देह का विस्तार है और मानव-देह समस्त साकार महाब्रह्माण्ड का संघनित स्वरूप है।

शव देह की किसी भी अवस्था में शव ही रहता है। जो मानसिक रूप से शव नहीं है, वह नश्वर है। शव को पंच-महाभूतों में विलीन हो जाना है और

शव स्थिति से हटना नश्वरता है। भौतिक दृष्टि से सम्पूर्ण शव का तत्त्व **'भस्मी'** रूप में सद् है। आध्यात्मिक दृष्टि से इसका तथ्य शवत्व की मानसिकता है। जो शव है वह सदा शव है, वह महाशव है। जो विशेषण हम शिव के लिए देते हैं, वही शव के लिए देते हैं। शिव भी महाशिव, सदाशिव है। शवत्व शिवत्व का आधार है।

''उदित सूर्य जेहि भाँति ते अथवत् ताहि भाँति।''

सूर्योदय एवं सूर्यास्त दोनों क्षितिज में एक जैसी सौम्यता, लालिमा एवं आभा से युक्त होते हैं। केवल दिशा पूर्व से पश्चिम हो जाती है। **सम्पूर्ण मानव-जीवन श्वासों द्वारा शैशव से शव तक की यात्रा है। शव देहान्त है और भस्मी शवान्त है।** सुषुप्ति और शव में अन्तर है। सुषुप्ति में पुनः देह में प्रविष्टि होती है, लेकिन शव चिर निद्रा है। सषुप्ति की तरह शव भी अवस्थातीत है। बालक सोया हुआ है, लेकिन सोया हुआ बालक नहीं है। वृद्ध सोया है, सोया हुआ वृद्ध नहीं है। बालक का शव है, लेकिन **'शव'** बालक नहीं है। वृद्ध का शव है लेकिन **'शव'** वृद्ध नहीं है। सुषुप्ति और शव दोनों अवस्थातीत हैं। किसी भी अवस्था, परिस्थिति में सुषुप्ति हो या मृत्यु हो, दोनों साकार देह की सभी अवस्थाओं से परे हैं।

साकार देह के दो किनारे हैं—शैशव और शव। मध्य में जो कुछ भी है, शैशव और शव का मिला-जुला रूपान्तरण है। देह का जो भी रूपान्तरण होगा, उसमें शैशव और शव दोनों का होना आवश्यक है। जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ वस्तुतः रूपान्तरण होती हैं। शिशु पालने में लिटाया जाता है और शव को अर्थी पर लिटाया जाता है। जीवन की प्रत्येक अवस्था में **'पालने'** और **'अर्थी'** को नहीं भूलना, तभी जीवन का भरपूर रसास्वादन सम्भव होगा। पालना और अर्थी दोनों कोई स्वयं नहीं बनाता। देह के जितने भी वाहन हैं, उनका **'पालना और अर्थी'** आध्यात्मिक स्वरूप हैं। जो मुझे ले जा रहा है, उठा रहा है वह न केवल पालना और न केवल अर्थी बल्कि दोनों का मिला-जुला स्वरूप है। जीवन की सभी और कोई भी अवस्था शैशव और शव का मिला-जुला रूपान्तरण है। हम दुर्भाग्यवश इन दोनों को भूल

जाते हैं। यदा-कदा जन्म दिवस मनाते समय शैशव को याद कर लेते हैं, लेकिन शव को हम आजीवन भूले रहते हैं। प्रत्येक दिन की कोई भी Celebration शैशव और शव को दृष्टि में रखकर होनी चाहिए।

शिशु को शैशव में पालना चाहिए और शव को अर्थी चाहिए। शैशव में शिशु स्वयं के लिए प्रोग्राम नहीं बनाता, इसी प्रकार शव के लिए अर्थी और समस्त क्रियाकर्म का प्रबन्धन स्वतः दूसरों द्वारा होता है। जीवन का अर्थ जानने के इच्छुक जिज्ञासु को अर्थी का अर्थ जानने वाला अर्थार्थी होना होगा। अर्थी मात्र शव को ढोती है और उसका गन्तव्य स्थान शमशान होता है, जहाँ से लौटकर वापिस नहीं आती। अर्थी पर किसी रोगी को लिटा कर अस्पताल नहीं ले जाया जाता। अर्थी को जिन्दा लोग शव के लिए ढोते हैं और शव अपनी अर्थी सहित सबको शमशान में ले जाता है। शवत्व की मानसिक स्थिति युक्त वैरागी महापुरुष सबको विरक्ति की ओर ले जाते हैं। शव की अर्थी ढोने वाले भी अस्थाई रूप से वैरागी हो जाते हैं। **'शव'** का सर्व उसके लिए सब कार्य करता है। यदि **'स्व'** (देह रूप में मैं) शव हो जाए, तो समस्त सर्व उसी के लिए होगा। वह सर्व का ज्ञान नहीं चाहता, लेकिन उसका सर्व उसके लिए होता है।

शवत्व की मानसिक स्थिति होने पर मेरा सर्व मेरे लिए लालायित रहता है। शव किसी को धन्यवाद नहीं करता। किसी को आशीर्वाद या श्राप नहीं देता, क्योंकि उसक **'स्व'** **'शव'** में विलीन हो गया है। **'स्व'** और **'शिव'** के मध्य **'शव'** है। शवत्व की मानसिक स्थिति में मेरे द्वारा सब कुछ **स्वतः, स्वान्त, सुखाय** और **'स्वयं'** में होगा। स्वान्त और शवान्त शब्द भी मिलते-जुलते हैं। शवत्व स्वतः ही शिवत्व की ओर उन्मुख है। शव के पहले छोटी **'इ'** लग जाए, तो शिव बन जाता है। शिव का **'स्व'** उसकी अपनी विरक्ति शक्ति है। उसकी क्रीड़ा स्वतः स्वान्तः सुखाय, स्वयं में **'स्व'** के लिए होती है। यह शब्द ब्रह्म का दर्शन है।

योगी को उसका सर्व जो उससे जुड़ा हुआ होता है, वह योगदान देता है। यह योगदान ही योगी का अधिकार है। उसकी **'स्व'** शव में विलीन हो

जाती है और शवत्व की मानसिक स्थिति में विचरते योगी का समस्त सर्व उसके लिए ही होता है। शवत्व को आत्मसात् करने का मुझे कभी भी अधिकार है क्योंकि शव किसी भी समय बन सकता है। शव बनना कोई कल्पना नहीं है। आत्मसात् करते ही मेरा **'स्व'** शववत् हो जाएगा। मेरा समस्त सर्व मेरे लिए ही उसी प्रकार होगा, जैसेकि **'शव'** से सब लोग शव के लिए सम्बद्ध होते हैं।

प्रत्येक दिन जीवन-काल **में** अन्तिम दिन तो है ही। इन प्रति एक दिनों में से कोई भी दिन जीवन-काल **का** अन्तिम दिन अवश्य होगा। जो दिन अब तक बीत गए, उनमें तो वह नहीं था परन्तु आज और आज के बाद आने वाले प्रत्येक दिनों में कोई भी दिन जीवन-काल **का** अन्तिम दिन अवश्य होगा। कृपया एकाग्र करें, एक है अन्त काल और एक है काल का अन्त।

सद्‌गुरु कहता है, कि ''अन्तकाल में तेरा इन्तकाल हो जाएगा, लेकिन काल तेरा पीछा नहीं छोड़ेगा। जीते जी तू काल का अन्त करके अकाल स्थिति में प्रविष्टि पा। आज का दिन हर प्रकार से तेरे जीवन-काल **का** जीवन-काल **'में'** अन्तिम दिन है और आज और आज के बाद आने वाले दिनों में कोई भी दिन तेरे जीवन-काल **का** अन्तिम अवश्य होगा। ये ऐसी तथाकथित लाटरी है, जो तेरी ही निकलेगी और कभी भी निकल सकती है। लाटरी का टिकट लेते ही तू मान लेता है, कि तेरी लाटरी निकलेगी, इसलिए जब तेरी लाटरी नहीं निकलती, तो तुझे निराशा हो जाती है। लाटरी तो हज़ारों लाखों में से एक की ही निकलती है परन्तु आज अथवा आज के बाद कोई भी दिन तेरे अपने ही जीवन-काल का अन्तिम दिन होगा, क्योंकि तूने जन्म रूपी टिकट लिया हुआ है, उसकी सोच तुझे क्यों नहीं हुई ! यह काल की तलवार बेकार तेरे ऊपर लटक रही है। तू आज ही जीवन-काल के उस अन्तिम दिन की अवधारणा कर ले। दूसरों को शव और भस्मी को बनते तूने देखा है, उसी प्रकार अपने शव बनने की अवधारणा कर। भस्मी सबकी एक जैसी होती है, उसे देखकर अपनी भस्मी को **मान** ले। तू उस भस्मी के साथ **'मैं'** लगा दे, कि 'मैं भस्मी हूँ।''

तू संहार से दिन शुरू कर। तू सुबह निद्रा से उठकर पहले अपना उठाला कर ले। मानो तू शव बना हुआ है। ध्यान में अपने को शव मान कर चिता में उसका दहन कर, उसे भस्मी बनता हुआ देख। तू कालचक्र से बाहर अकाल स्थित्यातीत स्थिति में सभी 84 लाख योनियों से बाहर आ जाएगा। तू आज से अपना हर दिन अपने क्रियाकर्म से शुरू कर। तेरा उठना जब उठाला बन जाएगा, तो जीते जी तू जाग्रत होकर स्वर्गवासी, वैकुण्ठवासी हो जाएगा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि पहले जिनके तू वश में था, मानसिक रूप से **शव** बनते ही ये तेरे **वश** में हो जाएँगे।''

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(23 – 24 जून 2009 एवं 19 अप्रैल 2010)

विवशता

सम्पूर्ण कोटि-कोटि अखिल महाब्रह्माण्डों के जल-मण्डल, पृथ्वी व पाताल मण्डल, आकाश-मण्डल और मण्डलातीत मण्डलों में जो कुछ भी दृश्यमान है, था और होगा और होने की कल्पना भी है; वह सब ईश्वर की माया है। इस सम्पूर्ण माया का निर्माणकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता ईश्वर स्वयं में अदृश्य है। ईश्वर की इस सम्पूर्ण सम्पूर्णता अथवा समष्टि की एकमात्र प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप एक व्यक्तिगत मानव-देह है। अतः सम्पूर्ण समष्टि एक व्यष्टि का प्रसार व विस्तार है। जितना सब कुछ और जो **'सब कुछ'** युगों-युगान्तरों में स्थूल, सूक्ष्म व संक्षिप्त है, था और होगा उस सब कुछ को पूर्णतः स्वयं में समेटे एक मानव-देह ईश्वर की कृतियों में सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्कृष्ट, परम रहस्यमयी एवं चमत्कारिक संरचना है। स्वयं में यह मानव-देह एक दिन थी नहीं और एक दिन रहनी नहीं है। अर्थात् स्वयं में इसका प्रारम्भ शून्य (कुछ नहीं) से होता है और अन्त शून्य (कुछ नहीं) में होता है। साथ ही मध्य में जो सब कुछ, कुछ-कुछ, कभी कुछ-कभी कुछ और कुछ न कुछ है, उसका आधार **'एक' 'कुछ नहीं'** है। मध्य में एक **'कुछ नहीं'** की सापेक्षता में अनेकानेक कुछ-कुछ हैं।

वह परम ईश्वरीय सत्ता छः विभूतियों से विभूषित अनादि-अनन्त है। वह **'सब कुछ'** का **'स्वामी'** है। स्वामी वह होता है, जो **'सब कुछ'** होते हुए भी स्वयं में **'कुछ नहीं'** की अभावमयता एवं आनन्द से ओत-प्रोत है। जिसकी दृष्टि में **'सब कुछ' 'कुछ नहीं'** है। इसलिए वह **'सब कुछ'** का भोक्ता होकर जब चाहे तो रसास्वादन करता है नहीं तो **'कुछ नहीं'** के

आनन्द में डूबा रहता है। ईश्वर का यह मानस जो अभावमयता (कुछ नहीं) के आनन्द से ओत-प्रोत है, उसका नाम **'जीवात्मा'** है। उसे किसी वस्तु, प्राणी अथवा देह सहित साकार मायिक जगत की किसी भी विधा का **'भाव'** नहीं है इसलिए जीवात्मा स्वयं में अभावमय है और अभावमयता में उसे आनन्द है। ईश्वर के **'सब कुछ'** का रसास्वादन करने एवं वाह-वाह करने के लिए सम्पूर्ण माया की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप एक मानव-देह से **'जीवात्मा'** को नवाजा गया है। जीवात्मा का प्रकाट्य **'मैं'** शब्द में होता है। **'मैं'** साथ लगे बिना यह मानव-देह निष्क्रिय एवं अर्थहीन है। सक्रिय देह के साथ **'मैं'** शब्द **के** उद्घोष सहित प्रकाट्य होने पर किंचित तद्रूपता सी में चेतन सत्ता **परमात्मा** के आनन्दमय व अभावमय मानस **जीवात्मा** की चेतना व आनन्द का कुछ अंश आंशिक रूप से आच्छादित हो गया। चेतना के इस आंशिक ग्रहण से ईश्वर के **'सब कुछ'** की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप मानव-देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) भी आच्छादित हो गया।

महादुर्भाग्यवश जाने-अनजाने देह से तद्रूपता में जीवात्मा, चेतना से अवचेतना में उतर कर जीव-सृष्टि में आ गया। जीव-सृष्टि में भी इसे अपने उस अभावमय अखण्ड आनन्द स्वरूप की धुंधली सी स्मृति बनी रही इसलिए मानव-देह में होश सम्भालते ही देह को उस **'सब कुछ'** की पूर्ति के लिए दौड़ाने लगा जिसकी प्रतिनिधि इसकी देह स्वयं थी। जो कुछ इसे **'लब्ध'** था उसे **'उपलब्ध'** करने लगा। तदनुसार ईश्वर का **ईश्वरत्व** भी इसके लिए जीव-कोटि में आच्छादित हो गया। उसे भी मानव ने धर्मों, कर्मों, पद्धतियों, पृथक्-पृथक् रूपों, नामों, धारणाओं, अवधारणाओं में बाँध लिया। ईश्वर के ईश्वरत्व को समझने के अभाव में ईश्वर के विषय में भी पृथक्-पृथक् मान्यताएँ हो गईं। **इस प्रकार देह का देहत्व, जीवात्मा का आत्म तत्त्व और ईश्वर का ईश्वरत्व तीनों पर एक साथ आवरण पड़ गया।**

मानव-देह के साथ यदि **'मैं'** (जीवात्मा) तत्त्व नहीं लगाता तो वह निष्क्रिय, अर्थहीन, बेकार व जड़ होती है और यदि लगता है तो वह

'विकार' बन जाती है। बहुत **दुविधा** है। एक देह **विकार** है और दूसरी **बेकार** है। **'विकार** से **'बेकार'** उत्तम है। पाप-पुण्य, जन्म-मृत्यु, रोग-दोष, ईर्ष्या-द्वेष, जरा, व्याधि, मल, विक्षेप, आवरण आदि सब देह के साथ **'मैं'** लगने पर हैं। मैं ईमानदारी से स्वयं में अपनी विकृत देह का अध्ययन करूँ तो पाता हूँ, कि मैं देह रूप में किसी अज्ञात प्रारब्ध, काल व कर्म-बन्धनों के **'वश'** में हूँ। मेरी देह के साथ तद्रूपता में अगनित विकारों का कारण यह **'वशता'** है। इसलिए मेरी प्राप्तियाँ, खोना व समस्त कृत्य मेरे लिए झमेला बने रहते हैं। बहुत कुछ पाकर भी मैं आसक्त ही रहता हूँ। आसक्त जी कर आसक्त ही मर जाता हूँ और पुनः आसक्त ही पैदा होता हूँ। **'मैं'** वशीभूत एवं वशीकृत हूँ तथा इस वशीकरण से बाहर ही नहीं आना चाहता। प्रारब्धवश, कालवश, कर्मवश, अनेक विकारों, इच्छाओं, अनिच्छाओं वश किसी प्रकार जीवन ढोता हुआ जीव सृष्टि की अधोगति को स्वीकार कर लेता हूँ। यदि किसी भी प्रकार और सब प्रकार से मैं इस वशता से बाहर आना चाहूँ और आ नहीं पा रहा तो यह विवशता परम कृपालु सद्गुरु की कृपा से एक न एक दिन मुझे सभी **'वशताओं'** से बाहर ले आएगी। जो कोई साधक विवश हो आर्तनाद करता है एक न एक दिन उसकी पुकार सुनी जाती है।

वशीकृत मात्र आसक्तिवश उस वशीकरण में ही रहता है और रहना चाहता है। जितने भी प्रकार के **'वश'** हैं चाहे वे विकारों के कारण हों चाहे प्रारब्ध, काल व कर्म वश हों, इन समस्त वशों का मूल मेरी **एक** आसक्ति है, यह एक आसक्ति ही मेरे वशीकरण का कारण है। आसक्ति से छुटकारा पाने की चाह ही **'विवशता'** का कारण बनेगी। विवशता से छटपटाता हुआ मैं सद्गुरु से कहता हूँ, कि "**'मैं'** देह के साथ नहीं लगता अथवा देह **'मैं'** लगाने की स्थिति में नहीं होती, उस समय देह निष्क्रिय एवं बेकार होती है। जब **'मैं'** लगता हूँ तो देह **'विकार'** बन जाती है तो मैं क्या करूँ?" सद्गुरु कहता है, एकात्मता देह का **'यथार्थ'** है। जब तेरी देह स्वयं के यथार्थ में आएगी तो विकार रहित होगी। तू चिन्तन कर वह कौन सा आयाम है जब

तेरी देह तेरी **'मैं'** (जीवात्मा) के साथ एकात्म होगी ? जब देह तुझसे तद्‌रूप होगी तो तेरी **'मैं'** देह से छूटी हुई होगी और वह **'मैं'** विशुद्ध जीवात्मा होगी। वह देह यथार्थ और **'मैंमयी'** विदेह देह होगी। अर्थात् वह देह स्वयं में जीवात्मा होगी। यह तेरी देह का सम्पूर्ण, अक्षय, अक्षुण्ण एवं अपरिवर्तनीय रूपान्तरण होगा।'' कृपया एकाग्र करें मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

जिस जीवन में हम प्रारब्धवश, कालवश और कर्मवश वशीकृत हुए तथाकथित जी से रहे हैं, उस जीवन-काल **में** आज का दिन अन्तिम दिन है और आज का दिन काल से बँधे जीवन-काल **का** अन्तिम दिन भी हो सकता है। जो दिन आज तक बीत चुके हैं, वे भी जीवन काल **में** अन्तिम तो थे ही, लेकिन उनमें से कोई भी दिन जीवन काल **का** अन्तिम दिन नहीं हुआ। आज के दिन और आने वाले प्रत्येक दिन पर यदि वे मेरे लिए आते हैं, तो ये दो बातें लागू होती है, कि वे जीवन काल में अन्तिम दिन तो होंगे ही। आज के दिन के समेत कोई भी दिन जीवन-काल का अन्तिम दिन भी हो सकता है। प्रत्येक दिन स्वयं में पृथक् दिन है।

प्रत्येक दिन जीवन-काल में अन्तिम दिन होता है, क्योंकि हर दिन स्वयं में पृथक् एवं पूर्ण है। कोई दिन तारीख, वर्ष, मौसम और उस दिन देश, समाज, परिवार, आस-पड़ौस में घटी विविध घटनाओं, खोना-पाना, करना-करवाना, होना, बनना-बनाना की विविध स्थितियों आदि की दृष्टि से और अन्यथा किसी से न मिलता है और न ही उनमें कोई निरन्तरता है। जीवन भौतिक निरन्तरता नहीं है। रात्रि में मैं गहन निद्रा में सोता हूँ और उठने पर कुछ साँसों के बाद किसी विशिष्ट साँस पर अवचेतन हो जाता हूँ, कि आज यह तारीख, दिन आदि है, मेरे अपने उस दिन के कार्यक्रम, भूत-भविष्य आदि मेरे साथ ही उठ जाते हैं। वस्तुतः मैं स्वयं नहीं उठा हूँ, बल्कि किसी अज्ञात शक्ति द्वारा मेरे उस दिन के प्रारब्धानुसार कर्म व काल वश उठाया गया हूँ। प्रारब्ध, काल व कर्म का यह वशीकरण काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, प्रेम, घृणा, वैर, ईर्ष्या, स्पर्धा और अनेकानेक वशों से मुझे वशीकृत रखता है। प्रति एक (प्रत्येक) दिन जीवन-काल **में** अन्तिम दिन है,

क्योंकि वैसा दिन न अतीत में कभी आया, न भविष्य में आएगा। यह प्रत्येक क्षण भंगुर दिन का अक्षुण्ण व अकाट्य **'सद्'** है, इसका सदुपयोग करना चाहिए।

निद्रा से उठने का अर्थ है किसी विशिष्ट समय पर विशिष्ट साँस में **'मैं'** लगाना। जिस प्रकार गर्भस्थ शिशु का जब जन्म होता है, तो वह पहले कुछ साँस लेता है और एक विशिष्ट साँस पर **'मैं' 'मैं'** की ध्वनि से रोता है। क्रन्दन या रोने के समय को उसके जन्म का समय माना जाता है। इस क्रन्दन में पहला शब्द **'मैं'** होता है, जो जीवात्मा का शब्द रूप में प्राकट्य है। इसलिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में किसी देश-काल, भाषा-भाषी, जाति, धर्म आदि के शिशु **'मैं' 'मैं'** शब्द की ध्वनि से रोते हुए ही जन्म लेते हैं। जीवात्मा **'मैं'** शब्द के साथ क्रन्दन करती हुई किसी साँस के साथ लगकर शिशु देह में उसके उस समय के जगत सहित प्रकट होती है। निद्रा से उठकर किसी विशिष्ट साँस पर **'मैं'** लगना और मेरे लिए उस समय देह सहित जगत का प्राकट्य भी पूर्णतः इसी प्रकार होता है। सुषुप्ति में देह में साँसों का आवागमन होता रहता है, उस समय भी जगत तो होता है परन्तु मुझे देह व जगत का कोई आभास नहीं होता, क्योंकि **'मैं'** नहीं लगी होती और मुझे अपनी **'मैं'** के लगने या न लगने का ज्ञान भी नहीं होता।

इसी प्रकार शिशु जब तक माँ के गर्भ में रहता है उसे एक बिन्दु नाभि द्वारा एक cord से माँ का प्राणवायु युक्त रूधिर बना-बनाया मिलता रहता है, उसे साँस लेने की आवश्यकता नहीं होती। जैसे बच्चे का जन्म होता है, वह साँस लेता है और किसी साँस के साथ 'मैं' 'मैं' करते हुए रोता है, उसकी नाभि की वह cord काट दी जाती है। इसी प्रकार नित्य सुबह हमारी डिलीवरी होती है। रात्रि की निद्रा को माँ का गर्भ मान लीजिए। उस समय हम पूर्णत जगत जननी माँ भगवती की देख-रेख में होते हैं। हमें गहन सुषुप्ति में अपनी साँसों के आवागमन का आभास नहीं होता। हमारी देह की सम्पूर्ण कार्य प्रणालियाँ सुव्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध चलती रहती है। We are accordingly co-ordinated cordlessly with divinity while sleeping.

लेकिन साँसों का प्रतिरूप बिल्कुल भिन्न होता है, क्योंकि उस साँस के साथ **'मैं'** नहीं लगती। किसी साँस पर **'मैं'** लगते ही उठ जाता हूँ और 84 लाख योनियों में मेरे लिए देह सहित जगत का प्रकाट्य होता है।

एक पूरे दिन में 24 घण्टे में दिल (Heart) 84,000 बार धड़कता है। एक नाड़ी या धड़कन 100 योनियों का प्रतिनिधित्व करती है। उस धड़कन में साँस की गति के अनुसार योनियों का प्रतिनिधित्व होता है। एक साँस के दौरान लगभग 6 से 7 बार दिल (Heart) धड़कता है। जिस धड़कन और साँस के जिस Pattern के साथ **'मैं'** लगी, उस योनि में सुबह निद्रा से हम उठते हैं। जिस धड़कन और जिस साँस के साथ हमने धरती पर पहला कदम रखा, उसके अनुसार हमारी उस दिन की जन्मपत्री या कार्यक्रमों की रूपरेखा बनी-बनाई पूर्णतः Recorded होती है। यह सब प्रारब्धवश कर्म एवं कालवश होता है। उसका हमारे अपने उस दिन के कार्यक्रमों सोच और योजनाओं से कोई लेना-देना नहीं होता।

हम कुछ भी हों, कहीं भी हों, हमारी डायरी के कार्यक्रम चाहे कुछ भी हों, उस दिन के कार्यक्रम जगत जननी भगवती जो शिव की इच्छाशक्ति है, उसके द्वारा पहले से निश्चित किए हुए होते हैं। आज किसी ने जो-जो करना, पाना, खोना, होना आदि है, वह बीते हुए पहले दिनों से पूर्णतः भिन्न होगा और आगे आने वाला दिन यदि आएगा, तो उससे भी पूर्णतः भिन्न होगा। किसीने कुछ नहीं करना जो जिससे करवाना होगा वह योनि के अनुसार करवा लिया जाएगा वह चाहे अथवा न चाहे। हम सब जन्मों-जन्मान्तरों से इस प्रकार प्रारब्धवश, काल व कर्मवश हैं, हमारे हाथ में कुछ नहीं है, कोई कर्म व्यक्तिगत नहीं है। **यदि कोई व्यक्तिगत कर्म है तो मात्र यह है, कि हम जान लें और मान लें, कि हमारे हाथ में कुछ नहीं है।** तहेदिल, रूह और बुद्धि से पूरे दिन के समय और सब कुछ को उस शक्ति के सम्मुख समर्पित कर दें, कि ''प्रभु ! इसे आप चलाओ, मेरा अपना कोई कार्यक्रम नहीं है। यदि है भी तो प्रभु आपकी इच्छा से बना है, मेरे हित में हो तो उसे पूरा करो।''

काल के इस विकराल एवं मिथ्या चक्र से बाहर आने के लिए सद्गुरु ने संकेत कर दिया। ''आज के दिन सहित आने वाला प्रति **'एक'** दिन तेरे जीवन-काल **में** अन्तिम दिन तो होगा ही, इनमें से कोई भी दिन तेरे जीवन-काल **का** अन्तिम दिन भी होगा। जो जीवन-काल **का** अन्तिम दिन होगा, वह तेरे जीवन **में** हमेशा के लिए अन्तिम दिन होगा। अतः वह दिन अन्तिम+अन्तिम=अन्तिमान्तिम दिन होगा। तू उस दिन की प्रतीक्षा मत कर। काल की जो तलवार तेरे सिर पर लटक रही है, उससे निजात पाने के लिए आज ही तू जीवन-काल **के** उस अन्तिम दिन की अवधारणा कर ले। इस क्षण भंगुर जगत में हर वस्तु क्षण भंगुर है। जीवन का कोई रुटीन नहीं है मौसम कब, कैसा हो किसी के हाथ में नहीं है। आज का दिन बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आज के दिन जैसा दिन कभी आया नहीं और भविष्य में कभी आएगा नहीं। यह काल और महाकाल दोनों का सद् है। महाकाल का, काल की हर विधा (समय, स्थान, स्थिति) में विशिष्ट सौन्दर्य और स्वयं में परिपूर्ण व पृथक् वैशिष्ट्य है।

'मैं' भ्रमित अवस्था में जब देह के नाम-रूप के साथ तद्रूप होकर देह वश हुआ तो देह सभी विकारों के **'वश'** हो गई और **'मैं'** भी अपने पद एवं सत्ता से च्युत होकर जीवकोटि में आ गया। **'मैं'** (जीवात्मा) के वश न होकर वह देह विकारों, प्रारब्ध, कर्म, काल आदि के **'वश'** हुई और सुकृति से विकृति बन गई। जब **'मैं'** देह के वश हुआ, तो देह पर मेरा **वश'** जाता रहा। मैंने अपने प्रवचनों में बार-बार वर्णन किया है, कि **मानव की सम्पूर्ण जीवन यात्रा प्रथम श्वास, 'शैशव' (सह शव) से श्वास (शव आस) की श्रृंखला द्वारा 'शव' तक की है।** इसके बीच जितनी भी अन्य अवस्थाएँ हैं वे शैशव और शव का मिला-जुला रूपान्तरण है। **'मैं'** (शिशु) शैशव में **'मैं'** नहीं लगा सकता और **'शव' 'मैं'** नहीं लगा सकता। शैशव में मेरा पालन-पोषण होता है और जो पालन-पोषण होता है वह **'माँ'** करती है। जिसके द्वारा भी पालन-पोषण होता है वह माँ जैसी ही होती है।

मैं जब **'मैं'** नहीं लगाता या इस स्थिति में नहीं होता तो मेरा ध्यान

रखने व पालन-पोषण करने के लिए माँ होती है। मैं जब **'मैं'** लगाता हूँ, तो भी देह का सारा पालन-पोषण माँ ही करती है। लेकिन **'मैं'** लगाने के बाद मैं यह भूल जाता हूँ, कि मुझे माँ पाल रही है। इसलिए देह विकारों के वश हो गई। जब तक मुझे अपनी देह की नाम-रूप में पहचान या मान्यता नहीं होती तो मेरा जगत सहित पालन-पोषण माँ ही करती है। **'मैं'** नाम-रूप की देह में अपनी पहचान के बाद यह तथ्य भूल गया। रात को मैं सोता हूँ तो मेरे हृदय की धड़कन, श्वासों और देह की समस्त भीतरी कार्य प्रणालियों का सुव्यवस्थित एवं सुसम्बद्ध संचालन **माँ** ही करती है। साथ ही बाहर के मौसम आदि असंख्य गतिविधियाँ भी माँ ही करती है। मैं शिशु था जब मेरी माँ सो जाती थी तो मेरी सुरक्षा एवं पालन **जगत जननी** द्वारा ही हुआ। उस अरूप रूप जगत जननी ने माँ रूप और अन्य रूपों के साथ मुझे पाला। वह जगत जननी इसलिए है क्योंकि वह **'देह सहित जगत'** व **'जगत सहित देह'** को मेरे लिए जनती है और पालती है। मैं देह के साथ **'मैं'** लगाने के बाद **'अहंवश'** उस माँ (जगत जननी) को भूल गया। मैं पूर्णतः माँ के **'वश'** हूँ। उस माँ के वक्ष से लगने पर सारे **'वश'** परे हो जाते हैं। मैंने इस **जग जननी** को मान्यता नहीं दी इसलिए मैं विकारों, प्रारब्ध, काल, कर्म वश हो गया। मेरी देह का समस्त कार्य **'क्रिया कर्म'** तक माँ करवाती है और तब तक करवाती है जब तक **'मैं'** पिता के वश नहीं हो जाता। वह है मेरी–**'भस्मी'**।

वह जगत जननी **'स्वयं'** मेरे विरक्त और विरक्ति के ठोस संघनित स्वरूप पिता के वश है। उस विरक्ति शक्ति से जैसा आदेश पाती है वह वैसा ही करती है। मेरी माँ की इच्छा उस विरक्त (पिता) की आसक्ति है, जिसका भृकुटि विलास सम्पूर्ण कोटि-कोटि महा ब्रह्माण्ड हैं। जो वश में है वह जीव है और जीव **'वश'** में ही है। उसे स्वयं आत्म विश्लेषण व स्वाध्याय करके यह जानना है, कि वह स्वयं उस **'वशता'** से विवश है अथवा वशीकृत व सम्मोहित है। यह जीव-सृष्टि की अवचेतना में उसकी चेतना का स्तर है। **'जीव-सृष्टि'** में जीव-कोटि भी महाचेतना का एक स्तर है, जो अवचेतनामय

है। महा जड़ता से महा चेतना के मध्य, सब कुछ एक ही चेतना के विभिन्न, भिन्न-भिन्न स्तर उस महाचेतना की स्वयं से, स्वयं मे, स्वयं के लिए आनन्दमय क्रीड़ा है। मेरी किसी भी श्वास (शव आस) द्वारा मुझे मेरे **'शव'** और **'भस्मी'** का अधिग्रहण करना होगा। **'भस्मी'** शैशव और शव दोनों से परे अपरिवर्तनीय परिवर्तन है।

'शव' का विपरीत **'वश'** है। जहाँ तक मैं शैशव और शव को याद रखूँगा मेरा वशीकरण हट जाएगा और **'भस्मी'** में वशीकरण लागू ही नहीं होता। **'वशी'** का उल्टा **'शिव'** है। मुझे इस तथ्य को हमेशा याद रखना है, कि जब **'मैं'** देह के साथ मैं लगाने की स्थिति में नहीं होता, मेरा जगत सहित पालन-पोषण जगत जननी माँ करती है और जब **'मैं'** लगाने की स्थिति में होता हूँ, तो भी समस्त कार्य उसी माँ द्वारा होते हैं। सद्‌गुरु कृपा से इस सद् को हृदयंगम करने पर सोते समय मेरा **'शववत्'** अगले दिन का अपना कोई प्रोग्राम नहीं होगा और अगले दिन शिशुवत् निद्रा से उठकर उस दिन का अपना कोई प्रोग्राम नहीं होगा। शिशुत्व एवं शवत्व के साथ शव की स्थिरता एवं शिशु की चंचलता दोनों जाग्रत हो जाएँगे। शव और शिशु दोनों को ढोना पड़ता है। शिशु का अपना कुछ नहीं होता और सब कुछ उसके लिए होता है। अपनी जगत जननी की हैसियत के अनुसार शिशु कुछ भी जाने बिना अपनी मांग रख देता है। शव को भी कुछ मांगना नहीं पड़ता। सब कुछ उसके लिए होता है। शिशु और शव दोनों किसी से सम्बद्ध नहीं होते, सब उनसे सम्बद्ध होते हैं। दोनों के प्रोग्राम दूसरे ही बनाते हैं। चाहे वह शव का गन्तव्य स्थान (शमशान) हो अथवा वह शिशु के घूमने-टहलने का स्थान हो। दोनों **'शान'** रहित होते हैं। चिन्ता एवं चिन्तन दोनों से रहित होते हैं। शव और शिशु दोनों को कोई आसक्ति नहीं होती, दोनों ही विरक्त होते हैं। यदि जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में विशुद्ध विरक्ति का दर्शन करना हो, तो एक ओर शैशव है, दूसरी ओर शव है। शिशु विरक्त होता है और उसे अपनी विरक्ति का ज्ञान भी नहीं होता। **'शव'** बनने पर मुझे अपनी उस **'विरक्त'** अवस्था का ज्ञान होना सम्भव नहीं है। शैशव और शव अवस्था में

मैं स्वयं को देह से नहीं पहचानता, लेकिन मेरी पहचान देह के साथ ही की जाती है।

सद्‌गुरु कहता है, कि "तू निद्रा से उठकर श्वास (शव आस) के साथ **'मैं'** लगा, नहीं तो दिन भर तू सोया-सोया उसी तरह व्यस्त रहेगा, जैसे रात्रि की निद्रा में स्वप्न में भागता-दौड़ता रहा। तू निद्रा से उठ गया है, ऐसे ही तू स्वप्न में भी उठा हुआ था, अब तू जाग अर्थात् तू उस मानसिक स्थिति को देख, जिसमें तू सोया हुआ भी था और स्वप्न में भाग-दौड़ भी कर रहा था। जो कुछ भी स्वप्न में तूने किया वह तुझ से एक विशिष्ट योनि के अन्तर्गत करवाया गया था। ऐसे ही अब दिन भर भी तुझसे और तेरे सर्व से करवा लिया जाएगा। तू स्वयं न कुछ कर और न, न कर। तुझसे करवाया जाएगा। तू जागकर स्वयं को 84 लाख योनियों से मुक्त कर। तेरा मात्र यही कर्म है अपने इष्ट से जुड़ जा, फिर तेरे लिए दिव्य चैनल लगेगी। रोते हुए विवश होकर प्रार्थना कर, कि "हे प्रभु ! मुझे एक क्षण का सान्निध्य दे दो। मैं पापी-पुण्यी जो भी, जैसा हूँ आपने बनाया है। मुझे मात्र कुछ क्षण अपनी सम्मुखता व समीपता के दे दो।" वो **'क्षण'** अक्षुण्ण होंगे और तेरे जीवन का मूल्यांकन उन्हीं अक्षुण्ण क्षणों के आधार पर होगा। **'वश'** से बाहर आकर ही जीवन का रसास्वादन सम्भव है।"

सद्‌गुरु आशीर्वाद देते हुए कहता है, कि "तू **'सब कुछ'** की प्रतिनिधि इस एक देह के उस देहातीत क्षेत्र से सम्बन्ध रख, जो देह का व देह से होते हुए भी स्वयं में देह रहित (सब कुछ रहित) है। **'भस्मी'** तेरी देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है, लेकिन स्वयं में **'कुछ नहीं'** है। यदि तू देह है तो अन्ततः **कुछ नहीं** (भस्मी) ही बनेगा। लेकिन उस समय तू अपने उस **'कुछ नहीं'** का दावा नहीं कर सकेगा। तू जीते जी देह द्वारा उसका दावा कर ले कि 'मैं भस्मी हूँ'। अपने उस **'कुछ नहीं'** अर्थात् विरक्त स्वरूप की अनुभूति के लिए आर्तनाद कर। तेरी अपनी देह से परे जो देह का अर्थ है, उस **'अर्थ'** के लिए प्रार्थना (प्र अर्थ नाद) कर। **देह से परे अर्थ के लिए किया जाने वाला नाद ही वास्तविक प्रार्थना है।** भस्मी-चिन्तन अन्ततः तुझे

चिन्ता व चिता दोनों से मुक्त कर देगा और तेरी मूल विभूत्यातीत विभूति विरक्ति जाग्रत हो जाएगी। इससे धीरे-धीरे तेरा आत्म तत्त्व अनाच्छादित होकर जाग्रत होना शुरू हो जाएगा। वह देह अपने **'सब कुछ'** के साथ तेरे लिए होनी शुरू हो जाएगी। पहले तू प्रारब्धवश, कालवश, कर्मवश, काम, क्रोध, लोभ, मोह व अहं आदि विकारों के वश था, अब ये सब तेरे वश में होंगे। जो असंख्य चाहतें व आसक्तियाँ तुझे नचा कर नोच रही थीं, अब वे तेरी चहेतियाँ बन कर तुझे रिझाने के लिए नृत्य करेंगी। तू अकाल स्थित्यातीत स्थिति में देह का तनिक अवलम्बन लेकर 84 लाख स्थितियों का रसास्वादन करेगा। काम जो पहले विकार था, वह ईश्वर भक्ति बन जाएगा। तुझे मात्र अपने इष्ट के नाम-जाप व भजन का ही लोभ होगा। अपने और अपने इष्ट के मध्य आने वाली किसी विधा या प्राणी के लिए तू महा क्रोधी होकर उसका विध्वंस कर देगा। तुझे अपने इष्ट से मोह हो जाएगा। इस प्रकार यह तथाकथित विकार दिव्य उत्प्रेरक बनकर तुझे तेरे इष्ट से जोड़े रखेंगे। ईश्वर का ईश्वरत्व एवं जीवात्मत्व भी तेरे लिए अनाच्छादित हो जाएगा और तभी तुझे ब्रह्मानुभूति एवं आत्मानुभूति होगी।''

'बोल सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(26, 27 फरवरी एवं 23, 24 अप्रैल 2010)

सुवृत्ति-सुकृति

मानव-देह का एक-एक रोम ईश्वर द्वारा निर्मित है, इसलिए यह **'अपौरुष'** है। इसका निर्माण, पालन, विकास, ह्रास तथा संहार सब कुछ ईश्वर के हाथ में ही है। जीवात्मा, ईश्वर का एकमात्र मानस-पुत्र है और ईश्वर की भाँति ही निराकार सच्चिदानंद तथा अपने पिता की सभी छः विभूतियों से युक्त है। **'जीवात्मा'** का प्रकाट्य **'मैं'** शब्द रूप में होता है। **'मैं'** ईश्वर की निराकार **'सुवृत्ति'** या मानस है और मानव-देह ईश्वर की साकार **'सुकृति'** है।

निराकार का साकार में प्रकाट्य हुआ, जिसका **'मैं'** जीवात्मा दृष्टा हूँ। निराकार **'मैं'** साकार मानव-देह से तद्रूपता **सी** में जीव कोटि में आ गया क्योंकि प्रकट होने के बाद निराकार सुवृत्ति भूल गया। वह सुकृति प्रकट होने के स्थान पर जन्मने-मरने वाली विकृति बन गई। देह के साथ तद्रूपतावश जीव भ्रमित हुआ, कि मैं पैदा हुआ और मैं मरूँगा। इस जीव भाव में सुकृति प्रकाट्य न होकर अवचेतना में विकृतियों से पूर्ण, सुख-दुःखमयी विकृति हो जाती है। जब हम देह सहित जगत की सुकृतियों में आयु, जन्म, मृत्यु, पाप, पुण्य आदि देखने लगे तो प्रकाट्य भूल गए और उस प्रकाट्य का अतीत और भविष्य बना लिया। उस प्रकाट्य का अपनी बुद्धि से विश्लेषण करने लगे।

'मैं' स्वयं में निराकार है और देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग, माया के तीनों गुणों आदि से परे है। साकार मानव-देह देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग, माया के तीनों गुणों आदि से युक्त है। मैं देह हूँ और जगत मुझ से पृथक् है। इस अवचेतनामयी पृथक्ता में लगाव-अलगाव होने लगा। जिसकी तीन विधाएँ हैं। पहला, जिनसे लगाव

होता है, दूसरे जिनसे अलगाव होता है और तीसरे अधिक वे होते हैं, जिनसे न लगाव होता है न अलगाव होता है। **'मैं'** और **'देह'** में कुछ तो Common Factor होगा जो दोनों की तद्‌रूपता हो गई। हम कुछ देर किसी के साथ रहते हैं और चलते हैं तो कुछ समान बिन्दु होते हैं। हमारी किसी से दोस्ती, दुश्मनी, राग, द्वेष का आधार कोई न कोई Common Factor होता है। दो या अधिक लोगों में जब पारस्परिक सम्बन्ध होता है या सम्बन्ध विच्छेद होता है तो उसका आधार Common बिन्दु होते हैं। जिज्ञासा यह होती है, कि **'मैं'** और **'देह'** में क्या समान था, कि देह के साथ तद्‌रूप सा होकर जीवात्मा जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, कर्म-बन्धन व काल-बन्धन में पड़ गया।

'मैं' सर्वोत्कृष्ट वृत्ति ईश्वर का निराकार मानस है और उसकी समस्त वृत्तियों का प्रकाट्य इसका विस्तार है। मैं पापी, मैं पुण्यी, मैं अमीर, मैं निर्धन, मैं स्त्री, मैं पुरुष, मैं ऊँचा, मैं नीचा आदि-आदि। **'मैं'** समस्त वृत्तियों का उसी प्रकार प्रतिनिधित्व करती है, जिस प्रकार एक मानव-देह कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार सृष्टि की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप है। सम्पूर्ण साकार सृष्टि एक मानव-देह का विस्तार है। **'मैं'** वृत्ति की उत्कृष्टता है और **'देह'** कृति की उत्कृष्टता है, फिर दोनों के तालमेल में यह घालमेल और झमेल क्यों हुआ? दोनों में पहला Common factor है, कि दोनों ईश्वर की हैं। मानव-देह उस निराकार की साकार प्रकाट्य कृति है और **'मैं'** उस निराकार की निराकार वृत्ति है। दोनों **'अपौरुष'** हैं। यहाँ **'मैं'** की देह से तद्‌रूपता हुई। देह, जगत सहित प्रकट हुई **'मैं'** अरूप है, **देह** नाम-रूप में है। अरूप **'मैं'** रूप (**देह**) के साथ तद्‌रूप नहीं हुआ, बल्कि रूप (देह) के अरूप के साथ हुआ, जिसका नाम है–**एकान्त**। एकान्त मानव-देह का निराकार है। यहाँ देह अपने निराकार में जीवात्मा (**मैं**) को उसका दर्शन कराती है। अनेकों का निराकार **'एक'** ही है, क्योंकि जब **'मैं'** एक देह रूप में निद्रा में निराकार होता हूँ तब मेरी एक देह सहित समस्त साकार मेरे लिए निराकार हो जाता है। निद्रा, मेरी एकान्त स्थिति न होकर जड़ता की स्थिति है। क्योंकि निद्रा स्थिति में मुझे **'मैं'** अथवा देह का कोई आभास नहीं होता।

सद्गुरु-कृपा से समाधि में इस स्थिति की मैं अनुभूति करता हूँ। मेरा एकान्त स्वयं में अनेकान्त भी है। वही **'मैं'** का निराकार है। **'मैं'** और **'देह'** का मेल यहीं हुआ। यही सामान्य **'निराकारता'** दूसरा **'बिन्दु**' है।

सुवृत्ति का अवतरण सुकृति है। साकार प्रकाट्य में जब **'मैं'** (जीवात्मा) निराकार को भूल गया, तो अवचेतन जीव बनकर जीव-सृष्टि के कल्पित काल-चक्र में भटकने लगा। वह सुवृत्ति और सुकृति दोनों ही विकृत बन गए। सद्गुरु की कृपा विकृति को विरक्ति में रूपान्तरित कर देती है। भाव समूह को स्वभाव कहते हैं और मन स्वभाव का केन्द्र है। स्वभाव, **'स्व'** भाव है, जो बदला नहीं जा सकता। जन्मों-जन्मान्तरों में स्वभाव वश देह के साथ **'मैं'** (जीव) ने तद्रूपता कर ली। यह स्वभाव वस्तुतः दुर्भाव है, जिसके कारण **'मैं'** आधि-व्याधि-उपाधि, रोग-दोष, वैर-वैमनस्य और विकृतियों की अन्तहीन श्रंखला में फंसा रहता हूँ। सद्गुरु, दुर्भाव बने इस स्वभाव को बहुत सहजता से रूपान्तरित कर देता है। ब्रह्मविद्या के श्रवण मात्र से मन का भाव बदल जाता है। बातों-बातों से सद्गुरु बात बना देता है। वि**कर**ति को वि**रक**ति में रूपान्तरित कर देता है। जीवन-काल में देहधारणा के ऊपर देह की भस्मी की अवधारणा करवा कर सद्गुरु विकृति को विरक्ति बना देता है। विरक्ति विभूति है, जिससे अन्य सभी विभूतियाँ (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति आदि) प्रकट होती हैं। एक सुवृत्ति जब नाम-रूप की सुकृति में अवतरित होती है तो उस साकार प्रकाट्य में एक के साथ अनेक अथवा **'स्व'** के साथ **'सर्व'** होता ही है। सुषुप्त, मूर्च्छित, विस्मृत एवं मृतक यह **'मैं'** नहीं लगा सकती। जब तक मैं अपनी देह के साथ **'मैं'** न लगाऊँ तब तक मेरे लिए कोई सुषुप्त, मूर्च्छित, मृतक एवं विस्मृत भी नहीं होता। ये सभी देह की स्थितियाँ हैं। निद्रा एक है और एक की ही है, लेकिन एक सहित अनेकों की है। एक का उठना, एक सहित अनेकों का उठना है। सोते समय मैं जिस **'स्व'** और **'सर्व'** को लेकर सोया था, उठते समय **'स्व'** और **'सर्व'** पृथक् होता है।

सोए हुए को यह मालूम नहीं होता, कि वह सोया हुआ है। इसलिए

'स्व' सहित **'सर्व'** उसके लिए नहीं होता। सोए हुए को अपनी सुषुप्ति का अभिमान नहीं होता, इसलिए उसके साथ उसका जगत सोता है। यह निद्रा जड़ता है। जड़ता का नियन्त्रण प्रकृति करती है और चेतनता का अनाच्छादन, अनावरण एवं विस्तार पुरुषार्थ द्वारा होता है। निद्रा की जड़ता में मुझे अपनी सुषुप्ति, देह व जगत किसी का कोई आभास नहीं होता। सोना एक कर्म है और यह ज्ञान न होना, कि मैं सो रहा हूँ इस अवस्था में मेरे अभिमान रहित होने का द्योतक है। इसलिए **'मैं'** अपनी देह व समस्त जगत सहित सोता हूँ। जैसे ही मैं निद्रा रूपी जड़ता से उठा तो अवचेतना में उठने का यह अभिमान मुझे एक से अनेक बना देता है। **'अहं'** के तदनुसार सर्व सम्मुख प्रकट हो जाता है। मैं डॉक्टर रूप में उठा तो रोगी आ गए, शिक्षक रूप में उठा तो शिक्षार्थी या विद्यार्थी आ गए। **'मैं'** अनेकों के साथ उठता हूँ। इसलिए सद्‌गुरु कहता है–**'उत्तिष्ठ ! जाग्रत।'** **'जागृति'** पुरुषार्थ है।

सुषुप्ति के **समय** जो देह व जगत था, **सुषुप्ति में** वह नहीं रहा। उस सुषुप्ति का ज्ञान नहीं था, लेकिन उस जड़ता से गुज़रने पर भी इतना परिवर्तन आ गया, कि जिस देह व जगत को लेकर मैं उठा वह पूर्णतः भिन्न था। निद्रा की जड़ता में मेरी देह सहित जगत का पूर्ण नियन्त्रण प्रकृति के हाथ में था। पशु, पक्षी जगत जड़ है, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश सहज जड़ हैं। अपार शक्ति होते हुए भी इन्हें अपनी शक्ति का कोई ज्ञान नहीं होता। प्रकृति की ओर से इनकी दशानन (निरन्तर, चिरन्तन, अविरल, अकाट्य, अबाध, अति सारगर्भित, विशिष्ट, संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक) गतियाँ अदृश्य रूप से होती रहती हैं। सदगुरु-कृपा से यह अभिमान न हो, कि मैं उठा हूँ, मेरा पद, परिवार आदि है और यह भाव हो, कि मुझे प्रभु ने उठाया है, मुझे उसने देह दी है, वही इस देह से कुछ करवाएँगे। इस भाव से उठना जागृति होगी। मैं जीवात्मा हूँ, मैं सुवृत्ति हूँ। देह सहित जगत में मैं ही मैं प्रकट होता हूँ। वह मेरी देह **'मैंमयी'** होगी और उस देह में मेरा जीवात्मावतरण होगा। देह (**स्व**) के साथ प्रकट जगत (**सर्व**) जीवात्मा (**मैं**) के लिए होता है।

निद्रा से उठ कर मुझे जब समाधि में निराकार सुवृत्ति स्वरूप का दर्शन हो जाएगा, वह मेरी जागृति होगी। मैं छः घण्टे की निद्रा रूपी जड़ता से गुज़रा तो मेरे सहित मेरा सारा ब्रह्माण्ड बदल गया और मैंने कुछ नहीं किया। अब उठकर मैं कुछ क्षणों की समाधि या चेतना से गुज़र जाऊँ तो क्या होगा इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता। यदि निद्रा की जड़ता से अवचेतना में उठकर मैं पुनः उन्हीं पदार्थों को एकत्र करने में लग जाता हूँ जो पहले थे नहीं और अन्ततः रहेंगे नहीं, तो यह अवचेतनापूर्ण भाव पुनः निद्रा रूपी जड़ता की ओर ले जाएगा।

हमें मानव-देह के रूप में ईश्वरीय संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट चमत्कार मिला हुआ है। युगों-युगान्तरों से साकार देह के साथ जन्मों-जन्मान्तरों में हुई तद्‌रूपतावश देहाध्यास के कारण मुझ जीव को देह धारणा हो गई। **'मैं'** (जीवात्मा) देह नहीं हूँ लेकिन मैंने जगत को देह रूप में ही देखा। जीव को अपनी साकार देह की अवचेतना होते ही जगत की अवचेतना हुई। वह पूर्णतः जीव-सृष्टि में उतर आया। जीवात्मा जीव कोटि में अपनी देह की अवचेतना में आया, लेकिन देह ने अवचेतना में उसे पहचाना ही नहीं। **परमात्मा एक, जीवात्मा एक, मानव-देह एक और उस एक देह के साथ जगत एक।** देह **'मैं'** (जीवात्मा) के लिए थी, लेकिन तद्‌रूपतावश **'मैं'** देह के लिए हो गया। इसलिए देह के साथ वह समस्त जगत इसके गले पड़ गया।

जितना भी कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का मायिक साकार दृश्यमान जगत है, वह निराकार का प्रकाट्‌य है। यह निराकार से प्रकट होकर निराकार में चलते हुए निराकार में समाहित हो जाता है। सम्पूर्ण साकार सृष्टि की सर्वोत्तम, सर्वोत्कृष्ट, परम विशिष्ट, अति चमत्कारिक एवं विलक्षण संरचना मानव-देह है। पंच-महाभूतों की मानव-देह का निर्माण, पालन पंच-महाभूतों द्वारा ही होता है और अन्ततःसंहार (मृत्यु) के बाद अग्निदहन होने पर यह पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। एक परमात्मा है, जो अदृश्य व निराकार है। एक जीवात्मा है, जो उसका आनन्दमय मानस है

तथा समय-समय पर अनेक रूपों में प्रकट साकार सृष्टि का दृष्टा है।

उदारता, प्रेम, घृणा, राग, वैर, भय, सौहार्द्रता, करुणा, दया, भूख, प्यास, ममता, लज्जा, निर्लज्जता आदि मानस के भाव हैं। हमारी साकार देह की उत्कृष्टता, निम्नता, विलक्षणता, साधारणता, असाधारणता, गुण, अवगुण निराकार मानसिकता पर निर्भर हैं। इस प्रकार हमारी साकार देह द्वारा होने वाले समस्त प्रकाट्य निराकार के, निराकार द्वारा, निराकार के लिए हैं। असंख्य भिन्न-भिन्न व्यवहारों एवं क्रिया-कलापों में देह सहित साकार जगत दृश्यमान होता है, जिसका स्रोत एक निराकार मानस है। पंच-महाभूत स्वयं में निराकार हैं, जिनका प्रकाट्य देह सहित जगत में निर्माण, पालन व संहार तीन विधाओं में होता है।

सतोगुण, रजोगुण एवं तमोगुण के उत्पाद ये गुण-अवगुण हमारे जीवन को प्रभावित करते हैं। हमारी देह सहित साकार जगत इसलिए परिवर्तनशील है, क्योंकि उसका निराकार परिवर्तनशील है। फिल्म में तरह-तरह के भिन्न-भिन्न दृश्य इसलिए दृश्यमान होते हैं क्योंकि फिल्म की निराकार Recording में भिन्नता है। जो रील घूम रही है, वह निराकार है। उसमें साकार देह व देहों की Recording निराकार रूप में है और स्क्रीन पर हम उस निराकार का साकार में प्रकाट्य देखते हैं। साकार में जो प्रस्तुति होती है उससे निराकार का आकलन व मूल्यांकन होता है। हम साकार में भ्रमित हो जाते हैं क्योंकि हमने अपना निराकार नहीं देखा। बाह्य आडम्बर एवं ऊपरी चमक-दमक अस्थाई तौर पर ही प्रभावित कर सकती है।

यदि जीवात्मा देह रूप में दृष्टा बनेगा तो अवचेतनामयी जीव-सृष्टि में जीव बनकर पतित हो जाएगा। देह सहित जगत का रसास्वादन करने के लिए दृष्टा जीवात्मा को अपनी देह का क्षणिक अवलम्बन मात्र पर्याप्त है। यह जानते हुए उसे साकार देह का अवलम्बन लेना होगा, कि मैं स्वयं में दृश्यमान नहीं हूँ। मैं अपने पिता परमात्मा की तरह अदृश्य व निराकार जीवात्मा हूँ। जीवात्मा को दृश्यमान **सा** होना पड़ता है। इस भाव में कि देह सहित जगत के ये दृश्यमान दृश्य मेरे मनोरंजन एवं विलास के लिए मेरे माता-पिता द्वारा

आनन्द में रचाया गया मायिक खेल है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के साकार दृश्यों को देखने के लिए एक निराकार मानस जीवात्मा को एक मानव-देह का अवलम्बन लेना पड़ता है। तभी वह उन अनेकों का दृष्टा बनेगा, जो उस एक के एक देह का अवलम्बन लेने से प्रकट हुए। जब मेरा (जीव का) देह से लगाव हुआ तो **'मैं'** भ्रम से भ्रमित हो गया। क्योंकि मैंने स्वयं को देह मान लिया। यह मानने के लिए कि स्वयं को देह समझना भ्रम है; मेरा यह जानना आवश्यक है, कि मैं कौन हूँ, नहीं तो मैं उस भ्रम से ही भ्रमित रहूँगा। जब अपने भ्रम को जान लिया तो जिज्ञासा उठेगी, कि मैं कौन हूँ? अतः जीवात्मा को यह ज्ञान होना आवश्यक है, कि मैं यह साकार दृश्य भ्रमित होकर देख रहा हूँ। यह मात्र तमाशा है, क्रीड़ा है। तभी वह जगत का रसास्वादन कर पाएगाः–

''या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्ति रूपेण संस्थिता
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।''

जब भ्रम दूर होता है तो ब्रह्म प्रकट हो जाता है और साकार जगत ब्रह्म का चिदाभास मात्र रह जाता है। भ्रम का भ्रम लगना आवश्यक है, इसलिए निराकार जीवात्मा का कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की माया का रसास्वादन करने के लिए साकार देह का अवलम्बन लेने से पहले उसी साकार देह के निराकार एवं देहातीत क्षेत्र से तद्रूप होना आवश्यक है। नहीं तो जीवात्मा साकार मायिक जगत के भ्रम से भ्रमित होता हुआ स्वयं को अवश्य ही नाम-रूप देह समझता हुआ, जीव बनकर अपने अक्षुण्ण एवं शाश्वत् पद से च्युत हो जाएगा। परमात्मा ने देह रूप में होश सम्भालते ही हम सबको अवचेतना में ही प्रत्यक्ष दिखाया है, कि देह में कोई कुछ भी बन जाए अन्ततः देह, डेढ़ दो किलो राख में रूपान्तरित हो जाती है। देह के इस निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य को **'मैं'** उपेक्षित कैसे कर सकता हूँ, क्योंकि वह तो होना ही है और कभी भी हो सकता है। इसी दृश्यमान सृष्टि में पंच-तत्त्वों से अतीत तत्त्वातीत तत्त्व **'भस्मी'** भी दृश्यमान है।

देह **की** और देह **से** बनने वाली भस्मी भी एक पदार्थ है, जो मुझे कभी नहीं मिला। यह एक पदार्थ मुझे मेरे जीवात्मा पद का अर्थ बताएगा। यह

मेरी देह का पदार्थ है लेकिन वह पदार्थ तब प्रकट होता है जब देह नहीं रहती। इसलिए तब वह देह का **'पदार्थ'** देह के लिए नहीं होता। इसी भस्मी का चिन्तन मुझे देह के होते हुए देहातीत ले जाएगा। यह भविष्य काल से बँधा हुआ नहीं है इसलिए देह के किसी काल में और काल की किसी भी देह में भस्मी का अधिग्रहण किया जा सकता है। यह मेरी **'मैं'** यानि सुवृत्ति की जागृति होगी।

सद्‌गुरु कहता है, कि भस्मी देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **है** इसलिए तू कभी भी इसकी धारणा कर सकता है। जीवन में विभिन्न भविष्यों की भी तू वर्तमान में धारणा कर लेता है। वह धारणा ही तुझे उनकी प्राप्ति के प्रति भगाती है, मेहनत करवाती है, कार्यरत करती है। वे भविष्य तो अनिश्चित हैं पूरे हो भी सकते हैं नहीं भी हो सकते। पर यह भविष्य तो पक्का निश्चित है।

देह तेरी धारणा में है, इसलिए देह में व जीवन में जितने भविष्य हैं, वे तेरी धारणा में आ जाते हैं। परन्तु भस्मी देह का भविष्य है, यह तेरी धारणा में तब आएगा जब तेरी **'मैं'** उसके साथ लग जाएगी, कि 'मैं भस्मी हूँ'। सुषुप्ति, मूर्च्छा, विस्मृति, मृतकावस्था के साथ मैं नहीं लगती इसलिए ये अवस्थाएँ **तेरी जड़ता हैं।** भस्मी के साथ जब तेरी **'मैं'** लग जाएगी कि मैं भस्मी हूँ, वह तेरी जागृति और चेतना होगी। वह **'मैं'** नाम-रूप की देह में सीमित **'मैं'** न होकर **'भस्मी'** जैसी विस्तृत **'मैं'** होगी। वह व्यक्तिगत **'मैं'** कुल समष्टि की **'मैं'** होगी। तू है तो मैं हूँ। यह **'तू'** परमात्मा और **'मैं'** (जीवात्मा) का निराकार में द्वैत है। मैं दृष्टा हूँ, यदि तू मुझे जनवाए, तो मुझे तेरी सृष्टि के रहस्यों का तेरी कृपा से ज्ञान हो सकता है। मुझे इस सृष्टि में आगे दिखाए जाने वाले दृश्यों के प्रति कौतूहल है। इसलिए तनिक भ्रमित होकर मैं देह का बाना धारण करता हूँ ताकि तेरी समस्त सुकृतियों, विकृतियों और सब कुछ का रसास्वादन कर सकूँ। सुवृत्ति भी तेरी है, उसका विस्तार भी तेरा है। सुकृति (देह) भी तेरी है और कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की साकार सुकृतियों की सृष्टि का विस्तार भी तेरा है। 'मैंने किया है' का भाव माया है,

क्योंकि सृष्टि प्रकट होती है। सुवृत्ति का सुकृति में प्राकट्य ईश्वर की क्रीड़ा है।

'भस्मी' विरक्ति की द्योतक है। **'मैं'** (जीवात्मा) जब भस्मी से स्वयं को पहचानेगी तो वह भस्मी की भाँति उदात्त और विरक्त हो जाएगी। मैं और भस्मी दोनों देहातीत, देशातीत, कालातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत और माया के तीनों गुणों से अतीत है। भस्मी स्वयं में पापी, पुण्यी, साधु, शैतान, स्त्री, पुरुष, हिन्दू, मुस्लिम नहीं होती। जब देह और जगत मेरे साथ है तब मेरा पुरुषार्थ यह है, कि देह से मैं अपने देहातीत स्वरूप का शीघ्रातिशीघ्र अनाच्छादन करूँ। रूप-स्वरूप एवं अन्यथा एक वृत्ति से मेरी देह और जगत प्रकट हुआ। देह और जगत रूप में **'मैं'** वह वृत्ति हूँ। निराकार में वह वृत्ति है और साकार में वह सुकृति अथवा विकृति अथवा अन्यथा देह सहित जगत है। **'वृत्ति'** निराकार मायिक चैनल है। सारा साकार जगत उसी से प्रकट होता है। जगत सहित देह और देह सहित जगत साकार में अनेक एक वृत्ति से प्रकट होते हैं। एक से अनेक और अनेकों में एक भी है तथा अनेकों का आधार एक ही है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(5 – 6 मार्च, 5 जुलाई एवं 9 जुलाई से 9 अगस्त, 2009)

स्वार्थी-सर्वार्थी

'स्'च अर्थात् **'मैं स्वयं'**, इसी से स्वार्थ शब्द बना है। स्वार्थ, संकीर्णता का द्योतक है। जो अपने आपको देखता है, अपने लिए सक्रिय रहते हुए, अपने लिए ही सब कुछ एकत्रित करता है, अपने लिए ही बोलता, सुनता है अर्थात् जिसकी हर विधा का अर्थ मात्र अपने व अपने परिवार आदि के लिए ही हो; वह **स्वार्थी** है। दूसरा शब्द है **'सर्व', सर्वे भवन्तु सुखिनः।** जो सर्व के लिए बोलता, सुनता है, जिसके समस्त कृत्य एवं सोच सर्व के लिए होती है अर्थात् जिसकी अपनी स्वयं की देह का अर्थ, सर्व के लिए हो उसे **सर्वार्थी** कहते हैं। सर्वार्थी के लिए कोई **'पर'** या दूसरा होता ही नहीं है। उसकी **'स्व'** ही **'सर्व'** में रूपान्तरित हो जाती है। **'स्वार्थी'** One out of all है और **'सर्वार्थी'** One in all है। जो सर्वार्थी है, वह अन्यार्थी है और वही यथार्थी है। यथा+अर्थ यानि जो देह का वास्तविक अर्थ होना चाहिए, सर्वार्थी की देह तदनुसार होती है।

स्वार्थ अधोगति का प्रथम सोपान है। स्वार्थ, निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ के बाद स्वार्थी की अनन्त व असीम अधोगति होती रहती है और सर्वार्थी, अर्थ से धर्म, काम एवं मोक्ष के बाद अनन्त ऊर्ध्वगति करता रहता है। **'स्व और सर्व'** का हम मौलिक रूप से विश्लेषण करें। मेरे **'स्व'** (**'मैं'** देह रूप) के अस्तित्व की सर्वोत्कृष्टता एवं सर्वोत्तमता मेरे **'सर्व'** (जगत) के कारण है। **'स्व'** मानव-देह है, जो मुझे (जीवात्मा को) प्रभु ने अति कृपा करके दी है। मानव-देह ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोत्तम संरचना है। अर्थात् सर्व सृष्टि में उत्कृष्टतम् एवं सर्वोत्तम ईश्वरीय कृति से मुझे (जीवात्मा को) नवाज़ा गया है। मानव-देह की उत्कृष्टता, विशिष्टता, विलक्षणता एवं उत्तमता का मापदण्ड **'स्व सहित सर्व'** से है। दूसरे सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड (सर्व) में जो कुछ भी है, उस सबका एक मानव-देह में संघनित

एवं संगठित प्रतिनिधित्व है। जैसे ही **'मैं'** (जीवात्मा) ने मानव-देह में नाम-रूप की अवचेतना में स्वयं को पहचाना, तो तुरन्त, स्वतः साथ-साथ एवं तदनुसार मेरा उस समय का **'सर्व'** भी प्रकट हो गया। देह सहित मेरा **सर्व** सोता है, देह सहित **सर्व** उठता है तथा कार्यरत होता है। मेरी **'स्व'** मेरे **'सर्व'** से रहित कभी नहीं होती। **'स्व'** है तो **'सर्व'** है, बिना **'स्व'** के **सर्व** हो ही नहीं सकता। **'सर्व'** है, तो **'स्व'** है ही।

मेरा प्रत्येक कर्म '**सर्व'** के कारण है। एक ओर देह के भीतर होने वाली असंख्य व अगणित क्रियाएँ आन्तरिक सर्व हैं और दूसरी ओर बाह्य जगत रूपी '**सर्व'** है। मेरे द्वारा होने वाली प्रत्येक क्रिया इन दोनों की वजह से होती है। हमारी देह द्वारा होने वाली छोटी सी सक्रियता भी देह के भीतर की असंख्य व अगणित क्रियाओं के संतुलन एवं पारस्परिक सुसम्बद्धता के कारण होगी, जो किसी के हाथ में न कभी थी, न है और न हो सकती है। **'देह कर्म'** शीर्षक प्रवचन में इस विषय का मैंने सविस्तार वर्णन किया है। साथ ही जो कार्य आप कर रहे हैं अथवा आपके द्वारा हो रहा है, उसके लिए आपके बाह्य '**सर्व'** का सहायक होना भी आवश्यक है। मानो सद्गुरु के दरबार में प्रवचन का श्रवण करने के लिए आपको जाना है, तो सद्गुरु द्वारा निर्धारित समय पर आपकी देह स्वस्थ रहे। यानि, आपकी देह के भीतर दशानन (अविरल, अकाट्य, निरन्तर, चिरन्तन, अबाद्ध, सारगर्भित, गुणात्मक, विशिष्ट, संक्षिप्त, उद्देश्यपूर्ण) चलती असंख्य क्रियाएँ उस समय संतुलित और सुसम्बद्ध हों। साथ ही बाह्य जगत में पारिवारिक, सामाजिक स्थितियाँ, मौसम, आपका वाहन तथा मार्ग के अन्य वाहन, यातायात आदि की अनुकूलता भी अपेक्षित है। इस प्रकार जिसे आप **'स्व'** का कृत्य समझते या मानते हैं, कि **'मैं'** सद्गुरु दरबार में प्रवचन सुनने गया अथवा मुझे जाना है, उसमें आपके दो '**सर्व'** सहयोगी होने आवश्यक हैं। इसलिए सद्गुरु कहता है, कि **''आप आएँ हैं** क्योंकि **'आ पाएँ'** हैं; यदि न आ पाते तो कैसे आते?''

अंग्रेज़ी भाषा में Serve का अर्थ **'सेवा'** है। मेरी (स्व की) विशिष्ट-अशिष्ट या निकृष्ट, सारगर्भित या निस्सार, संक्षिप्त या विस्तृत, गुणात्मक

या मात्रात्मक, उद्देश्यपूर्ण अथवा निरुद्देश्य छोटी से छोटी क्रिया-सक्रियता के लिए मुझे अपने आन्तरिक व बाह्य दोनों '**सर्व'** की **'सेवा'** (Service) आवश्यक होती है, जो मेरे हाथ में बिल्कुल नहीं है। **मैं'** स्वयं भी '**सर्व'** की सहायता से Serve (सेवा) कर सकता हूँ। उसने मुझे अपनी सुन्दरतम, अनुपम, सर्वोत्कृष्ट एवं सर्वोत्तम संरचना मानव-देह देकर अपनी रचाई सृष्टि का दृष्टा बनाया है। **'स्व'** का प्रत्येक कार्य '**सर्व'** के कारण है और मेरा सम्पूर्ण '**सर्व'** (आन्तरिक एवं बाह्य) मेरे **'स्व'** के लिए कार्य कर रहा है। I am being served by my **'सर्व'** and I am made to serve for the **'सर्व'**। मेरी **'स्व'** (मानव-देह) मेरे सम्पूर्ण सर्व की संघनित प्रत्यक्ष प्रतिनिधि एवं मात्र स्वरूप का मूर्तिमन्त प्रतिरूप है।

मैं जब अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में आता हूँ, तो मेरे **'स्व'** सहित '**सर्व'** प्रकट होता है। जगत तब है जब मैं हूँ, इसलिए मैं सर्वोत्कृष्ट और सर्वोत्तम हूँ। देह के भीतर की असंख्य एवं अगणित कार्य प्रणालियों के कारण देह जीवित है और देह रूप में **'मैं'** हूँ तो जगत है। मैं पुनः वर्णन करूँगा, कृपया एकाग्र करें। मेरी मानव-देह ईश्वर द्वारा रचित ऐसी संरचना है, जो सम्पूर्ण महाब्रह्मण्ड का अकेले प्रतिनिधित्व करती है। सृष्टि में पृथ्वी की समस्त धातुएँ-अधातुएँ, आकाश मण्डल के समस्त ग्रह-नक्षत्र, जल मण्डल वायु और सब प्रकार की अग्नि इस एक मानव-देह में संघनित है। इसके भीतर होने वाली असंख्य एवं गणनातीत **'दशानन'** एवं अदृश्य क्रियाओं का स्वामी मात्र ईश्वर ही है। मात्र ईश्वर द्वारा ही संचालित इन भीतरी क्रियाओं के संतुलन एवं सुसम्बद्धता के कारण ही मेरी बाह्य क्रियाएँ होती है।

भौतिक जगत में होश सम्भालने पर सद्गुरु-कृपा से मैं अपनी सर्वोकृष्ट एवं सर्वोत्तम मानवीय देह के भीतर होने वाले उन समस्त प्रकरणों को जो मेरे जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं, उन पर अर्न्तदृष्टि डालने से जान लेता हूँ और मान लेता हूँ, कि मेरा उन पर कोई अधिकार नहीं है। इस जान्यता और मान्यता के बाद अपने मन-बुद्धि का पूर्णतः समर्पण होने पर ही मानव-जीवन का रसास्वादन सम्भव है। लेकिन दुर्भाग्यवश जीवन में होश

सम्भालते ही जब **'मैं'** (जीवात्मा) अपनी साकार देह के नाम-रूप से स्वयं को पहचानता हूँ, तो मेरी समस्त भाग-दौड़ एवं क्रियाएँ देह सहित जगत में आकारों के सम्वर्द्धन, परिवर्तन, संशोधन व विकास से सम्बन्धित असंख्य चाहतों के पूरा करने के लिए हो जाती हैं। इस प्रक्रिया में कर्ता भाव के कारण अपनी समष्टि या '**सर्व**' से हट कर मैं अधिकार खो देता हूँ। अधिकार में आकार शब्द छिपा है, लेकिन आकार में अधिकार नहीं है। आकार साकार है और अधिकार निराकार है।

परम सद्गुरु-कृपा से जब **'मैं'** (जीवात्मा) जान लेता हूँ और मान लेता हूँ, कि देह रूप में मेरे जीवित रहने के लिए आजीवन देह के भीतर असंख्य एवं गणनातीत क्रियाएँ अदृश्य रूप में चलती रहती हैं, जिन पर मेरा **स्वयं** का कोई **अधिकार** नहीं है। दूसरा मेरा बाह्य सर्व जगत भी मेरी किसी छोटी से छोटी क्रिया के लिए सहायक होना आवश्यक है। इस सद् को जानकर और तहे रूह एवं मन से मान कर मैं स्वयं के कृत्यों का **अभिमान** त्याग दूँ, तो मैं पाऊँगा, कि सम्पूर्ण बाह्य जगत जो मेरी एक देह की अवचेतना पर आधारित है उस पर मेरा **अधिकार** हो जाएगा। तब मैं स्वतः **स्वार्थी** से **सर्वार्थी** हो जाऊँगा। रात्रि में सुषुप्ति में भी मेरी देह में सभी भीतरी क्रियाएँ चलती रहती हैं। तथाकथित जाग्रत होकर जैसे ही मैं अपनी देह के नाम-रूप से स्वयं को पहचानता हूँ, तो इस जगत में जो मैं करता हूँ, वह मेरे द्वारा करवाया जाता है, इसलिए वह स्वतः होता है। यदि **'स्व'** ने स्वार्थवश भी कुछ किया तो वह सर्वार्थ ही होगा। देह सहित जगत एक मेरे नाम-रूप की अवचेतना में आने पर प्रकट हो रहा है। ईश्वरीय मन और चेतनामयी बुद्धि के समन्वय से मेरी देह सहित जगत का सद् प्रकाट्य ही होगा। ईश्वर अदृश्य एवं निराकार है। यही उस अदृश्य का अन्तः चक्षुओं द्वारा किया जाने वाला **'दर्शन'** है, जो मन-वाणी-बुद्धि एवं इन्द्रियों से परे है और जो प्रवचनातीत व श्रवणातीत है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(9, 10, 11, 12 मई, 2008)

समर्थ

सम को अंग्रेज़ी में Same कहते हैं। सम का विपरीत असम है। सृष्टि का रचयिता ईश्वर सम+अर्थ=समर्थ है। जीवात्मा उसी के समान समर्थ और उसका इकलौता मानस-पुत्र दृष्टा है। देह उसका भाव है, जो उसे असम करते हुए जीवकोटि में ले आता है और वह असम+अर्थ=असमर्थ हो जाता है। जीव-सृष्टि में जो, जब, जहाँ, जैसी भी देह थी, है और होगी उन असंख्य देहों और देहों पर आधारित असंख्य देहों के एक भाव, कि 'मैं देह हूँ' ने मुझ जीवात्मा को असम+अर्थ= असमर्थ कर दिया। देह भाव सम था, है और होगा। समस्त प्राणी जगत में मानव को प्रभु ने अपनी चेतनायुक्त बुद्धि दी, कि तू सोच, सोच और सोच कि ''तू जो मुझसे परे हुआ, परे करने के लिए भी तुझे 'सम' ने परे किया है।'' **सम से परे होने के लिए, सम के करीब आने के लिए, सम में समाहित होने के लिए 'सम' ही चाहिए।** एक 'सम' (देहभाव) ने मुझे दूसरे सम (भस्मी भाव भाव सम भसम) से परे कर दिया। वह भस्मी भाव भी **'सम'** था, जिसने मुझे जीवात्मा को देह के देहत्व, आत्मा के आत्मत्व एवं ईश्वर के ईश्वरत्व तीनों से परे **सा** कर दिया। समर्पण में **'सम'** क्या है, जिसका मैं समर्पण करूँ और सम+अर्थ=समर्थ हो जाऊँ। वह **'सम'** मेरा देहभाव है जो सारे समों, विषमों और असमों का एक ही है।

संसार में कोई असमान है तो कोई समान है। दोनों एक दूसरे के लिए असमान हैं। फिर कौन सम है कौन असम। **'समर्थ'** ही सम है। वह सम अर्थ है। हर सम जो मेरा असम है वस्तुतः विषम है। मेरी सारी दौड़ **'सम'** की ओर है और घोर असम हो जाता हूँ। देहार्थ प्रत्येक सम असम ही है।

असम अर्थ (असमर्थ) समर्थ (सम+अर्थ) कैसे होगा सम अर्थ समभाव है, कि मैं देह हूँ, इसका भाव सम अर्थ भसम है। देह और देहों का अर्थ सम (भसम) है। शिव सुन्दर, सद्, आनन्द, कल्याण एवं ज्ञान है। सम अर्थ की समीपता के लिए समर्पण आवश्यक है। पकड़ के लिए समर्पण बहुत कम है। सम अर्थ की पकड़ मात्र कृपा-साध्य है, कृपा-साध्य मात्र है।

सम अर्थ के लिए देह व देहों का समर्पण चाहिए। देह व देहों में सम अर्थ क्या है जिसके कारण जीवात्मा जीव भाव में जकड़ा गया। वह समस्त **समों, असमों** और **विषमों** का एक ही सम है। जिस प्रकार **'भस्मी'** समस्त विषमों, असमों, समों की एक ही है उसी प्रकार सभी विषमों, असमों, समों का सम भी एक है। इस **'सम'** को जानना, मानना और उसे अनुभूतिगम्य करना देहानुभूति है, जो आत्मानुभूति के लिए आवश्यक है। अन्तिम सद् की पुष्टि, सत्यापन, प्रमाणिकता की पुष्टि की स्वीकृति को सिद्धि कहते हैं। एक सम जिसे अर्पण करना है उसे पहले सिद्ध करना है। एक सद् सम है और एक असद् सम है। असद् सम (मैं देह हूँ) परिर्वतनीय है और 'सद् सम' (मैं भस्मी हूँ) अपरिवर्तनीय है।

जन्मों-जन्मान्तरों में हमारी दौड़ **'सम'** की ओर है। इसके समान मेरी गाड़ी, घर, पद, सन्तान, डिग्री, सम्पदा, नाम, यश, सुन्दरता, ज्ञान, ध्यान, जप, तप आदि आदि हो। जब हम किसी भी सम को पाते हैं या पाना चाहते हैं, तो उसकी चाहत में ही हम असम हो जाते हैं। उस कृत्य व प्राप्ति में हम असम हो जाते हैं। असमता हमारी असमर्थता की द्योतक है। देहार्थ किसी भी समता की चेष्टा, कुचेष्टा, प्राप्ति अथवा खोना हमें असमता की ओर ले जाता है। अतः हमारी मानसिकता में असमर्थता बनी रहती है। समता की ओर दौड़ स्वयं आधि, व्याधि, एपाधि, वैर, वैमनस्य और रोग, दोष का कारण बन जाती है। देहार्थ जितने भी मेरे सम हैं, वे सारे सम भी असम हैं। मैं **'सम'** की ओर दौड़ता हूँ, जब उसे पकड़ लेता हूँ, तो असम हो जाता हूँ। सम आयु के लोगों में अपने कम और अपने से अधिक आयु वालों से असम हो जाता हूँ। 'सम' धर्म (हिन्दुओं में) मेरा असम है, क्योंकि मैं दूसरे धर्मों से

असम हो जाता हूँ। जो मैंने छोड़ा और जो पाया दोनों ने मुझे असम बना दिया। सम Post और Same Post ने मुझे अपने से ऊँची और अपने से नीची Post से असम कर दिया। फिर मैं किसी और के समान बनना चाहता हूँ और फिर भी असम हो जाता हूँ। मुझे **'सम'** आकर्षित करते हैं। समताओं का जोड़ भी मुझे असम और विषम ही रखता है। समताओं की घटा भी मुझे असम रखती है समताओं गुणा भी असम रखती है। कोई धन, पद, सम्पत्ति, प्रतिष्ठा, शक्ति प्राप्त करने पर भी असमता मुझे घेरे रखती है और मैं देह के सम अर्थ से परे ही रहता हूँ। इसलिए मैं असम अर्थ=असमर्थ ही रहता हूँ।

हम अपनी नीजता खो देते हैं। जन्मों-जन्मान्तरों से जो हमारी पृष्ठभूमि या भूमिका है हम उससे पदच्युत हो जाते हैं। इसके पीछे हमारा एक महा भवरोग है जिसका स्रोत एवं कारण मेरा एक भाव है, कि मैं देह हूँ। देह साकार एवं दृश्यमान है और देह भाव निराकार एवं अदृश्य है। देह भाव का समर्पण और भस्मी भाव का अधिग्रहण मुझे सम अर्थ की ओर ले जाएगा।

साकार का भाव निराकार है।

दृश्यमान का भाव अदृश्य है।

मेरी मानसिकता की मलिनता, विक्षिप्तता और आवरण का कारण देह नहीं देह भाव है। आवरण भी भाव का है और अनावरण भी भाव का ही है।

आवरण स्वयं में इतना पूर्ण एवं सघन है, कि उसने मेरी देह के देहत्व, आत्मा के आत्मतत्त्व और ईश्वर के ईश्वरत्व को पूरी तरह से ढका हुआ है। स्वयं में आवरण भी पूर्ण है समर्पण इस **'सम'** का अर्पण है। भस्मी देह का अर्थ है। भाव सम **'भसम'** देह व देहों का अर्थ है और अर्थ सम है। इस सम अर्थ का आच्छादन दूसरे सम भाव देह भाव से हुआ, जिसने जन्मों-जन्मान्तरों में मेरी पूर्ण समर्थ को मेरी पूर्ण असमर्थता में रूपान्तरित कर दिया। वह असमर्थता भी सम थी, उसका कारण भी सम था। यह समर्थ (भस्मी) भी सम है और उसका कारण भी सम है। यहीं मुझे भ्रम ने घेर लिया। मेरे इस भ्रम ने ब्रह्म को आच्छादित कर दिया। जिस प्रकार भस्मी

भाव है उसी प्रकार देह भाव है। भस्मी भाव मेरी समर्थ है और देह भाव मेरी असमर्थता है।

एक भस्मी भाव (भाव सम) शिव की प्रतिनिधि है।
एक देह भाव (सम भाव) मेरे पूर्ण जीवन का प्रतिनिधि है।

इस एक देह भाव का समर्पण बहुत बड़ा समर्पण है, जो किसी के हाथ में नहीं है। मै। परमात्मा अंश अपरिवर्तनीय हूँ और देह पूर्णतः हर पल परिवर्तनीय है। देह का बदलना **'सद्'** है। बदलना उसका भाव है, उसका स्वभाव है। भावों की परिपुष्टि को स्वभाव कहते हैं। स्वभाव बदला नहीं जा सकता। बदलने का स्वभाव स्वयं में बदला नहीं जा सकता। अतः बदलने का स्वभाव अपरिवर्तनीय है। बदला नहीं जा सकता यह उस बदलने के स्वभाव का सद् है, क्योंकि अपरिवर्तनीय है। बदलन असद् है, **'बदली'** के समान बदलती रहती है। प्रत्येक असद् में सद् छिपा है। आच्छादित सद् को ही असद् कहते हैं। क्योंकि असद् का भी सद् है, तो वहाँ से सद् की अनुभूति सरलता से की जा सकती है।

देह का सद् है, कि परिवर्तनशील है और जो देह परिवर्तनशील नहीं है वह विदेह है। जीवात्मा अपरिवर्तनीय है। परिवर्तित न होना जीवात्मा का सद् है। देह भाव ही देहाभास देहाधिपत्य, देहाध्यास होते-होते देहधारणा बन जाता है। देह धारणा का कारण देहभाव है। देहाध्यास जाने पर भी देहाभास रहता है, जो मुझे पुनः जन्मों-जन्मान्तरों में ले जाता है और देहाधिपत्य, देहाध्यास और देहधारणा से मैं मुक्त नहीं हो पाता। यह देह भाव मेरा (जीवात्मा का) स्वभाव बन गया। मैं ईश्वरीय मानस स्वयं में विरक्त एवं अभावमय आनन्द का स्रोत हूँ। इसमें जब देहभाव (समभाव) उभरा वह मेरी मानसिकता बन गई। जिसने मुझे जीव सृष्टि में उतार दिया। देहभाव और देहाभास की वजह से मैं और देह दोनों का यथार्थ आच्छादित हो गया। देहाभास का उन्मूलन भस्माभास से होगा।

देह भाव स्वयं में समभाव है, लेकिन इसने मुझे भसम रखा। जब इस सम देह भाव का समर्पण होगा, तो मैं अपनी भस्मी भाव से अवधारित हो

जाऊँगा। भस्मी भाव भी देह भाव के समान **'सम'** है। समस्त असमों, विषमों, समों के सम, देह भाव ने मुझे असम अर्थ=असमर्थ ही रखा और सम भस्मी भाव मुझे सम अर्थ=समर्थ बना देगा। देहभाव के समर्पण का मूल श्रद्धा है इसके पूर्ण समर्पण के पाँच आयाम हैं। जब दो सेनाओं में लड़ाई होती है तो :—

पहला, आमने-सामने एक दूसरे में मारकाट की जाती है।

दूसरा, अपनी सुरक्षा इतनी बढ़ा देना, कि दूसरा देखकर भाग जाए।

तीसरा, ऐसी व्यूह रचना करना, कि विपक्ष सेना चारों ओर से घिर जाए।

चौथा, सेना को जो चाहिए (रसद आदि) उससे सर्म्पक टूट जाए।

पाँचवा, विपक्ष सेना में ऐसा भेद या भ्रान्ति डाल देना, कि वह परस्पर लड़कर समाप्त हो जाए।

सम देह भाव के समर्पण के लिए सद्‌गुरु उपर्युक्त पाँच बताता है। सद्‌गुरु शिष्य के स्वाभावानुसार स्वयं मार्ग चुनकर सद्‌शिष्य से समर्पण करवाता है। मात्र श्रद्धा एवं श्रद्धा मात्र अपेक्षित है। वह विभिन्न शिष्यों के भिन्न-भिन्न स्वभावानुसार अलग-अलग तरीके, विधियाँ अपनाता है। सद्‌गुरु के विषय में कोई टीका-टिप्पणी करना घातक है क्योंकि सद्‌गुरु स्वयं में अपरिवर्तनीय स्वभाव का ही रूपान्तरण करता है। सद्‌गुरु स्वयं में दर्शन (दरश+न) है।

जो दिखाई न दे, अदृश्य हो वह दर्शन है। जब दिल, दिमाग, रूह, समस्त शक्तियाँ, प्रतिभाएँ, सामर्थ्य, बल यह स्वीकार कर ले, कि "हे प्रभु ! मैं आपका दर्शन नहीं कर सकता।" वही प्रभु-दर्शन है। **दरश+न=दर्शन।** यही तुच्छ, अति सीमित एवं संकुचित बल, बुद्धि, विद्या, समर्थ एवं शक्ति का सदुपयोग है। कोटि-कोटि साकार महाब्रह्माण्डों की सम्पूर्ण माया की प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप मानव-देह ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट, परम रहस्यमयी, विशिष्टतम् एवं चमत्कारिक संरचना है। सच्चिदानंद द्वारा रचित यह देह भी सद् है। **'सद्'** की शक्ति असीम व अपार है। मानव-देह में प्रभु ने

हमें **'सद्'** की अनुभूति की क्षमता दी है। ईश्वर **'सद्-चेतन-आनन्द'** है, जो सद् है वह चेतन व आनन्द भी है, जो चेतन है वह सद् व आन्नद भी है और जो आनन्द है वह सद् व चेतन भी है ही। ये तीनों परस्पर गुथे-मुथे हैं। मानव-देह रूपी साधन का **'सद्'** अधिगृहीत करना आवश्यक है। इस देह का सबसे महत्त्वपूर्ण सद् है, कि जो (देह), जब (समय), जहाँ (स्थान) और जैसी (स्थिति) भी थी, है और होगी, उसका एक ही अन्तान्त था, है और होगा। वह है—डेढ़ दो किलो भस्मी। यही देह का एकमात्र **'अर्थ'** है, जो हमेशा से **'सम'** यानि एक ही जैसा था, है और रहेगा।

देह जब (समय), जहाँ (स्थान) और जैसी (स्थिति) भी थी, है और होगी, उसका सब कुछ पृथक्-पृथक् था, है और होगा। लेकिन इन सब देह व देहों में समान्य क्या है? ऐसा क्या है, जो देह व देहों के बदलने के साथ नहीं बदला। अध्यात्म में प्रविष्टि के लिए इसका ज्ञान आवश्यक है। समरसता एक तो **'मैं'** की है और दूसरे देह-भाव की है। साकार देह सतत् परिवर्तनशील है, लेकिन देह-भाव जो निराकार है वह एक ही था, है और होगा। मैं जो चार वर्ष का बालक था, जो पच्चीस वर्ष का युवक हूँ या अस्सी वर्ष का बूढ़ा हूँगा, यदि होऊँगा तो; इनमें **'मैं'** एक ही थी, एक ही है और एक ही होगी और **देह-भाव** कि 'मैं देह हूँ' वह भी एक ही है। देह भाव निराकार है और देहें साकार हैं। अर्थात् समस्त भिन्न-भिन्न साकार का निराकार एक है। इस देह-भाव के कारण यद्यपि **'मैं'** (जीव) ने देह रूप में अपना स्वयं का जन्म होते नहीं देखा, लेकिन मेरी मान्यता हो गई, कि मैं पैदा हुआ था, मैं मरूँगा। पैदा होने वाली देह और मरने वाली देह, एक नहीं हो सकती; लेकिन मैं एक ही रहती है।

देह व देह पर आधारित जगत में जितने बन्धन हैं, वे इस देह भाव के कारण हैं, कि 'मैं देह हूँ' और इसी के कारण **'मैं'** (जीवात्मा) मायातीत होते हुए भी जीव बनकर मायाजाल में फंस गया। मैं और देह-भाव के अतिरिक्त एक सम अर्थ और है, वह है—**'भस्मी'।** भस्मी देह का मात्र वह अर्थ है, जहाँ सम्पूर्ण मायिक प्रपंच समाप्त हो जाता है। हमने देह का अर्थ, अर्थोपार्जन

मान लिया। **'अर्थ'** शब्द दो तथ्यों का द्योतक है—एक धन या पैसा और दूसरा, मलतब या Meaning. देहार्थ (देह के लिए) देह द्वारा अर्थोपार्जन मानव देह का अर्थ नहीं है। हमने न केवल देह का अर्थ ठीक नहीं समझा, बल्कि अन्य अर्थ (अर्थोपार्जन) लेकर अर्थ का अनर्थ कर दिया। **मैं अर्थ (धन) को अर्जित करता और व्यय करता हुआ व्यर्थ ही रहा। 'मैं' अर्थ रहित अर्थात् निरर्थ हो गया।** अन्य अर्थ लेने से अनर्थ होता रहा, क्योंकि 'मैं देह हूँ'ऽकहते ही **'मैं'** जीवात्मा से जीव-कोटि में आ गया।

मैं देह हूँ' में देह, एक भाव है, जो सब देहों में एक जैसा होता है। असंख्य देहों में देह-भाव Common है और देह-भाव अवचेतना में है। 'मैं देह हूँ' यह अनर्थ (अन्य अर्थ) है। शब्दों का सही अर्थ लेने के लिए हमें भावार्थ लेना होगा। नौकरी, व्यापार अथवा किसी भी कृत्य का अर्थ (मतलब) वह धन है, जिसे हम जब पाते हैं तो देहार्थ (देह के लिए) उपयोग में लाते हैं। होश सम्भालते ही हम मानव अज्ञानवश मात्र देह अथवा देहों के लिए कुछ न कुछ करते-करवाते रहते हैं। जो कुछ करते-करवाते हैं, उसका अर्थ मात्र देहार्थ अर्थोपार्जन होता है। कोई अध्यापक बनकर, कोई व्यापारी बनकर, कोई गायक बनकर, कोई वकील, डॉक्टर, चाटर्ड एकाऊँटैन्ट या कुछ भी बनकर जो कुछ कर-करवा रहा है उसका अर्थ अर्थोपार्जन अथवा धन का अर्जन है। यह अर्थ या धन उस कृत्य से परे होता है। लेकिन हम कोई भी कृत्य उसके लिए ही करते हैं। यही उस कृत्य का अर्थ होता है।

सारांश में हमारे लिए खाने-पीने, वस्त्र, आभूषण, मनोरंजन, सुख-सुविधाओं, आराम, जीवन-स्तर, प्रतिष्ठा, नाम-यश, घूमने-फिरने आदि के लिए अर्थोपार्जन मानव-देह व जीवन का अर्थ (लक्ष्य) होता है। देहार्थ, ये अर्थ समय, स्थान, परिस्थिति अवस्था के अनुसार बदलते रहते हैं। कारोबार, कार्य की गुणवत्ता, तद्नुसार उपलब्ध अर्थ की मात्रा, कृत्य, कृत्यों का अर्थ, उसके एवज़ में प्राप्त **अर्थ का अर्थ** बदलता रहता है। पहले पैसा (अर्थ) मकान बनाने के लिए चाहिए था, फिर उस मकान की सज्जा के लिए चाहिए, फिर बच्चों के विवाह या उनके बच्चों के लिए चाहिए, कभी

घूमने-फिरने के लिए चाहिए। इस प्रकार अर्थ एवं अर्थ का अर्थ बदलता रहता है। अर्थ का अर्थ, अर्थ का कारण और अर्थ की मात्रा आदि सतत् बदलते रहते हैं। हमारी नौकरी, व्यापार या किसी कृत्य का हमारे लिए अलग-अलग समय पर अलग-अलग अर्थ होता है। लेकिन ये सब अर्थ 'देहार्थ' ही हैं।

देह के दौरान अर्थ अनेक हैं और वे अर्थ देह व देहों के लिए (देहार्थ) समय-समय पर बदलते रहते हैं। देहार्थ पढ़ाई-लिखाई की, नौकरी या व्यापार किया, फिर जो अर्थ मिला उसे देह व देहों के लिए उपयोग किया। इसमें सब एक दूसरे से भिन्न थे, भिन्न हैं और भिन्न ही रहेंगे। जिस देह के लिए और देह पर आधारित देहों के लिए हमें इतना कुछ चाहिए, वह देह काहे के लिए है? हमारे पास कोई गाड़ी हो और हम उस गाड़ी को ही सजाते सँवारते रहें, परन्तु गाड़ी काहे के लिए है, यह तो सोचें ! यहाँ पर पशु-पक्षियों और मानव में भिन्नता आ जाती है। पशु-पक्षी यह सोच ही नहीं सकते। पैदा होना, खाना-पीना, बच्चे पैदा करना, सुख भोगना और मरना आदि मूल आवश्यकताएँ पशु-पक्षियों की प्रकृति पूरी करती हैं। उन्हें दो-चार घोसलों या घरों की आवश्यकता नहीं होती। हम लोगों को तो बहुत कुछ चाहिए।

देह का अर्थ प्रभु ने होश सम्भालते ही हम मानवों को दिखा दिया। **''तू जो, जब, जहाँ और जैसा भी होगा, उस देह का अन्त और अन्तान्त एक ही होगा।''** अतः देह जो, जब, जहाँ, जैसी भी है, उसका अर्थ भस्मी ही है। कोई बीस वर्ष का मरे, उसकी देह का अर्थ एक ही भस्मी है। कोई 90 वर्ष का और बहुत कुछ धन-सम्पत्ति व परिवार छोड़ कर मरे, उसकी देह का अर्थ भी वही भस्मी है। यह भस्मी एक ही है और एक ही जैसी है। देह का अर्थ भस्मी एक और उस एक भस्मी का कारण एक देह। किसी छत्रपति सम्राट और भिखारी दोनों की देह का अर्थ एक ही है। नौकर, मालिक, जवान, बूढ़ा, बाप, बेटा, पति, पत्नी, मित्र, शत्रु, किसी भी देश के हों, सबकी भस्मी एक ही और एक जैसी ही होती है। किसी नौकरी, व्यापार अथवा किसी भी कृत्य में

हम उसका outcome देखकर कार्यरत होते हैं। मानव होते हुए हमने देह का outcome देखते हुए भी नहीं देखा।

जिस **'देहार्थ'** मैं आजीवन संघर्षरत रहता हूँ, उसका अर्थ भस्मी ही था, है और होगा। देह होगी तो भस्मी होगी; लेकिन देह से परे होगी। विभिन्न देह व देहें समय, स्थान, स्थिति के अनुसार भिन्न-भिन्न थीं, हैं और होंगी। लेकिन इन **विषम** देह व देहों का अर्थ **सम** था, है और होगा। देह का अर्थ विषम परिस्थितियों, विषमताओं, अलगावों, विभिन्नताओं में **'सम'** है। सम+अर्थ=**समर्थ**, मैं अज्ञानवश देह में विभिन्न अर्थों जनबल, धनबल, छलबल, शारीरिक बल, बौद्धिक बल को अपनी समर्थ समझता हूँ। ये अर्थ तो आज हैं, कल नहीं हो सकते क्योंकि देह सतत् परिवर्तनशील है। प्रभु ने मुझे देह का **'अर्थ'** सम दिया है। जो, जब, जहाँ, जैसी है, उसका अन्तान्त **भस्मी** ही है। यह अर्थ सबका **'सम'** है, एक ही देह की विभिन्न स्थितियों में सम है और देह पर आधारित देहों का भी सम है। यह सम अर्थ जानते हुए भी मैं समर्थ क्यों नहीं हूँ ? मैं समर्थ इसलिए नहीं हूँ, क्योंकि मैंने इस सम अर्थ को प्रत्यक्ष देखते और जानते हुए भी उपेक्षित किया और माना नहीं तथा इसका अधिग्रहण नहीं किया। जैसेकि मैं नौकरी, व्यापार आदि बहुत कुछ करूँ, लेकिन धन (अर्थ) न पाऊँ, उसे उपेक्षित करूँ, तो वे कृत्य व्यर्थ ही तो होंगे। इसी प्रकार देह का अर्थ (भस्मी) मेरे समक्ष प्रत्यक्ष है, लेकिन मैंने न केवल उसके अधिग्रहण का प्रयत्न नहीं किया और उसे प्राप्त करने की इच्छा नहीं रखी, बल्कि उसे उपेक्षित किया। मैं यह जान लूँ और मान लूँ। जानने और मानने के बाद सद्‌गुरु के चरणों में इसका नित्याध्यासन करूँ। वह मेरा समर्थ और देह-रूप में मेरी कमाई (अर्थ) है। भस्मी, शिव की शक्ति वैराग है। वह मेरी शक्ति का स्रोत है, जिसे मैंने उपेक्षित किया, इसलिए मैं **'समर्थ'** नहीं रहा। सद्‌गुरु सेवा, पुरुषार्थ कर्म इस सम अर्थ (भस्मी) के अधिग्रहण के लिए हैं। महापुरुष, पीर-पैगम्बर जन्मजात **'समर्थ'** होते हैं। ***''समरथ को नहीं दोष गुसाईं''*** वे दैवीय प्रारब्ध-मुक्त होते हैं।

देहान्त अन्त में बनने वाली भस्मी को मैं कैसे अधिगृहीत कर सकता

हूँ। देह का यह अर्थ तब मेरे लिए व्यर्थ होगा। क्योंकि तब मैं उसके साथ **'मैं'** नहीं लगा सकता, कि मैं भस्मी हूँ। भविष्य को पकड़ने का मेरा स्वभाव है, तो मैं अपनी देह के इस निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य की अवधारणा कर सकता हूँ। मैं उसे सद्गुरु-कृपा से आत्मसात् करूँ और इसके लिए प्रार्थना करूँ। यदि मैं उसे जीते जी आत्मसात् कर लूँ, तो देह का वह सम अर्थ मेरी **'समर्थ'** बन जाएगा। **'मैं' सम है, देह भाव समरस है और भस्मी भाव समर्थ है। 'मैं'** भी भस्मी की तरह देहातीत है, लेकिन अकेली **'मैं'** मेरी समर्थ नहीं है, क्योंकि जो, जब, जहाँ, जैसी देह होगी, उसके साथ **'मैं'** लगी तो भिन्नताएँ प्रकट हो जाएँगी। सद्गुरु कहता है, कि ''तेरी **'मैं'** देह की स्थितियों के अनुसार तुझे ही स्वयं से ही भिन्न-भिन्न कर देगी। तेरा देह के साथ **'मैं'** लगाना, कि 'मैं देह हूँ', यह अनर्थ हो गया है, क्योंकि अर्थ ही अन्य हो गया। 'मैं भस्मी हूँ' यह तेरी समर्थ है। भस्मी भाव के साथ **'मैं'** लगते ही और मैं और भस्मी मिलते ही तेरी **'समर्थ'** बन जाएगी।''

सम अर्थ यानि समर्थ वह है, जो मेरे पास हर समय, हर स्थान और हर स्थिति में रहे। यह समर्थ मेरे पास है ही। सद्गुरु-कृपा से मैं इसका अधिग्रहण कर सकता हूँ। इस समर्थ का वर्गीकरण **'बल'** है। इस बल को मैं जिस प्रकार उपयोग या सदुपयोग करता हूँ, उसे **'शक्ति'** कहते हैं। बुद्धि-बल, विवेक-बल, जन-बल, धन-बल, छल-बल, बाहू-बल अपने पद या प्रतिष्ठा का बल, डिग्रियों का बल, लेखनी का बल आदि-आदि। बल-प्रदर्शन ही शक्ति-प्रदर्शन है। जैसे धन को हम वर्गीकृत करते हैं, कि इतना मनोरंजन के लिए, इतना घर-परिवार के लिए, इतना दान-पुण्य के लिए, उसी प्रकार हमारी तमाम समर्थ विभिन्न बलों में बंटी हुई होती है। इस बल का जब प्रयोग किया जाता है, वह बल ही प्रयुक्त होकर शक्ति बन जाता है। वह क्या है, जो मुझमें समान रूप से प्रस्तृत या प्रसरित है? वह है—मेरी **'भस्मी'** और यही मेरी समर्थ है। किसी ने दरवाजा खटखटाया। भीतर से आवाज़ आई, कि कौन है ? कि मैं हूँ। इसका अर्थ है, कि कोई मानव-देह है और वह उठी हुई (Conscious) है। सोया व्यक्ति 'मैं हूँ' नहीं

कह सकता क्योंकि वह (Conscious) नहीं है। इसी प्रकार मूर्च्छित, विस्मृत और मृतक देह भी 'मैं हूँ' नहीं कह सकती।

जब किसी ने बिना नाम बताए 'मैं हूँ' उत्तर दिया, तो ज्ञात हुआ कि कोई उठी हुई मानव-देह है। गधा, घोड़ आदि प्राणी उठे हुए भी **'मैं'** नहीं लगा सकते। 'मैं गिरधारी लाल हूँ' स्वयं को देह के नाम-रूप से पहचान रहा है, वो मात्र उठा हुआ है। वह मानव-देह है और (Conscious) है। मैं और देह दोनों अवचेतन है। प्रारब्धवश, कर्मवश, कालवश वशीकृत और सम्मोहित है। यदि उत्तर यह मिले **'मैं'** जानना चाहता हूँ, कि मैं कौन हूँ, तो पता चलता है, कि मानव-देह है और (Conscious) है और चेतना की खोज में है। वह स्वयं को **'मैं'** कह रहा है लेकिन देह के नाम-रूप से स्वयं को नहीं पहचान रहा। अवचेतन देह जो चेतना की ओर अग्रसर है, स्वयं को जानना चाहता है। वह जागना चाहता है। तीसरा उत्तर है–मैं भस्मी हूँ। उसने देह की जगह स्वयं को भस्मी से पहचाना। इसका अर्थ है, कि कोई चेतन बोल रहा है, वह जाग्रत है। वह जाग्रत यथार्थ देह सहित आत्मतत्त्व को पहचान गया है, वह सद्‌गुरु के द्वार पर आया है और ईश्वरत्व की खोज में है।

अध्यात्म में प्रविष्टि के लिए आत्मविश्लेषण आवश्यक है। मुझे मानव-देह मिली है तो क्यों मिली है ? मैं नहीं जानता। इसे मैं न जान पाऊँ, तो मेरा दोष नहीं है, जनवा न चाहूँ, यह दोष है। जानबूझ कर जानने को उपेक्षित करूँ, यह अपराध है और इसके विपरीत आचरण करूँ, यह घोर अपराध है। इसकी घोर सज़ा भी मिलेगी। मैं अपनी उत्कृष्टतम बुद्धि से यह जान गया हूँ, कि मैं मानव-देह के बारे में कुछ नहीं जानता हूँ। मैं जानना चाहता हूँ, लेकिन नहीं जान पा रहा हूँ। मैने अपना दिल-दिमाग सब लगा कर देख लिया, लेकिन मैं कुछ भी इसके बारे में नहीं जान पा रहा हूँ। I am in question and I am out of all the questions. यह मेरी शालीनता है। यहाँ पर समस्त दैवीय शक्तियाँ आपके बारे में सतर्क और अनुकूल हो जाएँगी, कि कोई जानना चाहता है, लेकिन जान नहीं पा रहा है। जो जानने की चेष्टा करता है तो दैवीय शक्तियाँ उसकी सहायक हो जाती हैं। यह

दैवीय अधिनियम है। वहाँ पर सद्‌गुरु सिद्ध महापुरुष उसके दिशा निर्देशन के लिए प्रकट हो जाता है। अब सारा उत्तरदायित्व दैवीय शक्तियाँ अपने ऊपर ले लेती हैं। क्योंकि जीव की कोई भी चेष्टा जनवा नहीं सकती। जानना मात्र कृपा साध्य और कृपा साध्य मात्र है। फिर मुझे जनवाया जाएगा। कोई जप, तप, साधन वहाँ कुछ नहीं कर सकते। ईश्वर अति दयालु है इसलिए आप मात्र शरणागत हो जाइए। ईश्वर की शरण ही आपकी धारणा बन जाएगी। प्रारब्धवश, कर्मवश, कालवश होते हुए आप **'विवश'** हो जाएँ। मैं वशीकृत हूँ, मैं बाहर नहीं आ सकता। यह बेबसी और असमर्थता ही आपकी समर्थ बनेगी। किसी समर्थ की शरण में स्वयं में असमर्थ होकर ही जाया जा सकता है। हे प्रभु ! तुम समर्थ हो, मैं असमर्थ हूँ। मेरे सारे 'सम' भी असम हैं और असम तो हैं ही। तेरा सम ही वास्तव में सम है।

असमर्थ होने के लिए भी समर्थ चाहिए। वास्तव में असमर्थ होने के लिए जो समर्थ चाहिए, वही समर्थ है। अपनी समस्त तथाकथित समर्थ को असमर्थ होने के लिए झोंक देने के बाद जो प्राप्त होगा वह ईश्वरीय समर्थ है। "हे प्रभु ! आपकी कृपा से मैं जान गया हूँ, कि मेरे पास तुच्छ व अति-अति सीमित बल, बुद्धि, विद्या है। ये तीनों मुझे भटका रही हैं। हे प्रभु ! मैं जान गया हूँ, कि मैं कुछ नहीं जानता। अब तन-मन-धन तेरा हो और जीवन मेरा हो। मैं देखना चाहता हूँ, कि तुम कैसे चलाते हो। मुझे इस जीवन को चलाना नहीं आता। मुझे मात्र दुरुपयोग करना आता है। वही मैं करता रहा हूँ, इसलिए जब-जब मैंने कुछ किया-करवाया या करने-करवाने का प्रयास भी किया है, तो मैं फँसा हूँ। इसलिए मैं तुम्हारी रचाई सृष्टि का रसास्वादन नहीं कर पाया। तुम परम समर्थ हो, मुझे मेरी देह की भस्मी से आत्मसात् कर दो। यही मेरी समर्थ है।" रूह की गहराइयों से उठी इस आर्तनाद से समस्त दैवीय शक्तियों की कृपा प्रवाहित होने लगती है। इस सम अर्थ (समर्थ) का सौन्दर्य एवं गुणवत्ता यह है, कि यह कभी छूट नहीं सकता। यह समर्थ जन्मों-जन्मान्तरों तक चलती है। समर्थ को देह नहीं

छोड़ती, बल्कि समर्थ देह को छोड़ता है। उसकी देह का कार्य पूरा हो चुका होता है। वह स्वयं में दिगम्बर होता है। देह का बाना कभी खेलने के लिए धारण करता है, नहीं तो भस्मीमय ही रहता है।

हम सद्गुरु-कृपा से देह के सम अर्थ से जुड़ जाएँ यही योग है और यही देह व जगत का भोग है, रसास्वादन है, आनद है, आत्मानुभूति है। इसी समर्थ की जागृति होते ही **'जीव'** अपने आत्म तत्त्व की अनुभूति करने लगता है। देह के यथार्थ का बोध स्वतः होने लगता है। ईश्वरत्व का ज्ञान प्रकट होने लगता है। प्रारब्ध बन्धन, काल-बन्धन एवं कर्म-बन्धन से स्वतः छुटकारा मिलने लगता है। पुरुषार्थ का प्रथम सोपान **'अर्थ'** इसी सम अर्थ से जुड़ने की चेष्टा है और अति कृपा वश इसी सम अर्थ का अधिग्रहण ही पुरुषार्थ का दूसरा सोपान **'धर्म'** (विरक्ति) है। इस विरक्ति के बाद प्रभु की **'भक्ति'** पुरुषार्थ का तीसरा सोपान है और अन्ततः प्रभु द्वारा मिला **'प्रेम'** चौथा सोपान है, **'अनुराग'** (मोक्ष)।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(29, 30 सितम्बर एवं 3 अक्टूबर, 2009)

सुफल

'सुफल' एक आध्यात्मिक शब्द है, किसी भौतिक प्राप्ति का नाम सुफल नहीं है। अपनी देह, परिवार, धन-सम्पदा, डिग्रियाँ, नाम-यश, पद-प्रतिष्ठा सहित जो कुछ भी प्रभु कृपा से हमें प्राप्त हुआ है, उसका हम अनासक्त भाव से आनन्दपूर्वक रसास्वादन करें, यही सुफल है। आनन्दपूर्वक रसास्वादन तभी होगा, जब हमारी प्राप्तियाँ **'सर्व'** के लिए होंगी; क्योंकि कोई भी प्राप्ति बिना 'सर्व' के नहीं होती। हमारे छोटे से छोटे कर्म में हमारे **'सर्व'** का सहयोग, विरोध, अनुरोध, अवरोध, प्रतिरोध और गतिरोध आदि समाविष्ट रहता है। एक की स्वयं की **सफलता** यदि उसके सर्व की **असफलता** के कारण है, तो वह तथाकथित सफलता **सुफल** से वंचित है।

हम मानव जैसे ही होश सम्भालते हैं, तो अक्सर हमारी दौड़ सफल जीवन व्यतीत करने की ओर हो जाती है। जब कोई व्यक्ति दुर्लभ वस्तुएँ, पद, प्रतिष्ठा आदि प्राप्त कर लेता है, तो उसे जीवन में सफल कहा जाता है। हम असफलताओं की भरपाई करना चाहते हैं, सफल व्यक्तियों का अनुसरण करना चाहते हैं और असफल व्यक्तियों से दूर रहना चाहते हैं। सफलता क्या है और असफलता क्या है ? सफलता-असफलता का मापदण्ड क्या है ? यह हम न जानते हैं और न जानना चाहते हैं। अक्सर हम उन्हीं वस्तुओं को प्राप्त करना चाहते हैं, जिनके विषय में हमें कोई ज्ञान नहीं है। हमारी संतुष्टि, असंतुष्टि, तनाव, कष्ट, दुःख-सुख, ईर्ष्या, स्पर्धा, वैर-वैमनस्य, राग-द्वेष का कारण सफलता या असफलता है। संसार में धन-सम्पदा, डिग्रियाँ, नाम-यश, कीर्ति आदि प्राप्त करने के लिए हम अथक प्रयास करते हैं। उसके लिए छल,

कपट, जुगाड़ आदि भी करते हैं। भौतिक दृष्टि से जब हम कुछ प्राप्त कर लेते हैं, तो उसे सफलता कहते हैं। चाहे सरलता से प्राप्त करें या अत्यधिक परिश्रम से; चाहे शीघ्रातिशीघ्र प्राप्त करें अथवा देर से।

सफलता अथवा असफलता का मापदण्ड भौतिक प्राप्तियाँ अथवा खोना है। धन-सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक या राजनैतिक क्षेत्र में विकास या अवनति से हम सफलता या असफलता को नापते हैं। खोना और पाना जीवन का क्रम है। हम बचपन को खो कर जवानी को प्राप्त करते हैं, जवानी खोकर प्रौढ़ावस्था, प्रौढ़ावस्था को खोकर बुढ़ापा प्राप्त करते हैं। एक दिन को खोकर अगला दिन आता है। यह पाना-खोना जीवन में साथ-साथ चलता रहता है। जब भी हमें किसी भौतिक वस्तु की प्राप्ति होती है, तो उसके साथ हम कुछ खोते भी अवश्य हैं। **सुफलता** मन की वह अभावमयी आनन्दपूरित स्थिति है, जिसमें किसी भौतिक प्राप्ति अथवा खोने का कोई भाव नहीं होता। सफलता-असफलता भी मानसिक स्थितियाँ हैं। जहाँ तथाकथित सफलता होगी, वहाँ तथाकथित असफलता भी अवश्य होती है। जब हम किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए अत्यधिक लालायित होते हैं, वहाँ उतनी ही बड़ी वस्तु खोनी भी पड़ती है। किसी बड़े बंगले, उच्च पद, बड़े व्यापार, समाज में प्रतिष्ठा, धन-सम्पदा आदि की प्राप्ति के लिए अक्सर पारिवारिक सौहार्द्रता, अपनापन, शारीरिक स्वास्थ्य और यहाँ तक कि कभी-कभी अपनी मातृभूति तक को छोड़ना पड़ता है। ईमानदारी से आत्मविश्लेषण करके हम इस सद् को अनुभूतिगम्य कर सकते हैं।

'देह भाव' (मैं देह हूँ) हमारे आनन्दमय, स्वच्छ ईश्वरीय मानस को आच्छादित कर देता है। मन आकाश की तरह स्वयं में स्वच्छ और स्थिर है। आकाश आच्छादित नहीं होता, बल्कि सूर्य, चन्द्र आदि नक्षत्रों से अलंकृत होता है। मन रूपी आकाश स्वतः अलंकृत होता है और आनन्दित रहता है। वह बादलों से अस्थाई रूप से आच्छादित सा होता है। इसी प्रकार हमारा ईश्वरीय मन आनन्द का स्रोत है, जो स्वतः उल्लास, हर्ष से उन्मादित, मस्त

और अलंकृत रहता है, उसमें जीवभाव के बादल आ जाते हैं। मैं अमुक-अमुक नामधारी जीव हूँ, अन्य लोगों से पृथक् हूँ, मुझे आगे बढ़ना है। मैं कुछ खो चुका हूँ, मुझे जीवन में सफल होना है। मैं बूढ़ा और बेकार हो गया हूँ। इस प्रकार के भावों के बादलों से आनन्दमय ईश्वरीय मानस ढक जाता है और सुखी-दुःखी होने वाला मानवीय मन बन जाता है।

मूलतः मन आकाश की भाँति निर्मल, अलंकृत, स्वच्छ है और आनन्द का स्रोत है। आकाश में जब बदल छाते हैं अथवा आँधी, तूफान आते हैं, तो आकाश की निर्मल नीलिमा और सूर्य, चन्द्रमा और तारों आदि से अलंकृत स्वच्छता अस्थाई तौर पर आच्छादित हो जाती है। लेकिन हमारे मन में जीव भाव के बादल स्थाई तौर पर छाए ही रहते हैं। ये बादल भूत के शोकों तथा भविष्य की चिन्ताओं, योजनाओं, परियोजनाओं, ख्यालों, निरर्थक कल्पनाओं, मान्यताओं, विचारों, आकांक्षाओं, चाहतों, महत्त्वाकांक्षाओं, हँसी, खुशी, ग़मी, ईर्ष्या, वैर, वैमनस्य, स्पर्धा, घृणा आदि-आदि के होते हैं। इन विविध बहुरंगी बादलों में से एक हटता है, तो दूसरा आ जाता है। हमारा मन अपने मूल ईश्वरीय आनन्दमय एवं अभावमय स्वरूप में कभी नहीं आ पाता। कभी-कभी तो ऐसा आच्छादित हो जाता है, कि मानो आनन्दमय मन रूपी आकाश है ही नहीं।

एक बादल वर्षा और हर्ष के होते हैं, जो फसलों के सहायक और आनन्ददायक होते हैं। दूसरे असमय, बेमौसम के असामयिक बादल होते हैं, जो बाढ़ लाते हैं और फसलों व जनजीवन को तबाह कर देते हैं। मानव-मन में कर्ताभाव के बादल होते हैं, जो कर्म-बन्धन का हेतु बनते हैं। उसमें सफलता भी असफलता ही होती है और असफलता तो असफलता है ही। दूसरे, प्रभु ने जो हमसे करवाना है, वह उन भावों के बादल हैं। वहाँ सुफल ही सुफल है और असफलता और सफलता दोनों बराबर हैं। उन कार्यों के हम निमित्त भी नहीं बनते और वे भाव मानस का तनिक आच्छादन करते हुए अलंकरण ही करते हैं। स्वच्छ एवं अलंकृत मन स्वतः आनन्दमय और सहज सुखराशि होता है।

सद्गुरु के निर्देशन में जब हम मस्ती में भजन, कीर्तन, मन्त्रोच्चारण, यज्ञ-हवन आदि करते हैं, तो जीवभाव के बादल छितर जाते हैं और आनन्दमय

ईश्वरीय निर्मल मन रूपी आकाश प्रकट हो जाता है। जितने भी पुरुषार्थ कर्म हैं, उनका एक ही लक्ष्य होता है, कि हमारा मानवीय मन ईश्वरीय मन से जुड़ जाए। सद् से निःसृत प्रवचन, आशीर्वाद, वरदान, श्राप, क्रोध, डाँट-फटकार, शब्द, मौन अथवा कुछ भी सुफलता के लिए होता है। जो हमारे स्व सहित सर्व को गाइड करती है, वह हमारी स्थिर सरकार एक ही ईश्वर है। मन व बुद्धि को खाली छोड़ देंगे, तो एक-एक विचार, आचार-व्यवहार, कुविचार आता रहेगा, जो हमारे मन को प्रदूषित कर देगा और हमारे तन्त्रिका-तन्त्र को असन्तुलित कर देगा। ***'जाको नाम त्रय ताप निवारण'*** भगवान का नाम तीनों प्रकार के तापों का निवारण कर देता है।

कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड की सम्पूर्ण माया (जलचर, थलचर, नभचर, आकाश के ग्रह-नक्षत्र, उल्कापिण्ड, समुद्र के रत्न, मानव और उसकी विभिन्न जातियाँ, प्रजातियाँ, वनस्पतियाँ, पेड़-पौधे आदि) अनेक रूपों-अरूपों में दृश्यमान हैं, लेकिन इनका कारण **एक** ही है और वह अदृश्य है। दृश्यमान साकार-निराकार अदृश्य वास्तविकता के बिना निरर्थक ही नहीं, अनर्थक हो जाता है। हमारी अपनी देह सहित समस्त दृश्यमान साकार जगत हमें इसलिए मिला है, कि इसमें से हम इसकी अदृश्य सार्थकता को ग्रहण कर लें।

एक पेड़ में ही कितनी विभिन्नताएँ हैं, पत्ते, तना, फल, फूल, शाखाएँ आदि। प्रत्येक की अपनी-अपनी विभिन्न विशेषताएँ हैं। पत्तों में कुछ सूखी पत्तियाँ हैं, कुछ छोटी, कुछ बड़ी हैं। एक पेड़ में यदि दस लाख पत्तियाँ हैं, तो सब रंग, रूप, आकार की दृष्टि से भिन्न-भिन्न होंगी। उनमें जो सूर्यमुखी हैं, उनका रंग-रूप अलग होता है, जो सूर्य-विमुखी हैं, उनका रंग-रूप बिल्कुल अलग होता है। इतनी असंख्य विभिन्नताओं के होते हुए भी पेड़ का मूल या जड़ एक ही है, जो अदृश्य है। इसी प्रकार किसी भवन में अनेक विभिन्नताएँ होती हैं। बैठक, किचन, बैडरूम आदि, लेकिन नींव एक ही होती है। पेड़ और भवन की हैसियत, शक्ति, स्थिरता, अस्तित्व, सुदृढ़ता उसकी मूल और नींव में है, जो अदृश्य है।

हम मानवों का समस्त आकर्षण **'आकार'** की ओर रहता है। हमारी एषणाएँ चाहतें, उपलब्धियाँ, सुख-दुःख, प्रार्थनाएँ, मिलन-विछोह, जुनून, दीवानगी, सफलता, असफलता का मापदण्ड सब **'आकार'** के लिए है। ''हे प्रभु ! मेरा यह हो जाए, हे प्रभु ! मुझे अमुक वस्तु मिल जाए अथवा अमुक से पीछा छूट जाए।'' आकार की इस दौड़ में हम अधिकार खो देते हैं। आकार के प्रति आसक्तिवश सफलता और असफलता के द्वन्द में हम जीवन के **'सुफल'** से वंचित हो जाते हैं। समस्त आकारों का अधिकार एक है और वह सुफलता है। **'सुफलता'** सौन्दर्यमयी, शक्तिमयी, ज्ञानमयी, विरक्तिमयी, ऐश्वर्यमयी व आनन्दमयी मानसिक स्थिति है। जीवन में असफलताओं ही नहीं सफलताओं के साथ भी कभी-कभी अज्ञात भय, आशंकाएँ, चिन्ताएँ आदि लगी रहती हैं। भौतिक रूप से दुर्लभतम वस्तु पाकर भी यदि मानसिक उद्वेग, बेचैनी, भय, तनाव हो जाए, तो घोर असफलता है और प्रिय से प्रिय वस्तु खोकर भी मानस के आनन्द की वृद्धि तथा सद् के लिए उत्तरोत्तर बढ़ती जिज्ञासा परम सुफलता है। **'सुफलता'** का मापदण्ड निराकार है, जो समस्त आकारों के पाने अथवा खोने का एक ही है।

सुफलता के सम्मुख सफलता-असफलता की कोई भी विधा ठहर ही नहीं सकती। जिसने **'सुफल'** पा लिया, उसका हर आकार पर स्थाई अधिकार हो जाएगा। आकारगत सफलता या असफलता क्षणभंगुर है और **'सुफलता'** निराकार अधिकार है, जो स्थाई एवं शाश्वत् प्राप्ति है। आकार का प्राप्त होना अथवा खोना दोनों ही क्षण भंगुर हैं। आकार की वृद्धि या ह्रास दोनों अस्थाई हैं। सुफलता का आकार से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। **महाब्रह्माण्ड के समस्त आकारों की प्राप्ति की सफलता, एक सुफलता के सम्मुख नगण्य है।** समस्त साधना इस **'सुफल'** के लिए की जानी चाहिए। जहाँ **'सफलता'** और **'असफलता'** अपनी **'फलता'** खो दें, तो वह **'सुफलता'** हो जाती है।

परीक्षा में 85 प्रतिशत अंक से पास होने वाला दुःखी हो सकता है और 35 प्रतिशत अंक लेने वाला आनन्दित हो सकता है, कि कम से कम पास तो

हो गया। **'सुफल'** ही वास्तव में **'कर्मफल'** है। हमारी प्राप्तियाँ साकार होती हैं, लेकिन प्राप्तियों के बाद की मानसिकता निराकार है। यदि कुछ भी प्राप्त करने के बाद मानसिक स्थिति विश्रृंखल एवं तनावपूर्ण हो गई, तो वह कर्मफल, **'सुफल'** नहीं कहा जा सकता। वह **'कुफल', 'दुष्फल', 'निष्फल'** कुछ भी हो सकता है। जब **'मैं'** साकार देह रूप में कर्ता बनता हूँ, तो मेरे द्वारा किए जा रहे कर्म का फल भी मेरे लिए साकार ही होगा। उसमें पाना-खोना दोनों मेरे लिए तनाव का हेतु ही रहते हैं। उसकी प्राप्ति मेरे लिए आनन्दमय नहीं हो सकती, क्योंकि कर्ता भाव के अहं के कारण मानस में हुई विपरीत प्रतिक्रिया से साकार जगत में कोई विरोधी स्वरूप उस प्राप्ति के आकर्षण को समाप्त कर देगा। इस प्रकार हमारी प्राप्तियाँ ही हमें दुःखी और तनावित रखती हैं।

एक है जीवन का **'रसास्वादन'** और दूसरा है जीवन का **'फँसास्वादन'।** जीवन का रसास्वादन **'सुफलता'** में सन्निहित है। जहाँ प्राप्ति और खोने का महात्म्य न हो। कर्ता भाव से प्राप्त की गईं डिग्रियाँ ही हमें De grade कर देती हैं। **'मैं'** निराकार और अदृश्य है। इसी प्रकार जीवन में **'सुफल'** अदृश्य एवं निराकार मानसिक आनन्दमय अभावमय स्थिति है। मानस आनन्दमय सुफलतापूर्ण तभी होगा, जब हममें रंच मात्र भी कर्ताभाव नहीं होगा। हमारे मानस में जब किसी आकार का आभास न रहे, तभी इस आनन्दमय स्थिति की अनुभूति सम्भव है।

सुफलता का मापदण्ड सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के एक नायक ईश्वर की सान्निध्यता या झलक है। जब सुफलता प्राप्त हो जाती है, तो समस्त आकार हमारी शरण में आ जाते हैं। समस्त आकार **'सुफलता'** के लिए लालायित रहते हैं। आकार नश्वर है, इसलिए सफलता, असफलता भी नश्वर है। सुफलता मिलने पर हमारी दौड़ कभी आकारों की ओर नहीं होगी। सुफलता में निराकार का अधिकार है। जब निराकार **'सुफल'** होगा, तो हर साकार प्रकाट्य सफल ही होगा। यदि सफलता अथवा असफलता का आधार (नींव या जड़) **'सुफलता'** है, तो वहाँ आनन्द ही आनन्द होता है।

सुफलता ईश्वर (सद्‌गुरु) की कृपा नहीं, उसकी कृपा का फल है।

देहाभास से मुक्त आनन्दमय एवं अभावमय मानसिक स्थिति किसी साकार सृष्टि को देखने के बाद है या नहीं, यही आत्मविश्लेषण मानव-देह में मानव-जीवन जीने का लक्षण है। कभी **'मैं'** किसी दिन बहुत खुश होता हूँ, किसी दिन बहुत दुःखी। खुशी-ग़म, राग-द्वेष, उल्लास-अवसाद आदि निराकार मानस के भाव हैं। इस प्रकार निराकार में भी **'अनेकता'** रहती है। जब मेरा मानस विरक्ति युक्त और आसक्ति मुक्त होगा, तब मैं हर साकार प्रकटीकरण का रसास्वादन करते हुए तथा उसके बाद भी आनन्दित ही रहूँगा। यह निराकार पर अधिकार है। जीवन के समस्त भोग तब मेरे लिए होते हैं। ***'वीरेण भोग्या वसुन्धरा'*** जो विरक्त है, वही वीर है। जिसने देह के रहते देहातीत स्थिति में Jump ले लिया, वही विरक्त हो सकता है।

देह को शास्त्र ने नित नूतन कहा है। यह देह नित्य मेरा Newly bud स्वरूप होती है। देह, जगत सहित प्रकट होती है। देह सहित जगत में Common factor **'मैं'** है, क्योंकि मेरी एक देह के साथ मैं लगने पर ही अनेकानेक देहें **'मैं'** लगाती हैं। हम सब का Commom factor **'मैं'** और **'भस्मी'** है। **'मैं'** सब देहों की **'एक'** है और भस्मी भी सब देहों की **'एक'** ही होती है। विशेष देह की **'मैं'** देह विशेष की नहीं है; इसी प्रकार विशेष देह की भस्मी देह विशेष की नहीं है। गुणात्मक एवं उत्सवमय जीवन के लिए देह के रहते देह के इन दोनों देहातीत तत्त्वों का संगम आवश्यक है। सबसे महत्त्वपूर्ण अन्तिम परिणाम होता है। देह के रूप में मेरा अन्ततः जो होना ही है; उस भस्मी की अवधारणा की सिद्धि मुझ जीवात्मा को मेरी देह सहित जगत की सृष्टि में चौरासी लाख मायिक विधाओं या योनियों का दृष्टा बना देती है। इस तथ्य की सिद्धि होने पर निराकार की सिद्धि हो जाती है। निराकार की सिद्धि से देह के साथ तद्‌रूपता हट जाएगी, जिसके कारण हम वस्तुओं की प्राप्ति को सफलता और खोने को असफलता कहते हैं। जब देह के साथ तद्‌रूपता हट जाएगी, तो मुझे **'सुफलता'** मिल जाएगी। एक ही दिव्य मार्ग है, हमें कुछ छोड़ना या पाना नहीं, केवल एक मानसिक धारणा

से बाहर आना है, कि 'मैं देह हूँ और देह मेरी है'।

सुफलता का स्वरूप बहुत विस्तृत और स्थाई है। हर्ष, उल्लास, अभय, सद् कर्मों, सेवा, यज्ञ-हवन और सत्संग में रुचि, जाप करना एवं जाप में रुचि, श्रद्धा, समर्पण, विश्वास, श्रवण, मनन, चिन्तन, नित्याध्यासन, उत्साह, निश्चिन्तता, भौतिक कार्यों को सीमित करके अधिक से अधिक आध्यात्मिक क्षेत्र में प्रवृत्ति, सद्गुरु के निरन्तर सान्निध्य की अभिलाषा, इष्ट के दरबार में बैठने की इच्छा आदि सुफलताओं के विभिन्न स्वरूप हैं। सुफलता अदृश्य है और सफलता व असफलता दिखाई देती हैं। भौतिक प्राप्तियों का पाना लाभ या सफलता है और उनका खोना हानि या असफलता कही जाती है। सुफलता **'हित'** है जो दिखाई नहीं देता, बल्कि अपनी मानसिक स्थिति से अनुभव होता है। कोई भौतिक वस्तु खोने के बाद यदि मन हल्का महसूस हो, सद्गुरु के सामीप्य व श्रवण के लिए अधिक समय मिले, उसके चरणों में प्रीति बढ़े, श्रद्धा व समर्पण बढ़ जाए, प्रातः जल्दी उठकर देव दरबार में इष्ट के समीप बैठने में प्रीति हो, इष्ट व सद्गुरु में विश्वास और दृढ़ हो जाए, तो उस वस्तु का खोना परम हितकारी और सुफलता का द्योतक है।

अज्ञात मस्ती, हर्ष-उल्लास, स्वयं में मानसिक शारीरिक आरोग्यता एवं सर्व सम्पन्नता का भाव, ईर्ष्या, वैर, वैमनस्य, स्पर्धा आदि दुभावों से रहित सर्व हित का चिन्तन एवं हित कामना, सद्गुरु-सेवा, श्रवण, मनन, चिन्तन एवं नित्याध्यासन में रुचि आदि **'सुफलता'** के लक्षण हैं। ये ही सुफलता के प्रमाण एवं मापदण्ड हैं। हम सबकी वस्तुतः यही चाहत है, लेकिन सुफलता वह चाहत है, जो चाहने से नहीं मिलती, कृपा से मिलती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(14 से 31 मई 2008, 16 जून एवं 15 मार्च 2009)

अर्थ-मन्थन

प्रभु स्वयं में अदृश्य हैं और उनका सीधा प्रतिनिधि जीवात्मा भी अदृश्य है। जिस प्रकार जीवात्मा, ईश्वर का प्रतिनिधित्व करता है, उसी प्रकार एक मानव-देह ईश्वर की सम्पूर्ण निराकार व साकार दृश्यमान माया का प्रतिनिधित्व करती है। ईश्वर की अति विलक्षण, विशेष रहस्यमयी, परम चमत्कारिक तथा सर्वोत्कृष्ट सुकृति मानव-देह स्वयं में एक **'पद'** एवं अति दुर्लभ कैरियर है। इस पद का अनुपम **'अर्थ'** है। **'पद'** और **'अर्थ'** दोनों पृथक्-पृथक् हैं। मानव-देह के इस अर्थ में ही जीवात्मा के अपने पद का अर्थ छिपा है। जीवात्मा की देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में तद्‌रूपतावश देह और जीवात्मा दोनों का स्वरूप आच्छादित हो गया। जीवात्मा का आत्म तत्त्व एवं देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) आच्छादित होने से दो पृथक् ईश्वरीय विधाएँ जीव कोटि में एक सी हो गईं। जीव एक मानसिक भाव है और जीवात्मा स्वयं में परम पिता परमात्मा का विशुद्ध आनन्दमय मानस है, जिसका प्रकाट्य **'मैं'** शब्द में होता है।

ईश्वरीय मानस आनन्द का स्रोत है एवं देह से परे देहातीत है। देह पहले थी नहीं और अन्ततः रहेगी नहीं, लेकिन जीवात्मा शाश्वत् है। देह के साथ तद्‌रूपता जीवात्मा का जीव कोटि के भ्रम में एक मानसिक भाव है, जो उसे सदेह करते हुए सन्देह युक्त कर देता है। निःसन्देह होना उसके पद का अर्थ है। संसार में हमें किसी व्यक्ति पर सन्देह हो जाए, तो उसके प्रति हमारा सम्पूर्ण व्यवहार परिवर्तित हो जाता है। जब सन्देह या भ्रम दूर होता है, तो हमें ग्लानि के साथ पश्चात्ताप होता है। भ्रम या सन्देह वास्तव में एक

मानसिक विकृति है, जो मन की ही तरह दिखाई नहीं देती। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

मानव-देह स्वयं में ईश्वर प्रदत्त असमान्तर एवं परम विलक्षण कैरियर है और विशिष्टतम एवं अति दुर्लभ **'पद'** है। हम किसी को क्रोधवश व घृणापूर्वक दुत्कारना चाहते हैं, तो उसे कुत्ता, कुतिया, सूअर, उल्लू, उल्लू का पट्ठा, भेड़िया, गधा आदि-आदि संज्ञाओं से विभूषित करते हैं। अर्थात् हमारी दृष्टि में सम्बद्ध मानव देहधारी मानव-कोटि से पशु-कोटि में पतित हो जाता है। मानव देहधारी, पशु-कोटि में आ सकता है, लेकिन जलचर, नभचर, थलचर एवं पृथ्वी तथा हवा में रहने वाले कीड़े-मकोड़े, मच्छर आदि प्राणी मानव-कोटि में कभी नहीं आ सकते। क्योंकि मानव देहधारी प्राणी ही अपनी देह का **'अर्थ'** जानकर एवं मानकर सद्गुरु कृपा से अपने विशिष्टतम पद से सुशोभित हो सकता है।

जीवन-काल में हम बुद्धिजीवी जो कुछ भी करते-करवाते, पाते-खोते, बनते-बनाते हैं और जो कुछ भी हमारे द्वारा होता है, उसके पीछे हमारा कोई न कोई **'अर्थ'** अथवा मतलब (Meaning) अवश्य होता है। कोई नौकरी या व्यापार करने, बच्चों को विशिष्ट शिक्षा दिलाने, विवाह आदि करने-करवाने के पीछे हमारा सबका अपना-अपना पृथक् **'अर्थ'** होता है। कहीं जाने-आने, किसी से मिलने-बिछुड़ने, किसी से सम्बन्ध बनाने, तोड़ने, प्रेम अथवा घृणा करने का हमारा अपना **'अर्थ'** होता है। बहुत सी घटनाएँ एवं कृत्य हमारे बिना कुछ किए भी होते रहते हैं, उनका **'अर्थ'** हम अपनी मानसिकता के अनुसार निकालते हैं। जो कुछ हमारे लिए एवं हमारे साथ होता है; उसका **'अर्थ'** हम अपनी बुद्धि के अनुसार पृथक्-पृथक् निकालते हैं। यह **'अर्थ'** बहुत महत्त्वपूर्ण और मानव-जीवन का आधार है। इसके विषय में चिन्तन-मनन आवश्यक है।

जो कुछ भी हमने किया-करवाया उस सब किए-कराए का **'अर्थ'** उस समय पता चलता है, जब वह हो चुकता है। एक विशेष उद्देश्य व अर्थ को दृष्टि में रखकर हम किसी कार्य की योजना बनाकर करते-करवाते हैं। जब

वह कृत्य हो जाता है, तब उसका अर्थ वह नहीं होता; जिसे सोचकर प्रारम्भ में हम कार्यरत हुए थे। कार्य होने के बाद के **'अर्थ'** के दो आयाम होते हैं—एक तो सम्बद्ध लक्ष्य या अर्थ की उपलब्धि होना अथवा न होना तथा दूसरे, उस प्राप्ति या खोने के बाद की मानसिक स्थिति। कभी बहुत बड़ी प्राप्ति या लाभ से हम तनावित एवं विक्षिप्त हो जाते हैं और कभी कुछ खोकर अथवा हानि उठाकर भी निश्चिन्तता एवं विश्राम का अनुभव करते हैं। क्योंकि भौतिक अर्थ प्राप्ति के साथ मानसिक स्थिति भी जुड़ी रहती है। कर्म से पहले की वृत्ति, कर्म के दौरान की वृत्ति और कर्म हो जाने के बाद की वृत्तियों में एकरूपता अक्सर नहीं होती। साकार देह सहित जगत की किसी भी विधा की चाहत का भाव स्वयं में निराकार है और उसकी प्राप्ति या खोने के बाद का प्रभाव (भाव पर भाव) भी निराकार है। यह प्रभाव ही उस **'अर्थ'** का **'अर्थ'** है।

सद्गुरु कहता है, कि "Earning is burning your precious human life and salary is slavery." आजीवन नहीं जन्म-दर-जन्म धन कमाने से तुझे तृप्ति व सन्तुष्टि नहीं मिलेगी, क्योंकि **'कमाई'** हमेशा **'कम आई'** ही होती है। जिसके पास धन 'कम आता' है, वह कमाता है और क्योंकि कम आता है, इसलिए कमाता ही रहता है। धन कमाना का अर्थ धन **'कम आना'** ही है। कर्ता भाव में इस **कमाने** ने तुझे **कमीना** बना दिया। कमाना में से 'कम' हटाने के लिए तुझे अपनी मानव-देह का **'अर्थ'** जानना-मानना और अनुभूतिगम्य करना होगा। **'अर्थ'** बिना जाने तू जो कुछ भी करेगा वह निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ ही होगा। **'अर्थ'** जानने, मानने व अनुभव करने के बाद ही सार्थक जीवन प्रारम्भ होता है।''

मानव-देह में होश सम्भालने से होश गुम हो जाने तक हम मानव अक्सर सब कुछ देहार्थ (देह के लिए) ही करते-करवाते हैं, जिसके पीछे हमारा सबका कुछ न कुछ अपना-अपना **'अर्थ'** (मतलब) होता है। यह दूसरी बात है, कि कार्य होने के बाद उसका होना हमें निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थकारी प्रतीत हो और यदि वह हमारे अनुकूल भी हो, तो कब तक

अनुकूल रहेगा ! क्योंकि जिस देह के लिए सब कुछ किया-करवाया उसका **'अर्थ'** देहार्थ (देह व देहों के लिए) अर्थोपार्जन (धन कमाना) अथवा साकार देह व जगत की कोई विधा नहीं है। देह की एक ईश्वर द्वारा सुनिश्चित अवधि है, जिसका ज्ञान हममें से किसी को न था, न है और न कभी हो सकता है। हमारा जीवन अधिकतर देहार्थ विविध पदार्थों के लिए अर्थ (धन) कमाने की जोड़-तोड़ एवं होड़ में ही समाप्त हो जाता है और अन्ततः हमारे हाथ कुछ नहीं आता।

कब, क्यों, कहाँ और कैसे मृत्यु होगी कोई नहीं जानता, लेकिन जन्म होने के बाद मृत्यु कभी भी हो सकती है। यह होश सम्भालते ही प्रत्येक विवेकशील मानव देहधारी जान जाता है। मुझे क्यों जन्म दिया गया, यह मेरे माता-पिता भी नहीं जानते, लेकिन जिस ईश्वर ने मुझे विशिष्ट घड़ी, ग्रह-नक्षत्र में, विशिष्ट माता-पिता के अंश से, भाई-बहनों में विशिष्ट नम्बर पर, विशिष्ट स्थान एवं देश-विदेश की विशिष्ट परिस्थितियों में पैदा किया है, वह अवश्य जानता है। किस विशिष्ट घड़ी, ग्रह-नक्षत्र में, किस स्थान पर, कैसी परिस्थितियों में, किस प्रकार और क्यों मेरी मृत्यु होनी है, यह भी वही जानता है। अर्थात् स्पष्ट है, कि मुझे विशिष्ट, सबसे पृथक्, विषम एवं असम देह देने व ले जाने के पीछे उस प्रभु का कोई विशिष्ट **'अर्थ'** है। देह के दौरान होश सम्भालने से होश गुम होने तक मैं जो भी कर-करवा रहा हूँ, वह सब अपना अर्थ लगाकर देहार्थ ही कर-करवा रहा हूँ। देह मेरी नहीं है और मैं देह नहीं हूँ। देह प्रभु ने मुझे दी है और जब चाहे ले जाएगा और वह अवधि पूर्णतः मुझसे गुप्त रखी है। जीवन भौतिक Continuity अथवा निरन्तरता नहीं है, निरन्तरता **'अर्थ'** की है। देह तो विविध रूपों-स्वरूपों में हमें नित्य नूतन मिलती है, लेकिन **'अर्थ'** एक ही है और एक का ही है। देह जो जब, जहाँ, जैसी भी है, थी और होगी उसका **'अर्थ'** मात्र डेढ़-दो किलो **'भस्मी'** ही है, था और होगा। देह सतत् परिवर्तनशील है, लेकिन उसका **'अर्थ'** स्थिर तत्त्व **'भस्मी'** **'एक'** ही है।

मानव-देह ईश्वर की साकार मायिक संरचनाओं में उत्कृष्टतम,

भव्यतम, चमत्कारिक एवं परम रहस्यमयी सुकृति है, जो बिना कुछ किए-करवाए स्वतः मुझे लब्ध है। इसमें करोड़ों कार्यप्रणालियाँ एवं अवयव सुचारु एवं सुसम्बद्ध रूप से स्वतः अविरल व निरन्तर कार्यरत हैं। इसमें मेरा अथवा किसी का कोई हाथ न था, न है और न हो सकता है। Duty free, fully automatic, air conditioned and fully computerised human body is given to me and will be taken away from me any day without giving any notice. मेरी देह के आन्तरिक जगत का मुझे कोई ज्ञान नहीं है। यदि डॉक्टर रूप में कोई ज्ञान भी हो, तो देह की भीतरी कार्य-प्रणालियाँ कैसे व किसके द्वारा सुचारु, सन्तुलित एवं सुसम्बद्ध कार्यान्वित होती हैं, मैं नहीं जानता और जान भी नहीं सकता। यह सारी मशीन जो चला रहा है और एक समय व स्थान पर चलाना बन्द कर देगा उसका अवश्य ही कोई विशिष्ट **'अर्थ'** होगा। अन्य पशु-पक्षी व प्राणी यह विचार कर ही नहीं सकते, लेकिन मानव होने के नाते मैं विचार कर सकता हूँ। देह का अर्थ परमात्मा ने होश सम्भालते ही मानव को स्पष्ट दिखा दिया, कि कोई जब भी मरे, उसकी देह की डेढ़-दो किलो भस्मी ही बनती है और मृत्यु कभी भी आ सकती है। यह **'अर्थ'** दृष्टि में रखकर जब देहार्थ (देह व देहों के लिए) कार्य भी होंगे, वे मात्रात्मक न होकर गुणात्मक होंगे।

मेरी मान्यता और जान्यता में इतनी शक्ति है, कि जब तक मैं खुद को नहीं मानता और जानता, तब तक जगत नहीं होता और जब, जैसा, जो मैं स्वयं को व्यष्टि रूप में मानता हूँ, मेरा उस समय का जगत भी वैसा ही होता है। यदि मेरी मान्यता और जान्यता में इतनी शक्ति है, तो मैं देह के उस पदार्थ को क्यों नहीं मानता, जो **'सद्'** है। मेरी देह **'असद्'** है, इसलिए देहार्थ जितनी भी विधाएँ एवं जितने भी पदार्थ हैं, वे भी देह की तरह परिवर्तनीय, अस्थिर और असद् हैं। देहार्थ विभिन्न पदार्थ चाहिएँ, लेकिन देह के अर्थ **'भस्मी'** के लिए मात्र एक मेरी देह चाहिए। देह होगी, तो भस्मी होगी, लेकिन जब भस्मी होगी, तो देह नहीं होगी। अतः तब उस पदार्थ का मेरे लिए कोई **'अर्थ'** नहीं रहेगा। इसलिए देह के रहते देह की भस्मी की

अवधारणा द्वारा ही **'मैं'** देह के अर्थ को छू सकता हूँ।

इस **'अर्थ'** चिन्तन और मनन के दौरान ही हमारी देह धारणा रुष्ट, विदीर्ण एवं कम्पित होने लगती है और भस्मी की अवधारणा हृष्ट-पुष्ट और तुष्ट होने लगती है। देहार्थ पदार्थों की आसक्ति अनासक्ति में रूपान्तरित हो जाती है। इसके बाद चिन्तन-मनन के अर्थ का प्रादुर्भाव एवं जागृति होती है। भस्मी-चिन्तन एवं मनन का अर्थ विरक्ति की जागृति है। देहार्थ विविध पदार्थों की चाहतों में चिन्ता और चिता बनी रहती है और देह का अर्थ **'भस्मी'** है इसका चिन्तन, चिन्ता और चिता दोनों को लील जाता है। फिर देह के अर्थ के अर्थ (अर्थार्थ) के लिए चिन्तन और मनन होता है। देह के अर्थ (भस्मी) का अर्थ (विरक्ति) चिन्ता और चिता से हमेशा के लिए मुक्ति दिला कर आत्म चिन्तन और मनन की ओर प्रवृत्त कर देता है। चिन्तनार्थ और मननार्थ प्रभु ने प्रत्येक मानव को, देह की भस्मी स्पष्ट दिखाई है, कि कुछ भी कर-करवा ले, पा ले या खो ले, कुछ हो, न हो लेकिन देह की अन्ततः भस्मी ही बनती है। भस्मार्थ प्रकट होने पर देह का अर्थ प्रकट होता है। भस्मी, देह का व देह से बनने वाला ऐसा दृश्यमान पदार्थ है, जो साकार देह व जगत की समस्त विधाओं से अतीत है। जिस प्रकार प्रत्येक देह की **'मैं'** एक है उसी प्रकार **भस्मी** भी एक ही और एक जैसी होती है।

भस्मी की अवधारणा से हृष्ट-पुष्ट-तुष्ट देह विरक्तिमयी होती है। विरक्ति समस्त विभूतियों का मूल है, अतः देहार्थ पदार्थों की आसक्तिवश जीव की जो स्वरूपगत सौन्दर्य, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति और ज्ञान आदि विभूतियाँ क्रमशः काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार रूप में विकृतियाँ बन गईं थीं, विरक्ति की जागृति से ये विभूतियाँ पुनः अपना स्वरूप प्राप्त कर लेती हैं। विशिष्ट कृपा से यह रूपान्तरण अपरिवर्तनीय होता है। अतः देह का यथार्थ, जीवात्मा का आत्मतत्त्व एवं ईश्वर का ईश्वरत्व तीनों एक साथ अनावृत हो जाते हैं। कृपया एकाग्र करें, मैं तात्विक दृष्टि से सविस्तार वर्णन करूँगा।

ईश्वर ठोस-घन-शिला, सच्चिदानंद एवं विरक्ति की संघनित अदृश्य सत्ता है। स्वयं में, स्वयं के साथ स्वतः, स्वान्तः सुखाय क्रीड़ा के लिए इस

अतिशक्ति विरक्ति से पंच-प्राणों की महाशक्ति का अभ्युदय होता है। दोनों में परस्पर क्रीड़ा होती है और इस क्रीड़ा के आनन्द का प्रकाट्य पंच-प्राणों द्वारा पंच-महाभूतों के रूप में होता है। ये पंच-महाभूत स्वयं में परम सशक्त हैं, लेकिन सहज जड़ हैं; इसलिए इन्हें अपना, अपनी शक्ति का तथा शक्ति के स्रोत, किसी का भी ज्ञान नहीं है। फिर भी इनमें दशानन (निरन्तर, चिरन्तन, अविरल, अकाट्य, अबाध, परम विशिष्ट, अति संक्षिप्त, सारगर्भित, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक) गतियाँ होती हैं और गति की ये समस्त रूप **अदृश्य** हैं। पंच-महाभूत निराकार हैं और दृश्यमान हैं, लेकिन इनमें होती गतियाँ अपनी दसों विशेषताओं सहित अदृश्य रहती हैं। प्रत्येक गति के लिए शक्ति चाहिए। सहज जड़ पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि को निरन्तर, चिरन्तन, अविरल, अकाट्य, अबाध, सारगर्भित, विशिष्ट, संक्षिप्त, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक गति देने वाली पंच-महाभूतों की शक्ति नहीं है। वह महाप्राण शक्ति अदृश्य विरक्ति है। उसने इन पंच-महाभूतों की गतियों को इनकी दसों विशिष्टताओं सहित अदृश्य रखा हुआ है। हमारे मनीषियों, योगियों ने इन गतियों का समाधिस्थ होकर दर्शन किया है।

जब-जब पंच-महाभूतों की गतियाँ दृश्यमान होती हैं, तो वही अदृश्य शक्ति विरक्ति इनकी शक्तियों का प्रयोग करती है। ये पंच-महाभूत परम सशक्त होते हुए भी अपनी शक्ति का स्वयं प्रयोग नहीं कर सकते, क्योंकि ये सहज जड़ हैं। पंच-महाभूतों के संगम से समस्त चराचर जगत का निर्माण होता है। अतिशक्ति विरक्ति पंच-महाभूतों द्वारा ही प्रपंचमय चराचर जगत का पालन करवाती है। जीने के लिए वायु, जल, विभिन्न वनस्पतियाँ, आकाश, पृथ्वी आदि चाहिए। वायु, जल के अभाव से कोई देह मृतक हो जाती है, तो उसको वायु और जल आदि जीवित नहीं कर सकते। अदृश्य शक्ति विरक्ति ही पंच-महाभूतों से निर्माण और पालन करवाती है। वायु, जल, अन्न को **'प्राण'** वह महाप्राण शक्ति विरक्ति ही देती है। इसके महा प्रयाण से महाप्रस्थान (मृत्यु) हो जाता है। निर्माण, पालन और इनकी दशानन गतियों में वह महाप्राण शक्ति (विरक्ति) अदृश्य रहती है लेकिन

मात्र संहार के बाद बाद पंच-महाभूतों से संगमित काया जब पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है, तब अवशेष रूप में वह महाप्राण शक्ति जो प्रयाण कर चुकी है, उसका प्रतिनिधित्व भस्मी के रूप में दृश्यमान हो जाता है।

पंच-महाभूत निराकार और दृश्यमान हैं। इनकी दशानन गतियों की महाप्राणशक्ति विरक्ति निराकार है, लेकिन अदृश्य है। निराकार पंच-महाभूतों को मानव-देह रूप में आकार वह महाप्राण शक्ति विरक्ति ही देती है, जो निराकार भी है और अदृश्य भी है। पालन निराकार पंच-महाभूतों द्वारा करवाती है, लेकिन **'प्राण'** यही विरक्ति शक्ति देती है। पंच-महाभूतों में विलय भी यही विरक्ति शक्ति करती है। अन्ततः इसका प्रकाट्य भस्मी रूप में न केवल निराकार होता है, बल्कि वह दृश्यमान भी होता है। **'भस्मी'** मायातीत एवं देह व जगत की समस्त विधाओं से अतीत है, लेकिन ब्रह्माण्डातीत नहीं है।

जीवात्मा स्वयं में देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, मायातीत, परम स्थिर, अपरिवर्तनीय एवं ब्रह्माण्डातीत है। देह का कोई गुण उससे नहीं मिलता। देह देश, काल, कर्म, धर्म, कर्तव्य, लिंग, सम्बन्ध एवं माया के तीनों गुणों में बँधी क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। जीवात्मा ने जीव-कोटि में देह को आधार मान लिया, कि 'मैं देह हूँ'। जन्मों-जन्मान्तरों में अध्यास होते-होते **'आधार** का **'आ'** हट गया और इसने देह को **'धार'** लिया। देह, इसकी धारणा बन गई और **'धारयति इति धर्म'** के अनुसार देह ही जीव-कोटि में जीवात्मा का **'धर्म'** बन गई। देह धारणा निराधार थी, रेत की दीवार थी। वहाँ जीवात्मा का आत्मा तत्त्व लुप्त हो गया और वह पूर्णतः जीव-कोटि में आ गया। मानव-देह ईश्वर की समस्त साकार संरचनाओं में सर्वोत्कृष्ट कृति है, लेकिन जन्म-मृत्यु, नश्वरता एवं परिवर्तनशीलता देह के अपने धर्म हैं। जीव कोटि में देह के धर्मों को जीवात्मा ने अपना धर्म मान लिया, क्योंकि देह को **'धार'** लिया। यहाँ से काल-बन्धन, कर्म-बन्धन एवं प्रारब्ध बन्धन का अन्तहीन सिलसिला शुरू हो गया। काल-बन्धन में यह समय, स्थान एवं स्थिति से

बँध गया। हर स्थिति, **स 'तिथि'** अर्थात् तिथि सहित थी। तिथि व समय, स्थान से बँधा होता है। अकाल भी स्वयं में एक स्थिति है, जो स्थितयातीत स्थिति है। जो समय और स्थान के बन्धन से मुक्त होती है। काल और अकाल दोनों का ईश्वर महाकालेश्वर है।

होश सम्भालते ही जीव देहार्थ (देह के लिए) कुछ न कुछ करने लगा और उसीको इसने अपना कर्म मान लिया। देह के साथ तद्‌रूपतावश देह को आधार मान कर जो-जो इसने किया-करवाया वह व्यर्थ, निरर्थ और अनर्थ ही रहा। यह मानव देह के **'अर्थ'** को छू भी नहीं पाया। देह धारणा एक मानसिकता है। इस मानसिकता के चलते मानस विकृत हो गया। मानस का आनन्द आच्छादित हो गया और आनन्दमय मन सुख-दुःख में भटकने लगा। 'मैं देह हूँ' यह देह का नहीं, मानस का विकार या Sickness है। **'मैं'** विशुद्ध ईश्वरीय मानस है, जो सहज सुखराशि है। वह देह की तद्‌रूपता **सी** में विकृत मानवीय मन बन गया।

जीवात्मा को भ्रम में जब यह वहम हो गया, कि मैं देह हूँ, तो उसकी कुल देह का परिदृश्य एवं व्यवहार बदल गया। देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) और जीवात्मा का आनन्द आच्छादित हो गया। जीवात्मा कोटि-कोटि जीवों की जीव-कोटि में पतित हो गया। इस वहम व भ्रम का जन्मों-जन्मान्तरों में पता नहीं चला और जीवात्मा को देह धारणा हो गई। देह के साथ तद्‌रूपता का ज्ञान न होने की स्थिति को मैंने **'अज्ञात अज्ञेय'** की संज्ञा दी है। तद्‌रूपता का ज्ञान होना अर्थात् अज्ञात ज्ञेय होना भ्रम के निवारण की ओर गति है। एक जन्म में यह भी ज्ञान हो जाए, कि मैं विशुद्ध जीवात्मा हूँ और यथार्थ देह मुझसे पृथक् है तथा भ्रम के कारण हुई तद्‌रूपता में हम दोनों विकृत से हो गए हैं—यह बहुत ऊँची स्थिति है। इस तद्‌रूपता के ज्ञान में जीवात्मा स्वयं में आश्वस्त हो जाता है, कि मैं अलग हूँ और देह अलग है। तद्‌रूपता के कारण मैं अपना सहज सुखराशि आत्म स्वरूप और देह अपना यथार्थ (यथा+ अर्थ) खो चुकी है।

देह का अर्थ आच्छादित होने से वह देह निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ

(अन्य+अर्थ) हो गई। वहम में धारित देह में जिया गया जीवन निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में ही ले गया। अर्थहीन देह में निस्सार को मैंने संसार मान लिया। कभी किसी जन्म में अति कृपावश किसी सद् पुरुष ने मुझे मेरी भूल का अहसास करवाया और कहा, कि ''देह रूप में तू अपने कष्टों, प्रारब्ध, काल और कर्म-बन्धन की श्रंखला से बाहर नहीं आ सकता। तू देह से, देह के लिए ही साधना कर रहा है। तेरी साधना फलीभूत होती है, तुझे सिद्धियाँ भी मिल रही हैं लेकिन देवी, देवताओं, भूत, प्रेत, पिशाचों को सिद्ध करने में भी तू अनर्थ की ओर ही जा रहा है। तू घोर जप, तप में भी देह की व्यर्थता, निरर्थता व अनर्थता को और-और ह्रष्ट-पुष्ट करता हुआ परिपुष्ट ही कर रहा है। तेरी यथार्थ देह का आच्छादन अधिक से अधिक गहराता रहता है। **जीवन में प्रत्येक स्वाद तक तेरे लिए अवसाद बनता रहता है।''**

''तू ईश्वर भक्ति और मोक्ष से कोसों दूर है, क्योंकि तूने देह का अर्थ जानना ही नहीं चाहा। इसके बिना तू निस्सार संसार में ही लिप्त रहेगा। तू अब देह का अर्थ अधिगृहीत कर, क्योंकि जो तद्‌रूपता में धारित विकृत देह का अर्थ है, वही तेरे लिए निर्धारित सुकृत यथार्थ देह का भी अर्थ है। देह के साथ हुई तद्‌रूपता का मैं तेरे हित के लिए ही सदुपयोग करवा देता हूँ। वास्तव में इस तद्‌रूपता में देह विकृत नहीं हुई, तेरा मानस विकृत हो गया है। ईश्वरीय आनन्दमय मानस जीव कोटि में सुखों-दुःखों वाला विकृत मन बन गया।

तू जन्मों-जन्मान्तरों से देह धारणा का शिकार है। यह तेरी घोर मानसिक विकृति है। तेरा आनन्दमय मन आच्छादित हो गया है और तू सुखों-दुःखों की अनन्त श्रंखला में जन्म-दर-जन्म भटक रहा है। अब तू अपनी इसी देह से देह का अर्थ पकड़। तेरी देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य भस्मी है। अब तू देह के इस भविष्य की अवधारणा, देह धारणा में देह के रहते कर, कि तू भस्मी है। धीरे-धीरे भस्मी से तद्‌रूपता से तेरी देह धारणा निर्मूल होने लगेगी। जो आसक्त की देह का अर्थ है, वही विरक्त की देह का अर्थ है। साधु, चाण्डाल, सज्जन, दुर्जन, गुरु, शिष्य,

पापी, पुण्यी सबकी देहों का अर्थ एक ही **भस्मी** है। जो, जब, जहाँ, जैसी भी देह, थी, है और होगी उसका अर्थ **'भस्मी'** ही था, है और होगा। इसलिए **'भस्मी'** देह का सम अर्थ है। देह के निर्माण और पालन से तूने तद्‌रूपता की, संहार से तो की ही नहीं। निर्माण, पालन की विविधता और विभिन्नता में संहार सबका एक ही है। भस्मी से तद्‌रूपता में तू देह और देह की मृत्यु दोनों से परे हो जाएगा। देह का अर्थ (भस्मी) देह के अन्त का अन्त है। इसे तू जानता है। अब तू ही जानते हुए जानबूझ कर मान भी ले।''

सद्‌गुरु कहता है, कि ''जो (देह) जब (समय) जहाँ (स्थान) और जैसी (स्थिति में) भी थी, तूने उसे अपना स्वरूप मान लिया। अब तू इसी देह के उस क्षेत्र से आत्मसात् हो जा, जो देह का निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य है तथा देह की ऐसी अपरिवर्तनीय अवस्था एवं क्षेत्र है जो किसी विशेष देह व जगत को नहीं पहचानता। क्योंकि उस क्षेत्र का अतीत देह नहीं है और वह आगे अपरिवर्तनीय है। उस क्षेत्र का वर्तमान, अतीत एवं भविष्य भस्मी ही भस्मी है। अर्थात् वह क्षेत्र भूत, भविष्य एवं वर्तमान से परे व देहातीत है। वही तेरी देह का **'अर्थ'** है।''

जीवात्मा जीव-कोटि में देह के साथ तद्‌रूप हुआ, लेकिन इस तद्‌रूपता में उसने देह के संहार को उपेक्षित कर दिया। सद्‌गुरु के निर्देशन में यज्ञ, हवन, प्राणायाम, ध्यान आदि पुरुषार्थ कर्म संहार की उपासना है। संहार (मृत्यु) के बाद साकार मानव-देह के दहन होने पर प्रकट भस्मी भगवान शंकर की प्रतिनिधि है, जो स्वयं में निराकार के साथ दृश्यमान भी है। भस्मी का प्राकट्‌य साकार देह की वजह से होता है। ब्रह्माण्ड में यह ऐसा दृश्यमान तत्त्व है, जो स्वयं में अपरिवर्तनीय है और पंच-तत्त्वों से परे प्रपंचातीत, मायातीत एवं तत्त्वातीत तत्त्व है। इसका कोई भूत, भविष्य, वर्तमान, धर्म, कर्म, सम्बन्ध, देश, लिंग, कर्तव्य आदि नहीं है। भस्मी सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी भी नहीं है। यह भस्मी ही देह का **'अर्थ'** है।

जीवन में प्रत्येक कार्य का हमारा अर्थ होता है, तो हमने अपनी देह के

इस **'अर्थ'** को उपेक्षित कैसे कर दिया? We collect means for the means and we land on to meanness. हिन्दी में इसे **'कमीन'** कह दिया। देह का अर्थ भस्मी है, वही सम अर्थ है। जो, जब, जहाँ, जैसी भी देह है, यदि प्राणान्त होता है, तो **'भस्मी'** एक ही एवं एक ही जैसी होती है। एक देह की भस्मी सब देहों की है। सतयुग, द्वापर, त्रेता की देहों की भस्मी भी एक ही जैसी है। देह के उस शिव तत्त्व को भाव से ध्यान में प्रकट करके हे जीवात्मा ! तू उसके साथ तद्‌रूपता कर। वही तेरी देह का अर्थ है। तब तेरी देह भस्मीमय एवं मैंमयी होगी। वह काल, कर्म, प्रारब्ध, मर्यादाओं, धर्मों, पापों, पुण्यों, कुल, जाति आदि से मुक्त होगी। भस्मी कालातीत एवं युगातीत है। इसलिए एक देह की भस्मी सबकी है और स्वयं में किसी की भी नहीं है। भस्मी, **'मैं'** (जीवात्मा) की तरह स्थिर, अपरिवर्तनीय, कालातीत, धर्मातीत, कर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत एवं मायातीत लेकिन ब्रह्माण्डातीत नहीं है।

सद्‌गुरु कहता है, कि ''तूने भ्रमवश देह को आधार बनाया तो फँस गया। तू देख तेरी देह का यही पदार्थ (भस्मी) तेरे से मिलता-जुलता है, जो तुझे तेरे पद की स्मृति दिला देगा। देह के इस **'अर्थ'** को छुए बिना तूने देह को धार लिया, इसलिए तू निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में जन्मों-जन्मान्तरों से भ्रमित अवस्था में भटक रहा है। देह के इस अर्थ और निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य से तू आत्मसात् नहीं हो सकता, लेकिन तू इसकी इच्छा कर। इसके लिए प्रार्थना एवं आर्तनाद कर। भस्मी के साथ आत्मसात् होने की यह चाहत ही तुझे मृत्यु का उल्लंघन करा देगी। मृत्यु का अतिक्रमण होने से जन्म का स्वतः उल्लंघन हो जाएगा। तू मृत्युंजय व जनमेजय हो जाएगा। देह के **'अर्थ'** से आत्मसात् होने की प्रार्थना कर। **'अर्थ' जो देह से परे (प्र+अर्थ) है, उसके लिए किया जाने वाला नाद (आर्त नाद व पुकार) ही प्रार्थना है। 'प्रार्थना'** में अर्थ छिपा है। अर्थ की प्राप्ति का आर्तनाद प्रार्थना है। इस प्रार्थना से तू देह रूप में निरर्थों, व्यर्थों एवं अनर्थों से तुरन्त मुक्त होकर पुरुषार्थ के प्रथम सोपान **'अर्थ'** में प्रविष्टि पा लेगा।''

'अर्थ' को प्राप्त करने, अपनी भस्मी से आत्मसात् होने की आर्तनाद

से तुरन्त मानव जीवन सार्थक बनने लगता है। वह देह तुरन्त आपके लिए हो जाएगी। अर्थ, **'सम'** है, अर्थ, सम ही है और जो सम ही है, वही **'अर्थ'** है। अन्यथा निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में से कुछ भी है अथवा सब कुछ है। देह की भस्मी से आत्मसात् होने के लिए की गई प्रार्थना ही अर्थ सहित होगी अन्यथा प्रार्थना भी निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में ही ले जाएगी। बहुत सी सिद्धियों में भी देहाध्यास की पुष्टि पर पुष्टि ही होती रहेगी। देह का अर्थ **'भस्मी'** तेरा **'पद'** है इस पद के अधिग्रहण पर देह रूप में समस्त पद भी सार्थक हो जाएँगे। ''इसलिए अब तू सुबह निद्रा से उठकर पहले अपना उठाला कर। ध्यान में अपनी देह की भस्मी को गंगा में स्वयं अर्पित कर। उसके बाद दिन भर जो चाहे कर, दुकान पर जा, नौकरी कर, कुछ भी कर, तेरी देह द्वारा हुआ अथवा किया गया प्रत्येक कृत्य सार्थक ही होगा। क्योंकि तूने जीवन में संहार रूपी श्रृंगार से सुसज्जित द्वार से प्रवेश किया है। तू जीवन में अर्थार्थी (अर्थ का अर्थ जानने वाला) हो जाएगा। जीवन के समस्त अर्थ तेरा सान्निध्य चाहेंगे। तेरी चाहतें चहेतियाँ बन जाएँगी और तेरा जीवन चरितार्थ हो जाएगा। तू स्वार्थी बन। अपनी **'स्व'** (देह) का अर्थ पहले अधिगृहीत कर ले। **'स्व'** तेरी व्यष्टि है। स्व का अर्थ **'स्वा'** (भस्मी या राख) है। जो **'स्व'** का अर्थ है, वही **'सर्व'** का अर्थ (सर्वार्थ) है। इसीलिए जब तू **'स्व'** का अर्थ अधिगृहीत करेगा, तो तेरी **'स्व'** से **'सर्व'** में स्वतः प्रविष्टि हो जाएगी। तू स्वयं में व्यष्टि से समष्टि हो जाएगा। तेरी देह **'मैंमयी'** यथार्थ देह हो जाएगी।''

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(16 दिसम्बर से 30 दिसम्बर 2009)

पदार्थ

मानव-देह साध्य नहीं साधन है। मानव-देह कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की सृष्टि में सर्वोत्कृष्ट संरचना है। पंच-महाभूतों का विलक्षण संगम, परम रहस्यमयी एवं विशिष्ट रूप से चमत्कारिक इस देह में पृथ्वी एवं आकाश में जितने भी पदार्थ हैं, उनका सूक्ष्म रूप से प्रतिनिधित्व है। असंख्य पदार्थों द्वारा इसका पालन होता है और अन्ततः मृत्योपरान्त अग्निदहन द्वारा यह देह पंच-महाभूतों में विलीन होते हुए लय हो जाती तो एक पदार्थ प्रकट होता है, जिसे **'भस्मी'** कहते हैं। इस साधन द्वारा **'मैं'** (जीवात्मा) अपना विशुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप पहचान जाऊँ। मैं अपने पद का अर्थ (पद+अर्थ) पा लूँ। सम्पूर्ण दृश्यमान निराकार एवं साकार जगत जिसे हम अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अधिगृहीत करते हैं, प्रस्तुत करते हैं और प्रभावित होते हैं, वह सब पंच-महाभूतों में प्रकट ईश्वरीय माया अथवा प्रपंच है। जो दृश्यमान है, वह माया है और जो अदृश्य है, वह ईश्वर है। माया का अपना एक आकर्षण व संकर्षण है, क्योंकि यह ईश्वर की सुकृति है। इस माया में सर्वोत्कृष्ट, विशिष्ट रूप से चमत्कारिक एवं रहस्यमयी सुकृति मानव-देह है। यह एक सुकृति ईश्वर की समस्त विभूतियों एवं सम्पूर्ण सृष्टि की असंख्य विधाओं को स्वयं में समेटे है। साकार माया में प्रकाट्य के तीन आयाम हैं—निर्माण, पालन एवं संहार। समस्त निर्माण, पालन व संहार क्षण-क्षण होता मायिक प्रकाट्य है।

जीवन में देहार्थ (देह के लिए) हमें असंख्य पदार्थ चाहिए लेकिन देह का अर्थ देह में नहीं देहातीत है। देहातीत—देह का अतीत नहीं बल्कि देह से

परे का क्षेत्र है। यह देह का व देह से बनने वाला एक पदार्थ है जो देह की समस्त विधाओं, देह के वर्तमान, अतीत एवं भविष्य तीनों से परे है। पाप-पुण्य, सुख-दुःख, जन्म-मृत्यु, आधि-व्याधि-उपाधि, शुभ-अशुभ और सब कुछ से जो परे है, वह देहातीत है। जब, जहाँ, जैसी जो देह है, उसके लिए पदार्थ भिन्न-भिन्न चाहिए, लेकिन जब, जहाँ, जैसी जो भी देह थी, है और होगी उसका पदार्थ एक ही था, एक ही है और एक ही होगा।

पदार्थ शब्द का सन्धि-विच्छेद करें—पद+अर्थ=पदार्थ। जीवन में विभिन्न पदार्थों की इस दौड़ का अर्थ ही कुछ नहीं है। क्योंकि ये पदार्थ पहले थे नहीं और अन्ततः रहने नहीं है। अपने **'पद'** का **'अर्थ'** जाने बिना यह निराकार दृष्टा जीवात्मा स्वयं को साकार देह मानते हुए, साकार देह सहित जगत की विभिन्न विधाओं से सम्बन्धित पदार्थों की चाह में अपने शाश्वत् **'पद'** से **च्युत** हो जाता है। चेतन जीवात्मा से एक निम्नतम कोटि का अवचेतन जीव बन जाता है। ईश्वर प्रदत्त सर्वोच्च बुद्धि का हमने देह के साथ तद्रूपता में निम्नतम प्रयोग किया। अपनी समस्त शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक शक्तियों की देह और देह पर आधारित जगत में विभिन्न पदार्थों को एकत्रित करने में झोंक दिया। असंख्य पदार्थों की चाहत करने वाली देह का अन्ततः एक पदार्थ (भस्मी) बन जाता है। इस एक पदार्थ का अर्थ यदि जीवन-काल में मालूम चल जाए, तो जीवन में अन्य पदार्थों के लिए भाग-दौड़ समाप्त हो जाएगी क्योंकि उनका महात्म्य नहीं रहेगा।

जिस देह को 'मैं' Air Condition में रखता हूँ, बहुत से वस्त्र, अलंकार से सुसज्जित करता हू, विभिन्न स्वादिष्ट व्यंजनों का भोग लगाता हूँउसका अन्ततः किसी भी दिन एक पदार्थ (भस्मी) में रूपान्तरण हो जाना है। यह बहुत बड़ी भूल हम सबसे हो जाती है और हम, इस चराचर जगत के प्रकाट्य में प्रकाट्य की तीसरी विधा **'संहार'** को मैं भूल गया अथवा जाने-अनजाने, मोहवश उपेक्षित कर देते हैं। हम मानव जीवन-काल में असंख्य पदार्थों के लिए लालायित रहते हैं। बहुत सी चाहतें आजीवन हमें बेचैन किए रहती हैं। सुख-सुविधा की असंख्य वस्तुएँ, जो हमारी देह और

परिवार को आराम दे सकें, हम प्राप्त करना चाहते हैं। उनकी प्राप्ति हमारी मान-मर्यादा एवं तथाकथित गरिमा की प्रतीक भी बनी रहती है। समय-समय पर विभिन्न पदार्थों द्वारा हम अपनी प्रतिष्ठा और सम्मान का प्रदर्शन भी करते हैं। किसी भी पदार्थ में हमारी लिप्तता तभी होती है, जब हमारे मन-मस्तिष्क में उसके प्रति किसी भी प्रकार का महात्म्य बना होता है। अभाव और कमी से उन पदार्थों का महात्म्य हमारे लिए बढ़ता रहता है।

Defficiency, Insufficiency और want स्वयं में अदृश्य एवं निराकार है; जब उस कमी की पूर्ति करना चाहते हैं और हम प्रयत्न करते हैं, तो चाहत व कमी दिखाई देती है। साकार पदार्थ की चाहत स्वयं में निराकार थी इसलिए साकार पदार्थ की प्राप्ति के बाद भी निराकार मानस में चाहत बनी रहती है। पहले उस वस्तु की प्राप्ति के लिए चाहत होती है फिर उस वस्तु के विषय में चाहत होती है। वस्तु का रख-रखाव और प्राप्ति के बाद की अन्य प्रतिक्रियाएँ हमें बहुत सी चिन्तायुक्त चाहतों में उलझा देती हैं। इस प्रकार चाहतें प्रकट होकर तथा बहुत सी चिन्ताएँ बनकर अन्य असंख्य चाहतों को बनाए रखती हैं।

निराकार चाहत साकार वस्तु बनकर जब प्रकट होती है, तो जिस मन में चाहत थी उसी मन में प्रकट वस्तु की प्रतिक्रिया होती है। निराकार रील से फिल्म स्क्रीन पर दिखाई गई। फिल्म देखने के बाद वह Reel erase नहीं होती। स्क्रीन और Recorded Reel वैसी की वैसी रहती है। उसे Rewind करके दुबारा दिखाया जाता है। यही प्रक्रिया चाहतों के साथ भी है। फिल्म के बनाने वाले Producer, Director जनता की प्रतिक्रिया देखते हैं। वे प्रतिक्रियाएँ उनकी चिन्ता का कारण बनती हैं।

उदाहरणतः चुनाव जीतने की अथवा कोई डिग्री या पद प्राप्त करने की बहुत चाहत थी। चुनाव जीत लिया, डिग्री या पद प्राप्त हो गया, अब प्राप्ति के बाद चाहत ही चिन्ता में रूपान्तरित हो जाती है। साकार वस्तु की प्राप्ति के बाद जिस मन की चाहत थी, वहाँ चाहत में प्रतिक्रिया होती है। कभी-कभी कुछ ऐसा प्रकट हो जाता है, जो हमने नहीं चाहा। तो नहीं चाहना

भी चाहत है। अतः प्रकट होने के बाद इसका प्रभाव पड़ा और मन में प्रतिक्रिया हुई। यह प्रतिक्रिया बहुत भयंकर होती है। कभी-कभी हम अपने स्वयं में स्पष्ट नहीं होते, कि कुछ चाहतें भी हैं या नहीं। कभी चाहतें हैं, कभी नहीं चाहते। कभी न 'चाहते हैं' और न 'नहीं चाहते हैं', कि जो प्रभु इच्छा हो वह हो।

चाहतों के भी विभिन्न स्वरूप हैं। जब साकार में प्रकट होती हैं तो उनका चाहने या न चाहने पर Reaction या प्रतिक्रिया होती है। यह प्रतिक्रिया भी निराकार में होती है। चाहत साकार में पूरी होने पर हमारे निराकार मानस में सात प्रकार की प्रतिक्रियाएँ होती हैं :–1. मैं क्यों चाह बैठा 2. जैसा मैंने चाहा वैसा नहीं था 3. मेरी चाहत से बहुत अधिक है, मैं इतना क्या करूँगा 4. मेरी चाहत से बहुत कम है अब और प्रयत्न करना होगा, नहीं तो इतनी सी से क्या होगा मैं तो फँस गया आदि-आदि। अतः चाहत के पूरी होने, पूरी न होने अथवा अधूरी पूरी होने के एवज़ में हमारे निराकार मानस में जो प्रतिक्रियाएँ होती हैं, उनका नाम है **'चिन्ता'**। कभी समय, कभी स्थान, कभी स्थिति हमारे अनुकूल नहीं होती। ये चिन्ताएँ अन्य असंख्य चाहतों को जन्म देती हैं और हम आजीवन इस मकड़जाल में उलझे रहते हैं। प्राकाट्य से पहले वस्तु व पदार्थ का महात्म्य था, उसके बाद चिन्ताओं को दूर करने के लिए विभिन्न चाहतों का महात्म्य हो जाता है। हमारी देह सहित विभिन्न साकार प्राप्तियाँ हमारी चिन्ताओं का कारण इसलिए बनी हुईं हैं, क्योंकि वे सब हमारी चाहतों के कारण प्रकट हुई हैं। बिना चाहे भी बहुत सी वस्तुएँ मिलती रहती हैं उन्हें हम **दुत्कार** नहीं सकते। चाहने पर जो मिलती हैं, उन्हें **सत्कार** नहीं पाते। हम सत्कार और दुत्कार के बीच में उलझे हुए बहुत अधिक तनावित रहते हैं। हम प्रकट अथवा अप्रकट, ज्ञात अथवा अज्ञात व्याधियों से घिरे रहते हैं। जिससे हमारा विशुद्ध आनन्दमय स्वरूप आच्छादित हो जाता है एवं अन्ततः आसक्तियों को लिए ही मर जाते हैं। तद्नुसार हमारा प्रारब्ध बन जाता है और उसी के एवज़ में पुनः जन्म होता है।

एक देह द्वारा हम अनेक वस्तुओं और सम्बन्धों में उलझे हुए हैं। जीवात्मा भ्रमवश देह के साथ तद्रूप हुई लेकिन देह जीवात्मा के साथ तद्रूप नहीं हुई। यह loop hole नहीं दैवीय loo door है। यह देह ही जीवात्मा की सहायक होती है। ''हे जीवात्मा ! मेरे साथ तद्रूपता में तूने वस्तुओं को चाहा परन्तु वस्तुओं ने तो तुझे नहीं चाहा। तेरी लिप्तता इसलिए है, क्योंकि तूने पदार्थों व वस्तुओं को चाहा और यह लिप्तता तब समाप्त होगी, जब वस्तुएँ तेरे लिए लालायित हों। तू चाहे या न चाहे जब वस्तुएँ तुझे चाहेंगी, तो तेरे पास स्वतः आएँगी। तेरी चाहत और चिन्ता का दामन-चोली का साथ है। लेकिन जब वस्तुएँ तुझे चाहेंगी और तेरे पास आएँगी, तो तुझे चिन्ता नहीं होगी।''

हमारे साथ साकार रूप में कुछ नहीं जाता। नित्य सुषुप्ति में देह सहित समस्त साकार जगत मेरे लिए नहीं रहता। इसी प्रकार मैं एक दिन चिर निद्रा में चला जाऊँगा, तो समस्त प्राप्तियाँ व पदार्थ जिसकी तुझे चिन्ता है, वे यहीं रह जाएँगी और साथ में असंख्य प्रभावों एवं प्रतिक्रियाओं से युक्त प्रदूषित मानस मेरे साथ चलता है। उलझी हुई चाहतें, चिन्ताओं में रूपान्तरित चाहतें आसक्तियाँ बनकर मानस में रहती हैं। आसक्ति लिप्तता है। विरक्त को कभी चाहत नहीं होती। चाहत को पूरी करने की चाहत जब चिन्ता बन जाती है, तो वह चाहत आसक्ति बन जाती है। चिन्ता को दूर करने के लिए जो चाहत होती है, उसे आसक्ति कहते हैं। यह मेरे स्वरूप को आच्छादित कर मुझे तनावित रखती है। विरक्त को कभी चाहत नहीं होती और आसक्त पा भी नहीं सकता और छोड़ भी नहीं सकता। पा भी ले तो उसे सम्भालने की शक्ति उसमें नहीं होती, तो उसका भोग कर ही नहीं सकता। निराकार मानस को सद्गुरु-सेवा, यज्ञ-हवन, जप-तप, ध्यान-समाधि आदि पुरुषार्थ कर्मों द्वारा शुद्ध करते रहना ही अनिवार्य कर्म है।

मेरी देह जो आजीवन पदार्थों को एकत्रित करने के लिए भागती-दौड़ती है और इसकी चाहतें पूरी नहीं होती, उसी **देह का** और **देह से** एक पदार्थ बनेगा। यह एक पदार्थ है—देह की भस्मी। इस पदार्थ को

अन्य पदार्थों की भाँति देखा, सूँघा, चखा, छुआ जा सकता है। यह एक पदार्थ ऐसा है जब प्रकट होता है, तो मेरी देह अपने सर्वस्व (सर्व एवं स्व) सहित नहीं रहती। जैसे कि एक मैं सोता हूँ तो उस सुषुप्ति काल में मेरी एक देह सहित जगत मेरे लिए नहीं रहता। मेरी विशेष देह की भस्मी देह विशेष की नहीं सबकी होती है। देह के इस पदार्थ के बनने से पहले मेरा शव बनना आवश्यक है। शव मेरी देह का अन्त (देहान्त) है और भस्मी शवान्त, देहान्तान्त अथवा अन्तान्त है। शव से किसी व्यक्ति की पहचान हो सकती है लेकिन **'भस्मी'** से किसी की पहचान नहीं की जा सकती। क्योंकि भस्मी सबकी है। जिस प्रकार मेरी **'मैं'** सबकी है उसी प्रकार मेरी **'भस्मी'** भी सबकी है। यह भारत में शंकर का Communism है। मैं और भस्मी के बीच जितने साकार हैं उनमें अनेकता, विभिन्नता व विविधता है, लेकिन हम सबका आदि व अन्त एक ही है। यदि **'मैं'** और भस्मी को मिला दिया जाए, तो मध्य में इस अनेकता में एकता प्रत्यक्ष दिखाई देगी। इस अनेकता में एकत्व के लिए मुझे साकार देह के इस निराकार तत्त्व **'भस्मी रूपी पदार्थ'** का जीवन-काल में अधिग्रहण करना होगा। मैं देह नहीं हूँ, मैं भस्मी हूँ।

'भस्मी' मेरी देह का निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य है लेकिन भस्मी का अतीत मेरी देह नहीं है। यदि नित्य पाँच मिनट **'मैं'** उस **'भस्मी'** का ध्यान करूँ, जो कभी भी बन सकती है और अवश्य बनेगी तभी देह सहित जगत की समस्त साकार विधाओं का रसास्वादन सम्भव होगा। **'मैं'** देह के सद् का अधिग्रहण करूँ। इस नश्वर देह की दो अवस्थाएँ शाश्वत् हैं—शैशव एवं शव। जब ये दोनों अवस्थाएँ शाश्वत् हैं तो इनका रूपान्तरण भी शाश्वत् होना चाहिए। शैशव और शव दोनों ही अवस्थाओं के बारे में यदि मानव सोचता है भी, तो बहुत कम सोचता है। जबकि ये दोनों अवस्थाएँ ही सुनिश्चित हैं और अन्य अवस्थाएँ इन दोनों के मिले-जुले रूपान्तरण हैं।

इस नश्वर देह में मैं शैशव, शव और श्वासों का अर्थ भी भूल गया। मैंने श्वासों को साँस समझ लिया। मानव जब श्वासों का अर्थ जान लेता है, तो हर साँस, श्वास में रूपान्तरित हो जाती है। साँस का यथार्थ श्वास है।

क्योंकि देह की जीवन्तता एवं सदुपयोग श्वासों से है। साँस तो पशुवत् मैं असंख्य देहों में लेता रहा हूँ, देह पर देह मुझे मिलती रही है। देह के साथ तद्रूपता में जब मैं श्वास (शव आस) लूँगा, तब साकार देह जो साधन है, मुझे मेरे अपने निराकार विशुद्ध स्वरूप का **'अर्थ'** बताने के लिए सक्षम हो जाएगी। वही मानव-देह का यथा+अर्थ=यथार्थ है। हर साँस का यथार्थ है–श्वास=शव+आस। देह की विभिन्न अवस्थाओं का यथार्थ है–**'शैशव और शव'** का मिला-जुला स्वरूप। कोई भी अवस्था शैशव और शव के बिना नहीं है। यह देह की विभिन्न आर्थिक, सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, सुखमयी, दुःखमयी, उन्नति, अवनति, मान-अपमान आदि अवस्थाओं का यथा+अर्थ=यथार्थ एक **'भस्मी'** है। देह व जीवन में स्वतः प्राप्त और एकत्रित किए जाने वाले समस्त पदार्थों का यथा+अर्थ=यथार्थ एक **'भस्मी'** है।

यह **'भस्मी'** मुझे सांसों का यथार्थ **'श्वास'** जीवन की सभी अवस्थाओं का यथार्थ **'शैशव और शव'** इसलिए बताएगी, क्योंकि **'भस्मी'** देहान्तान्त और शवान्त है। श्वासों द्वारा किसी भी अवस्था शव+आस=श्वास पूरी होने पर अर्थात् शवत्व की मानसिक स्थिति में श्वास, **'भस्मास'** में रूपान्तरित हो जाती है। भस्मास श्वास से गुजर चुकी है, इसलिए श्वास का यथा+अर्थ जानती है। शव के पंच-महाभूतों में विलय के बाद भस्मी नामक पदार्थ बनता है। किसी रास्ते से गुजरने के बाद ही रास्ते का ज्ञान होता है। **'भस्मास'** न केवल श्वास का रूपान्तरण है, बल्कि उसका प्रमोशन ऊपरी सोपान है।**'श्वास'** जीवन का **'अर्थ'** और भस्मास पुरुषार्थ का दूसरा सोपान **'धर्म'** है। शवत्व और भस्मी के बीच की कड़ी भस्मास है। भस्मास का अन्त भस्मी है। भस्मी वह पदार्थ है, जो समस्त पदार्थों का यथार्थ है।

मानव ही श्वास ले सकता है। जब हम मानव-देह का **'अर्थ'** जानना चाहते हैं, तो साँसें स्वतः श्वास बन जाती हैं। जीवन का अर्थ जानने के लिए श्वासों द्वारा जीवन की किसी भी अवस्था में **'शवत्व'** की स्थिति से आत्मसात् होना होगा। **'शवत्व'** देहातीत है। जीवन में एकत्रित किए जाने

वाले और स्वतः प्राप्त पदार्थों का अर्थ यदि **'भस्मी'** नहीं है, तो वे पदार्थ निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में भटकाने वाले ही होंगे। **'भस्मी'** सभी पदार्थों का यथार्थ है, तभी हम देह व जीवन प्राप्त और एकत्रित होने वाले पदार्थों का रसास्वादन करेंगे। भोग पदार्थों का यथार्थ यदि भस्मी नहीं है, तो वे पदार्थ हमें भोगने लगते हैं। **'भस्मी'** की औपचारिकता नहीं आवश्यकता है, कि देह को पहले शव से गुजरना पड़ता है। विशेष देह का शव देह विशेष का है। विशेष देह की भस्मी देह विशेष की नहीं है, इसलिए भस्मी पदार्थातीत पदार्थ है और वही सब पदार्थों का यथार्थ है। मैं जीवात्मा हूँ, मुझे भोग पदार्थ नहीं, योग-पदार्थ भस्मी चाहिए। एक श्वास असंख्य साँसों पर भारी पड़ जाती है। मुझे मानव-देह मिली है। मुझे सतर्क रहना है, कि मेरा जीवन भी मानवीय हो, पशुवत् न हो।

यह मानव-जीवन शैशव से श्वास अर्थात् शव की आस लिए अविरल चलता है। एक बार साँस, श्वास (शव आस) बन जाए तो फिर श्वास कभी साँस नहीं बनती। मैं जीवन-काल में श्वासों द्वारा अपने शव की आस लिए चलता हूँ, कि "हे प्रभु ! मुझे शव की नाईं बना दो, मुझे शववत् बना दो।" शव किसी से सम्बद्ध नहीं होता, लेकिन शव से सब सम्बद्ध होते हैं। उसके लिए अर्थी बनती है। शमशान में तैयारियाँ होती हैं। उसके लिए सम्पूर्ण क्रियाकर्म का कार्यक्रम तैयार होता है। उसका गन्तव्य मात्र शमशान है। अर्थी मात्र शव को उठाती है तथा अर्थी को जीवित लोग उठाते हैं। जीवन का अर्थ जानने वाला **'अर्थार्थी'** (अर्थी का अर्थ जानने वाला) होना चाहिए। अर्थी, जीवन का अर्थ बताती है जिसे हम उपेक्षित करते हैं और हम जीवन के **'अर्थ'** को छू भी नहीं पाते।

जीवन में समस्त मांगों और चाहतों का यथार्थ एक माँग और एक चाहत है, कि "हे प्रभु ! मुझे मेरी देह की भस्मी दिखा दो। यदि तू कृपालु, दयालु, पतित पावन, क्षमावान और दयावान है, जैसाकि शास्त्रों और पुराणों में कहा गया है, तो मेरी एक चाहत पूरी कर दे। हे **'एक'** (परमात्मा) मुझ **'एक'** (जीवात्मा) की **'एक'** मांग या इच्छा (मेरी देह की भस्मी से लिप्तता)

पूरी कर दे। देह की भस्मी तूने मुझे कभी नहीं दिखाई और किसी को भी नहीं दिखाई। मेरी देह के साथ धारणा हो चुकी है, वह छूट नहीं सकती। तूने औरों की देह भस्मी मुझे कितनी बार दिखाई है उससे मुझे तेरी कृपा से ज्ञान हो गया है, कि देह रूप में मैं कुछ बन सकूँ या न बन सकूँ, चाहे मेरी चाहतें पूरी हों या न हों, मेरी देह की भस्मी तू अवश्य बनाएगा और किसी भी दिन बना सकता है। उस भस्मी का मुझे क्या लाभ होगा ! मेरी देह की भस्मी होगी और मेरे किसी काम की नहीं होगी। मैं अपनी देह की भस्मी को जीवन-काल में देह के रहते हुए आत्मसात् करना चाहता हूँ। बस मेरी एक ही चाहत है, यदि तू समर्थवान है, तो मेरी यह बस एक चाहत पूरी कर दे। तू परमात्मा है, तू लोगों की असंख्य चाहतें पूरी करता रहता है, मेरी एक चाहत पर तूने ध्यान ही नहीं दिया। मेरी देह की भस्मी निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य है, वह तूने मुझसे छिपाकर रखा है। मुझे तेरे प्रभुत्व नहीं चाहिए और मैं इतना प्रदूषित हो चुका हूँ, कि अपना स्वरूप देह का यथार्थ एवं तेरे दर्शन का अधिकर हमेशा के लिए खो चुका हूँ।''

हे प्रभु ! अब मुझसे तू केवल वही करवा जिससे मैं अपनी भस्मी से आत्मसात् होता रहूँ। मैं ध्यान में अपने हाथों से अपनी देह का क्रियाकर्म करूँ। भस्मी बने तो उसे रतन जड़ित पात्र में रखकर गंगा जी में स्वयं प्रवाहित करूँ। धीरे-धीरे सद्गुरु-कृपा से मेरी स्मृति भगवती जाग्रत हो जाएगी। मेरा मृत्यु का भय समाप्त हो जाएगा क्योंकि भस्मी शवान्त है। भस्मी की अवधारणाा मेरी विरक्ति को जाग्रत कर देगी और मेरे लिए अन्य सांसारिक पदार्थों का महात्म्य समाप्त हो जाएगा। यह एक पदार्थ (भस्मी) अन्य सभी पदार्थों पर भारी पड़ता है। जब तक संसार के पदार्थोंञएवं साकार जगत की विभिन्न विधाओं का महात्म्य मेरे लिए समाप्त नहीं होगा, मैं इन पदार्थों का भोग कर ही नहीं सकता।

'भस्मी' देह से व देह का वह पदार्थ है जो मुझे मेरा शाश्वत् **'पद'** दिला देती है। अन्य पदार्थों ने मुझे मेरे पद से **'च्युत'** कर दिया। मैं जीवात्मा से तुच्छ जीव बनकर भटकने लगा। मुझे अपने शाश्वत् पद से

अच्युत होने के लिए देह के इस एक पदार्थ (भस्मी) से किसी भी तरह से आत्मसात् होना होगा। यह प्रकरण कृपा-साध्य है। जिस देह से धारणा करने के कारण **'मैं'** (जीवात्मा) पद से च्युत हुआ उसी देह से यह पदार्थ बनेगा। अतः देह धारणा हटाने और अपने पद से अच्युत होने के लिए देह की भस्मी की अवधारणा करनी ही होगी। अन्य कोई उपाय या मार्ग नहीं है। तभी मेरा काल-बन्धन, कर्म-बन्धन एवं प्रारब्ध कट पाएगा। **'मैं'** मानव हूँ। मुझे अपनी पद की गरिमा को अनाच्छादित करना ही होगा। जैसे ही मैं देह की भस्मी रूपी इस पदार्थ का चिन्तन करूँगा तो तुरन्त मुझ जीवात्मा को अपनी स्मृति आ जाएगी। जीवात्मा के गुण और भस्मी के गुण मिलते-जुलते हैं। **'मैं'** और **'भस्मी'** के मिलने से वह देह विदेह देह हो जाएगी। वह महा मानव महाराज जनक की तरह विदेह होगा। वह तत्त्वज्ञ विभूतियों से विभूषित होगा। **'भस्मी'** पंच-तत्त्वों की देह का व देह से प्रकट होने वाला तत्त्वातीत तत्त्व है, जिसका पंच-महाभूतों की देह सहित जगत के प्रपंच से कुछ लेना-देना नहीं है।

पंच निराकार महाभूतों से साकार देह बनी और इसके पंच-महाभूतों में विलय के बाद भस्मी तत्त्व पदार्थ रूप में दृश्यमान हुआ। सम्पूर्ण देह जो असंख्य पदार्थों से स्वयं में मण्डित थी और बाहरी जगत में असंख्य पदार्थों के लिए लालायित होते संघर्षरत थी। अन्ततः अन्तान्त में इस एक पदार्थ मुट्ठी भर भस्मी रूप में शेष रह जाती है। **'अग्नि'** द्वारा देह दहन होकर पंच-महाभूतों में विलय होने पर बचने वाली इस भस्मी को जल में डाल दिया जाता है। यह पदार्थ देह में संघनित तत्त्वों और देह के पालन एवं विकास के लिए एकत्रित पदार्थों से अतीत है। एक देह का मात्र एक पदार्थ है, जो अनेकों का भी है। अर्थात् समस्त देहों में जो थी, जो है और जो होगी उनमें यह देहातीत पदार्थ **'भस्मी'** समान (Common) है। मुझे मेरी देह का तत्त्वातीत तत्त्व भस्मी चाहिए। यह तत्त्व मेरा **'ममत्व'** है, मेरा है। 'हे प्रभु ! मुझे मेरा जीवत्व और ममत्व दे दे। मैंने जन्मों-जन्मान्तरों में बहुत सुना है, कि मैं अहंकार एवं ममकार से भरा हूँ। मैं वही हूँ, अब मैं अपनी ही देह का

'तत्त्व' (भस्मी) चाहता हूँ। अब यह मेरा ममकार नहीं ममत्व है। हे सच्चिदानंद, हे निराकार, हे एक सदाशिव, महाशिव तुझ एक के सम्मुख मैं एक अपनी देह के **'एक'** पदार्थ (भस्मी) की चाहत रख रहा हूँ, इसे तू चाहे तो तू पूरी कर सकता है, नहीं तो भटक तो रहा ही हूँ और भी भटकता रहूँगा। मैं पदार्थ प्रिय हूँ, जन्मों-जन्मान्तरों से असंख्य पदार्थों के लिए भटकता रहा हूँ। मुझे देह में आसक्ति है, मैं अहंकार और ममकार से भरा हुआ हूँ। 'मैं' देह धारणा है, इसलिए मेरी देह का एक पदार्थ, जो मेरी देह की वजह से है, उस भस्मी रूप मेरे पदार्थ की मुझे अनुभूति करा दे, कि वह मेरा है। 'मैं देह हूँ' मेरा निमार्ण, पालन और संहार करने वाले परमात्मा ! मुझे मेरा संहार दिखा दे। मैंने निर्माण होते देखा, पालन होते देखा, मैं संहार क्यों नहीं देख सकता ? तेरे और मेरे बीच का भेद तब भी बना रहेगा ('तू' 'तू' है 'मैं' 'मैं' हूँ) मुझे मेरा जीवत्व, ममत्व और भसमत्व दे दे। तूने मुझे कभी नहीं दिया, इसलिए मैं असंख्य पदार्थों की चाहतों में भटकता रहा हूँ। यह भस्मी भी तो पदार्थ है और मेरी देह से प्रकट होगा। अन्य पदार्थ मेरी देह व देहों के लिए थे। ये भस्मी रूप पदार्थ मेरी देह का है। यदि तू दाता है, तो तू मुझे मेरे मम (देह) का तत्त्व (भस्मी) अभी दे। यह तत्त्व मेरी देह के शव के पंच-महाभूतों में विलीन होने के बाद प्रकट होने वाला पदार्थ है। उसका कारण मेरी देह है। अतः वह पदार्थ मेरा है, तू मुझे उसकी अनुभूति करा दे। वह देह से प्रकट होगा और प्रकट होने के बाद मेरी देह का नहीं होगा। मैं अपनी देह के रहते उस अपने तत्त्वातीत तत्त्व से आत्मसात् होना चाहता हूँ। यह तत्त्व मेरा ममत्व है। मेरा ममत्व मेरे अहंकार व ममकार से बहुत ऊँचा है।

इस पदार्थ की अनुभूति होते ही मुझमें विरक्ति जाग्रत हो जाएगी। विरक्ति समस्त विभूतियों का मूल स्रोत है। इस पदार्थ से मुझे जीवन का अर्थ मिल जाएगा। मुझे जीवन में विभिन्न वस्तुओं का महत्त्व नहीं रहेगा। उन वस्तुओं की मुझमें लिप्तता हो जाएगी। क्योंकि 'भस्मी' रूप 'वस्तु' (पदार्थ) ही वस्तुतः वह वस्तु है, जो वास्तव में देह के और स्वयं मेरे

(जीवात्मा) के पद का अर्थ है। अब वह अपौरूष देह मेरे साथ लिप्त हो जाएगी और उसका काल स्वयं में साकार बन जाएगा।

भस्मी को अंग्रेजी में ऐश (Ash) कहते हैं। अरे ! ऐश के लिए कैश नहीं चाहिए। Cash वस्तुतः Smash कर देगी। **'भस्मी'** के अधिग्रहण से ऐश होगी, क्योंकि अन्य पदार्थों का महात्म्य समाप्त हो जाएगा और पदार्थ स्वतः आपके पास आने प्रारम्भ हो जाएँगे। आप कुछ रखना कुछ बाँट देना। जीवन-काल में उस Ash को पकड़ लो तो वह संहार जीवन का श्रंगार बन जाएगा। इस एक पदार्थ (Ash अथवा भस्म) की अनुभूति एवं अधिपत्य के बाद मैं पदार्थाधिपति बन जाऊँगा। मुझे समस्त पदार्थों का स्वामित्व मिल जाएगा। मैं चाहूँ न चाहूँ सब पदार्थ मेरी सेवा में रहेंगे। अवस्थाओं और पदार्थों की प्राप्ति और स्वामित्व में अन्तर है। **'शवत्व'** अवस्थाओं का स्वामित्व है और **'भस्मी'** पदार्थों का स्वामित्व है। मेरी आत्मा देह के रहते इस देहातीत पदार्थ, भस्मी को आत्मसात् कर ले। इसके लिए श्वासों से शवत्व और भस्मास से भस्मी की सिद्धि आवश्यक है।

जीवन-काल में **'शव'** जो अवस्थाओं का स्वामी है, उसके लिए साँसों का श्वास में रूपान्तरण और फिर भस्मास द्वारा भस्मी स्थिति की अनुभति द्वारा समस्त पदार्थों के स्वामित्व की प्राप्ति होती है।

सांसों का स्वामित्व–**श्वास**

अवस्थाओं का स्वामित्व–**शवत्व**

पदार्थों का स्वामित्व–**भस्मी**

मानव-देह में श्वास द्वारा शवत्व का अधिग्रहण करने के बाद भस्मास द्वारा जीवन-काल में मैं भस्मीमय हो जाऊँ, तो मैं शिवत्व की अनुभूति द्वारा समस्त विभूतियों का स्वामित्व प्राप्त कर सकता हूँ। समस्त विभूतियाँ मेरे से, मेरे लिए प्रकट होंगी, यही मेरा कर्म है।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(26 जून एवं 2 से 5 जुलाई, 2009)

चमत्कार

उत्कृष्टतम मानव-देह लेकर भी जीवन में हमारी **मस्ती** में जो सबसे बड़ी बाधा बनती है, वह नाम-रूप की देह से तद्‌रूपता और उस पर आधारित छोटे से जगत के रूप में हमारी तुच्छ सी **हस्ती** है। जब हमारा मस्तक अपनी बुद्धि द्वारा सद्‌गुरु के श्री चरणों में समर्पित हो जाएगा और प्रभु वह समर्पण स्वीकार कर लेंगे, तभी जीवन में मस्ती आती है। अध्यात्म स्वयं में मानव-बुद्धि से परे देहातीत निराकार का विज्ञान है। सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के मायिक प्रकाट्‌य का जितना भी प्रपंच है और जिसका प्रतिनिधित्व मेरी एक देह करती है, वह सब ईश्वरीय मन और माया का चमत्कार है। निराकार का साकार में हर प्रकाट्‌य स्वयं में चमत्कार है। साकार प्रकाट्‌य में स्वतः होते कृत्यों में मेरे द्वारा किसी कृत्य की आवश्यकता नहीं है। केवल हर समय, हर स्थिति व स्थान अर्थात् काल से बँधी देह की हर विधा को **'सद्'** से जोड़ते रहना है। यदि इस प्रपंचमय चमत्कार को **'सद्'** से नहीं जोड़ा और जीव के मन्द संकल्प से कुछ प्रकट हो गया, तो उसमें हस्तक्षेप एवं स्व-आसक्ति अवश्य होगी तथा कर्ता भाव या फिर निमित्तता का भाव अवश्य रहेगा। चमत्कार उसे कहते हैं, जो हमारे मन-बुद्धि से परे हो। मानवीय बुद्धि जिसका कोई उत्तर न दे सकती हो और न ही दे पाने की सम्भावना हो।

प्रभु ने मानव को अपनी स्वयं की चेतनायुक्त सर्वश्रेष्ठ बुद्धि इसलिए दी, कि वह मायिक प्रपंच के आगे निरुत्तर हो जाए और इस प्रकट चमत्कार का आनन्द ले। सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्कृष्ट मानव-बुद्धि स्वयं में निरुत्तर होकर

जब उत्तर पाने में अपनी असमर्थता घोषित कर देती है, तो उसे प्रकट जगत की प्रत्येक विधा **'चमत्कार'** नज़र आती है। जहाँ बुद्धि निरुत्तर नहीं होती, वहाँ साकार जगत में स्वयं **उत्तरदायी** बन जाती है। हम मानव-देह की सूक्ष्मता को मात्र भौतिक दृष्टि से भी देखें और बुद्धि निरुत्तर होकर उत्तरदायित्व का अभिमान त्याग दे, तो भौतिक और आध्यात्मिक जगत का अन्तर समाप्त हो जाता है। किसी के पास इसका क्या उत्तर है, कि तुम्हें मानव-देह क्यों मिली? तुम अमुक-अमुक तिथि को, अमुक-अमुक माता-पिता के अंश से ही पैदा क्यों हुए? असंख्य प्राणी हैं—चौरासी लाख योनियाँ हैं जलचर, नभचर, थलचर, कीट-पतंगे आदि। मैं यह तो सोचूँ, कि मैं मानव क्यों हूँ? अमुक समय पर मानव-देहधारी होकर पृथ्वी पर क्यों उतारा गया? जब गर्भ ठहरता है, तो एक ओवम को घेरे हुए चालीस करोड़ शुक्राणु होते हैं, जिसमें से एक शुक्राणु गर्भ को गर्भित करता है, शेष सब समाप्त हो जाते हैं। वह शुक्राणु कौन से जगत का है और चालीस करोड़ में से उसी को प्रविष्टि क्यों मिली एवं जब वह मानव-देह बनेगा, तो क्या चमत्कार होगा? इस सब का निर्णय जिस बुद्धि की सोच के द्वारा होता है, उसके आगे मानव-बुद्धि का निरुत्तर होना स्वाभाविक ही होना चाहिए। लेकिन अक्सर ऐसा होता नहीं।

चमत्कार हमेशा आकार में होता है। निराकार में कोई चमत्कार नहीं है। आकार स्वयं में चमत्कार है, लेकिन जिसको निराकार पर अधिकार हो जाएगा, यह चमत्कार उसके लिए है। निराकार पर अधिकार केवल उसी को हो सकता है, जिसकी अपनी बुद्धि निरुत्तर होकर सद्गुरु के श्री चरणों में समर्पित हो गई है। संसार में बुद्धि को **'मत'** कहते हैं। किसी पागल को यह कह कर नकारा जाता है, कि इसकी **'मत'** मारी गई है। आध्यात्मिक दृष्टि से जिसकी अपनी मत (बुद्धि) मारी जाए, वही मतवाला होकर ईश्वरीय दृष्टिकोण से समस्त सृष्टि का हर प्रकार से रसास्वादन ही करता है। वह राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक अथवा अन्यथा किसी भी क्षेत्र के मत-मतान्तरों में नहीं फँसता। वह यही कहता है, कि ''जो मैं जानता हूँ, मैं

वही क्यों जानता हूँ, मैं नहीं जानता। जो मैं नहीं जानता, वह क्यों नहीं जानता, मैं नहीं जानता। जो मैं जानना चाहता हूँ, मैं वही क्यों जानना चाहता हूँ, मैं नहीं जानता। जो मैं नहीं जानना चाहता, वह क्यों नहीं जानना चाहता, मैं नहीं जानता।'' उत्कृष्टतम मानवीय बुद्धि से मैं स्वयं में पूर्ण आश्वस्त हो जाऊँ, कि मैं कुछ नहीं जानता। Duffer will become Buffer and would never suffer यही बुद्धि की सर्वोत्कृष्टता की सिद्धि है। बुद्धि से जानकर मन से मान लें और इस जान्यता और मान्यता को सद्‌गुरु के चरणों में समर्पित करके उसकी शरण में जाना ही मानव-जीवन का लक्ष्य है। इस अन्तिम **'सद्'** की स्वीकृति की सद्‌गुरु द्वारा प्रामाणिकता, सत्यापन एवं पुष्टि ही सिद्धि है। उस अवस्था में निर्लिप्त होकर हम देह सहित जगत का तमाशा देखेंगे और यह सिद्धि भवसागर से पार ले जाएगी।

'जानता नहीं मैं' इन तीन शब्दों के पहले तीन वर्ण लें—**ज, न, म।** मेरा **जनम** क्यों हुआ ? मानव जनम की सार्थकता और यथार्थता को जानने के लिए मूल मन्त्र यही है—''जानता नहीं मैं''। मैं मानव देहधारी क्यों हूँ, अमुक स्त्री या पुरुष से मेरा विवाह क्यों हुआ, मेरे बच्चों की पृथक्-पृथक् अभिरुचियाँ क्यों हैं ? मैं कब, कैसे, क्यों, कहाँ मरूँगा, मैं नहीं जानता। यह मेरी बुद्धि का निरुत्तर हो जाना है। यदि निराकार के सम्मुख होने के लिए साकार का समर्पण कर दिया, तो देह सहित जगत की कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की सृष्टि का समस्त साकार मुझ जीवात्मा के लिए ही होता है।

एक **'तू'** और एक **'मैं'** और एक मानव-देह। एक मानव-देह तो एक जगत। अन्यथा एक **'तू'** और एक **'मैं'**। इस द्वैत में भी अद्वैत है, कि **'तू'** है तो **'मैं'** हूँ। जब मैं एक देह नहीं होता, तो जगत भी नहीं होता। जब तक मैं स्वयं को देह के साथ नाम-रूप की अवचेतना में न पहचानू तब तक जगत नहीं होता। जैसे ही **'मैं'** (चेतन जीवात्मा) चेतना अथवा अवचेतना में नाम-रूप की देह के साथ तद्‌रूप सा होता हूँ साकार सृष्टि के रसास्वादन हेतु अथवा अवलम्बन लेता हूँ, तो तुरन्त साथ-साथ, स्वतः उस समय की देह की स्थिति के अनुसार उस समय का जगत प्रकट हो जाता है।

यह स्वयं में चमत्कार है, कि मुझे ऐसी मानव-देह मिली है, जो युगों-युगान्तरों के सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की प्रतिनिधि, संघनित स्वरूप एवं साकार प्रकाट्य का आधार है। मानव अपनी बुद्धि का अधिकतम उपयोग करके भौतिक रूप से कुछ भी किसी भी सीमा तक प्राप्त कर सकता है, लेकिन अन्ततः सीमित ही रहता है। जो कम से कम समय में अधिकतम भौतिक प्राप्तियाँ कर लेता है, उस व्यक्ति को सांसारिक दृष्टि से बहुत बुद्धिमान, चतुर, हर प्रकार से निपुण एवं सफल कहा जाता है। बड़े-बड़े भूमिपति इस रत्नगर्भा वसुन्धरा के एक छत्र सम्राट अपनी तीव्रतम बुद्धि के अधिकतम उपयोग द्वारा ही बने। लेकिन, अन्ततः असन्तुष्ट ही रहे। **'सदुपयोग'** शब्द का कोई अंग्रेज़ी अनुवाद नहीं है, उपयोग के लिए use शब्द का प्रयोग किया जाता है। मानवीय बुद्धि का use, good use, better use होते-होते best use तक आते ही साथ-साथ Misuse शुरू हो जाता है। इसलिए बुद्धि के best use के साथ ही साथ Misuse होते-होते स्थिति Disuse तक पहुँच जाती है। साकार की सीमितता में भी असीमता नज़र आती है। यदि मात्र साकार पर निगाहें रखते हुए निराकार से विमुख हुए और बुद्धि का Surrender नहीं किया, तो साकार बवण्डर बन जाता है और जीवन अधोगति की ओर जाता हुआ अनर्थकारी हो जाता है। यह अधोगति भी स्वयं में असीम है। क्योंकि सदुपयोग best use से भी परे है।

मानव होने के नाते यह विचार करना आवश्यक है, कि जीवन में किसी भी सीमा तक हुई प्राप्तियों का **'अर्थ'** मेरे लिए क्या है? जीवन के अर्थ की ओर दृष्टि जाने से पहले समस्त साकार प्राप्तियों की निरर्थकता का आभास होने लगता है। यदि देह सहित समस्त साकार निरर्थ नहीं लगा, तो उनके वास्तविक अर्थ को जानने के लिए जिज्ञासा उत्पन्न नहीं होगी। हम अपनी सीमित सीमाओं के अति-अति विस्तार में भी असंतुष्ट रहते हुए आसक्तियों को लेकर जन्मते-मरते रहेंगे। बुद्धि की अधिकतम सीमाओं की सक्षमताओं में हुई प्राप्तियों का **अर्थ'** जानने में मानव-बुद्धि जब अन्तत स्वयं को अक्षम पाती है, तो वहाँ बुद्धि का समर्पण हो जाता है। वहाँ हर प्रकार की साकार

प्राप्तियों के प्रति विरक्ति का भाव जाग्रत हो जाता है। सबका महात्म्य समाप्त हो जाता है। इस स्थिति में दैवीय अधिनियमानुसार सद्गुरु साकार देहधारी होकर प्रकट हो जाता है।

निर्माण, पालन एवं संहार के समस्त प्रकाट्य का आधार **'मैं'** एक मानव-देह रूप में हूँ। देह और जगत दोनों एक निराकार मानसिक स्थिति से प्रकट होते हैं। देह हो लेकिन कह न सकूँ, कि 'मैं देह हूँ' तो देह व जगत नहीं होगा। देह होगी तो जगत होगा। जगत, देह सहित होगा और देह, जगत सहित होगी। मुझ चेतन जीवात्मा को देह व जगत के दिग्दर्शन हेतु, देह का क्षणिक अवलम्बन लेने के लिए नाम-रूप की अवचेतना में आना आवश्यक है। मानव-देह नाम-रूप की अवचेतना में समस्त महाब्रह्माण्डों व चराचर जगत की कुल माया का प्रतिनिधित्व करती है। यह देह साकार प्रकाट्य का आधार भी है, यदि प्रतिनिधित्व समाप्त करना हो तो आधार हटाना पड़ेगा।

मेरी देह सहित जगत स्वप्न है, लेकिन मुझे स्वप्न देखते हुए इसकी स्वप्नवत् प्रतीति नहीं होती। किसी स्वप्न के टूटने के बाद मैं कहता हूँ, कि मैंने स्वप्न देखा। मेरे किसी भी स्वप्न का **मूल** मेरी देह है। यदि उस स्वप्न में से मेरी देह निकल जाए, तो स्वप्न समाप्त हो जाता है। जब तक देह रूप में **'मैं'** हूँ तब तक स्वप्न चलेगा। एक मेरी देह जो अवचेतना में है, सम्पूर्ण स्वप्न का मूल या आधार है। पेड़ की जड़ यदि सूख जाए तो पेड़ सूख जाता है। **'स्वप्न'** का सद् यह है, कि यह सपना है। स्वप्न के दौरान यदि स्वप्न का सद् जानना है, तो मुझे अपनी नाम-रूप की एक देह का **'सद्'** जानना होगा। कृपया एकाग्र करें, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

मानो आज रात को मुझे एक स्वप्न आया। जब मैं निद्रा से उठता हूँ और उस स्वप्न-सृष्टि के विषय में विवेक बुद्धि से विचार करता हूँ तो पूर्णतः आश्वस्त हो जाता हूँ, कि अब मैं वह स्वप्न वाली देह नहीं हूँ। रात्रि का स्वप्न उस स्वप्न वाली देह ने देखा तो Memory तो स्वप्न वाली देह की है। इसी प्रकार जब देह के अतीत की किसी देह के साथ घटी घटना की मुझे याद आती है, तो Memory उस विशिष्ट देह की होती है। उसे मैं अब चालीस वर्ष

बाद सुनाता हूँ। Memory तब की देह की है उसे मैं आज की देह में Memory से सुनाता हूँ।

रात के स्वप्न की Memory उस देह को होगी जो स्वप्न में थी क्योंकि उस दौरान मैं तो सो रहा था, मेरी आँखें बंद थी। स्वप्न का वर्णन करते समय मुझे निद्रा की स्मृति नहीं है। मैं देह रूप में सुषुप्त था साथ ही स्वप्न में स्वप्न वाली देह रूप में उठा हुआ भाग-दौड़ भी कर रहा था। स्वप्न वाली देह, वह देह नहीं है, जो सोई हुई थी और अब निद्रा से उठी हुई देह स्वप्न वाली देह नहीं है। स्वप्न वाली देह सहित जगत का वह एक सम्पूर्ण एपीसोड एक मैं (Self) की देह से अवचेतना में क्षणिक तद्‌रूपतावश प्रकट हुआ था। उसके लय हो जाने पर दूसरी देह सहित जगत प्रकट हुआ। इस देह ने वह स्वप्न वाला दृश्य नहीं देखा और **'मैं'** यदि हूँ तो स्वप्न के दौरान मैं तो सोया हुआ था। मेरी स्मृति कैसी और वह सुषुप्ति मेरी स्मृति में नहीं है ? सोया हुआ स्वप्न में भाग-दौड़ कैसे कर सकता हूँ ? लेकिन मुझे **'मैं'** (Self) लगी हुई सक्रिय स्वप्न वाली देह व जगत की स्मृति है। वह जो स्वप्न में देह सहित जगत के रूप में प्रकट हुआ और यह मैं जो निद्रा से उठकर इस तथाकथित जाग्रत देह व जगत में है, दोनों में कुछ Common अवश्य है, जो मुझे उस स्वप्न सृष्टि के साथ जोड़ रहा है। वह Common बिन्दु मेरी सुषप्ति के साथ मुझे नहीं जोड़ पा रहा है।

'मैं' एक ही सोया था और उस एक ही से सारा स्वप्न अनेक नाम-रूपों में प्रकट हुआ। उसमें एक देह रूप में मैं भी था और जो एक मैं था, वह सोया वाला नहीं था। अतः एक विशिष्ट मानसिकता से सम्पूर्ण स्वप्न प्रकट हुआ जिसमें मैं **भी** था और उस सम्पूर्ण प्रकाट्य का आधार स्वप्न की उस एक देह रूप में **'मैं'** ही था। इसी प्रकार जो स्वप्न सुना रहा हूँ इस जगत में देह रूप में **'मैं' भी** हूँ और इस सम्पूर्ण प्रकाट्य का आधार मैं **ही** हूँ। वह स्वप्न सृष्टि भी इस तथाकथित जाग्रत सृष्टि की तरह से ही थी। यदि स्मृति से मैं स्वप्न सुना रहा हूँ, तो जो मैं सोया हुआ था वह स्वप्न वाला नहीं था और जो स्वप्न वाला था, वह यह तथाकथित जाग्रत मैं नहीं हूँ। तो स्मृति

किसकी है ? मस्तिष्क में स्मृति है अथवा स्मृति में मस्तिष्क है। यदि मस्तिष्क में स्मृति होती, तो सोई हुई देह स्वप्न वाली देह नहीं थी और स्वप्न वाली देह जिसने वह स्वप्न देखा, वह तथाकथित जाग्रत यह देह नहीं है। इसने वह स्वप्न देखा ही नहीं। तो मस्तिष्क किस देह का है ? स्वप्न वाली देह स्वप्न-सृष्टि के साथ ही लय हो गई, सुषुप्ति को देखने वाली कोई देह नहीं है जिसमें वह स्वप्न उभरा, कुछ देर चला और लीन हो गया। स्वप्न वाली देह ने जो-जो देखा मैं इस तथाकथित जाग्रत देह में सुना रहा हूँ, कुछ तो दोनों में Common होगा। यहाँ एक स्मृति तत्त्व Common है, जिसमें स्वप्न वाली देह और यह तथाकथित जाग्रत देह दोनों हैं। वह स्मृति तत्त्व अदृश्य है और उसका प्राकट्य **'मैं'** शब्द में होता है।

सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड की **'मैं'** एक है, देह के लिए है और देहातीत है। हर अवस्था, धर्म-कर्म, सम्बन्ध, पारिवारिक, आर्थिक, सामाजिक स्थितियाँ, विभिन्न प्रतिभाएँ, पद-प्रतिष्ठा की स्थिति **'मैं'** साथ लगने पर ही प्रमाणित होती हैं। पशु जगत **'मैं'** नहीं लगाता। हम मानव हैं, हमें मानव-देह मिली है। हमें **'मैं'** का दिग्दर्शन सद्गुरु-कृपा से करना आवश्यक है। **'मैं'** को जानने की **'तलब'** ही मानव देह व जीवन का मतलब (अर्थ) है। **'मैं'** सबका Common Factor है। सब अलग-अलग अनेक हैं और सब एक ही **'मैं'** लगाते हैं। मैं Activating factor है।

सारी देहें बिना **'मैं'** लगाए बेकार एवं निष्क्रिय होती हैं। **'मैं'** लगाने पर ही **'मैं'** कुछ भी होता हूँ। कोई **'मैं'** लगाने की स्थिति में नहीं है और सुषुप्त है, वह मेरे लिए **'तू'** भी नहीं होता। उसे उठाना पड़ेगा। वह **'मैं'** लगाएगा तब वह मेरे लिए **'तू'** होगा तथा किसी काम का होगा। कोई यह नहीं कहता, कि मैं सो गया हूँ' लेकिन उठते ही मैं कहता हूँ, कि 'मैं उठ गया हूँ।' उठने का मुझे अभिमान हो जाता है इसलिए जो देह सहित जगत मेरे लिए उठा, मेरी जिम्मेवारी बन जाता है। जब मैं सोता हूँ तो अपनी देह सहित प्रकट एवं अप्रकट जगत दोनों को लेकर सोता हूँ। इसका मुझे अभिमान नहीं होता, कि मैं देह व प्रकट-प्रकट एवं अप्रकट-प्रकट दोनों जगत को अपने साथ लेकर सो

रहा हूँ, इसलिए ये दोनों जगत मेरे विश्राम में बाधा नहीं बनते। विश्राम सुषुप्ति का नहीं, निरभिमानता का होता है।

'मैं' देहातीत है, इसलिए सब देहों की एक ही है। जब **'मैं'** जाग्रत होगी, तो यह उठने का अभिमान समाप्त हो जाएगा। जागृति के लिए निद्रा से उठ कर सद्गुरु-कृपा से ध्यान समाधि द्वारा देहातीत क्षेत्र का स्पर्श आवश्यक है। ध्यान समाधि में जाने के लिए प्रकट-प्रकट जगत से तो मैं आँखे-कान बंद कर सकता हूँ, लेकिन जो साकार जगत व उसकी विभिन्न विधाएँ अप्रकट रूप से मेरे एक के **'मैं'** लगाते ही प्रकट हो जाती हैं वे सबसे बड़ी बाधा बनती हैं। **'मैं'** एक से अनेक तो हूँ ही, क्योंकि जब देह रूप में मैं हूँगा, तो अनेक स्वतः ही साथ होंगे ही। जो जगत मेरे सम्मुख मेरी अपनी देह के साथ **'मैं'** लगाते ही स्वतः एवं साथ-साथ प्रकट-प्रकट और अप्रकट-प्रकट रूपों में प्रकट हुआ, उसके प्रकटीकरण का कारण मैं नहीं हूँ और मेरे हाथ में इसकी कोई विधा नहीं है। लेकिन वह समस्त जगत मेरे लिए वैसा ही होता है, जैसा उस समय **'मैं'** होता हूँ। यहाँ तक कि उस समय का मौसम भी **'मो सम'** (मेरे समान) होता है। जागृति में देह सहित जगत के होते हुए न होने का ज्ञान होता है, लेकिन अभिमान नहीं होता। जागृति में अपने स्वरूप का ज्ञान होता है, इसलिए वह समाधि है।

अदृश्य एक ही है, दृश्यमान पृथक्-पृथक् हैं। रात के सपने का दृश्य अलग था। अब निद्रा से उठे हुए मेरी देह सहित जगत का दृश्य अलग है। उस unseen या अदृश्य (**'मैं'**) ने मुझे इन बदलते दृश्यों में फँसा दिया। विविध दृश्यों वाली देहें तथा उन पर आधारित जगत पृथक्-पृथक् हैं। अब मैं न वह देह हूँ न वह जगत है, लेकिन अदृश्य तत्त्व एक ही है, जो इन विविध पृथक्-पृथक् दृश्यों में निरन्तरता दिखा रहा है। मैं इन साकार दृश्यों में अपने को ही अपने से छोटा-बड़ा मानता हुआ भ्रमित हूँ। नाम-रूप की देह की अवचेतना में हुई तद्रूपता एक मानसिकता है जो स्वयं में अदृश्य एवं निराकार है। उस मानसिकता से ही दूसरा एपीसोड देह सहित जगत बनकर प्रकट होता है।

नाम-रूप की मात्र तद्रूपता नहीं है बल्कि तद्रूपता में असंख्य तद्रूपताएँ हैं। इस तद्रूपता दर तद्रूपता में मेरा विशुद्ध जीवात्मा स्वरूप ढक गया। प्रत्येक तद्रूपता ने मेरी विभूतियों को विकृतियाँ बना दिया। माया का सौन्दर्य यह है, कि देह सहित जगत का हर एपीसोड स्वयं में पूर्ण होता है। जो एक बार प्रकट होता है वह दुबारा कभी नहीं आता। यह धर्म-कर्म, मान-मर्यादाएँ, पाना-खोना, सम्बन्ध, गुण-अवगुण, शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य सब विशिष्ट मानसिक तद्रूपताएँ हैं, जो पुनः कभी नहीं आएँगी। देह पल-पल परिवर्तनशील है। हर परिवर्तन के साथ नाम-रूप की अवचेतना में जीव बना जीवात्मा तद्रूप होता है। उन समस्त परिवर्तनों की श्रंखला को इसने भ्रमवश एक ही देह मान लिया। यह मानसिकता उस देह की विभिन्न विधाओं में प्रकट हुई। मानव देह धारण करके मेरा मात्र यही कर्म है, कि जिस देह की हर स्थिति, अवस्था के साथ मैंने तद्रूपता की उस देह के निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **'भस्मी'** अवस्था से भी कुछ देर आत्मसात् हो जाऊँ। यह अवस्था देहातीत है और इसी अवस्था में मेरा विशुद्ध स्वरूप छिपा है। जब जीवात्मा को अपने विशुद्ध स्वरूप की सद्गुरु कृपा से सिद्धि हो जाती है, उसके बाद भी नाम-रूप की अवचेतना में देह की तद्रूपता सी में देह सहित जगत के विभिन्न एपीसोड प्रकट होते हैं, लेकिन मेरे लिए वह ईश्वरीय चमत्कारपूर्ण लीला होती है, जिसका मैं भरपूर रसास्वादन करता हूँ।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(3 से 19 फरवरी एवं 11 अगस्त 2009)

भाव एवं प्रकाट्य

देह स्वयं में एक निराकार एवं अदृश्य भाव (देह भाव) का साकार में प्रकाट्य है। प्रत्येक देह का एक नाम-रूप है, आकार-प्रकार है एवं अन्य विशिष्टताएँ हैं। उसके साथ जुड़े असंख्य आकार हैं। सबके पद-प्रतिष्ठा, देश, समाज, जाति, कुल, गोत्र, धन-सम्पदा, परिवार, नाम-यश, गुण-अवगुण, प्रतिभा, कला, रिश्ते-नाते, लिंग, धर्म-कर्म,-कर्तव्य औरमायाके तीनों गुण आदि हैं। प्रश्न उठता है, कि सुषुप्ति, विस्मृति और मूर्च्छा में सब आकार कहाँ जाते हैं? इन स्थितियों में हमारी अपनी देह सहित समस्त जगत लुप्त हो जाता है और उठने पर तथाकथित जागृति में पुनः प्रकट हो जाता है। यदि नाम-रूप व आकार-प्रकार की देह है, तो वह मेरे लिए सुषुप्ति में कहाँ जाती है और उस पर आधारित जगत कहाँ जाता है?

मन स्वयं में अदृश्य है और मन के भाव, स्वभाव, संस्कार एवं मान्यताएँ भी स्वयं में अदृश्य एवं निराकार हैं, जो देह एवं देह सहित साकार जगत के रूप में प्रकट होते हैं। भूख, प्यास, प्रेम, घृणा, लोभ, मोह, अहंकार, वैर-वैमनस्य, ईर्ष्या, द्वेष, स्पर्धा आदि स्वयं में अदृश्य एवं निराकार भाव हैं। जब देह द्वारा प्रकट होते हैं तो दिखाई देते हैं। भाव निराकार हैं, लेकिन इनका प्रकाट्य साकार में होता है। चाहे प्रकट-प्रकट रूप से बाह्य जगत में दृश्यमान हों, चाहे अप्रकट-प्रकट रूप से आन्तरिक मन में अदृश्य ही रहें। स्वयं में मानस अभावमय एवं आनन्दमय है उसमें न कोई भाव है और न किसी का कोई भाव है। 'मैं देह हूँ' यह जीव भाव स्वयं में पूर्ण जीवात्मा को अभावमय से अभाव **में** और चेतना से अवचेतना में ले आता है। इसका

प्रकाट्य जब देह सहित जगत के नाना आकारों में होता है, तो देह का यथार्थ आत्मा का आत्मत्व एवं ईश्वर का ईश्वरत्व तीनों आच्छादित हो जाते हैं।

सुषुप्ति में हम साकार को नहीं निराकार देह **'भाव'** को लेकर सोते हैं। जब तक साकार जगत की कोई विधा साकार रूप में बनी रहेगी, तब तक हम सो नहीं सकते। हम अपनी देह सहित जगत-भाव को लेकर सोते हैं। जब किसी वस्तु की चिन्ता हो, किसी प्रिय व्यक्ति को मिलने की उत्कण्ठा हो, किसी धन-सम्पदा के लिए लोलुपता हो, किसी साकार वस्तु की प्राप्ति के लिए उत्तेजना हो, तो वे भाव विविध साकार रूपों में साकार देह के साथ चिपके रहते हैं और हमें निद्रा नहीं आती। देह भाव के लय होने के साथ ही जगत की किसी साकार विधा का अस्तित्व भी लीन हो जाता है। साकार से निराकार देह भाव में जाने पर निद्रा आएगी और जब हम उठेंगे, तो वह निराकार देह भाव ही देह सहित जगत के साकार रूपों में प्रकट हो जाएगा। **निद्रा वह मानसिक स्थिति है, जिसमें साकार देह, जगत सहित लुप्त हो जाती है लेकिन निराकार देह-भाव रहता है।** यदि देह-भाव न रहे तो उठने पर साकार देह ही नहीं मिलेगी। **गति, दुर्गति या सद्गति भाव की है।** युगों-युगान्तरों, काल-कालान्तरों, जन्मों-जन्मान्तरों और धर्मों-कर्मों का समस्त खेल, निराकार भाव का है, जिसका साकार में मात्र प्रकाट्य होता है। फिल्म की रील में साकार फिल्म की Recording निराकार रूप से होती है और पर्दे पर प्रस्तुति साकार में होती है। साकार में वही प्रकट होगा जो निराकार में अंकित होगा। साकार प्रस्तुति में यदि कुछ परिवर्तन, संशोधन, परिवर्द्धन करना है, तो निराकार में ही करना होगा।

'मैं' (जीवात्मा) स्वयं में निराकार है। साकार व्यक्ति की फोटो खींची जा सकती है, लेकिन **'मैं'** अदृश्य है और सबकी **'एक'** ही है। इसमें किसी का किसी से कोई विरोध भी नहीं है। जब मैं अपनी देह के नाम-रूप की अवचेतना में आता हूँ, तब इस भाव की साकार प्रस्तुति देह सहित जगत के विभिन्न नाम-रूपों में होती है। नाम-रूप की अवचेतना वस्तुतः देह भाव है, जो विभिन्न मानसिक स्थितियों अथवा माया की 84 लाख योनियों के

अनुसार बदलता रहता है। जिस समय, जिस योनी या मायिक विधा (चैनल) में मेरा देह भाव होगा तदनुसार साथ-साथ, स्वतः देह सहित साकार जगत प्रकट होगा। 'मैं देह हूँ', यह भाव है और अवचेतना में है, जबकि **'मैं'** स्वयं में चेतना है। देह भाव पल-पल बदलता रहता है और तदनुसार देह सहित जगत का प्रकाट्य व लय होता रहता है। **'मैं'** एक ही हूँ और **'मैं'** के देह भाववश असंख्य भावों का साकार में प्रकाट्य होता रहता है। यही साकार देह और जगत है। वस्तुतः न मैं देह हूँ न मैं जगत हूँ, मैं विशुद्ध जीवात्मा हूँ; जो अपने पिता (परमात्मा) की ही भाँति अदृश्य एवं निराकार है।

जन्म से मृत्यु तक नाम-रूप में साकार देह रहती है। मृतक व्यक्ति की फोटो से उसे पहचाना जा सकता है। अखबार में शव की फोटो आती है, कि व्यक्ति की पहचान करिए, लावारिस लाश मिली है। लेकिन अग्नि संस्कार होने के पश्चात **'भस्मी'** द्वारा व्यक्ति को पहचाना नहीं जा सकता। साकार तो रोज़ बदलता रहता है, इसलिए साकार का विज्ञान भी बदलता रहता है। किसी की भी साकार में पहचान तब होगी, जब नाम-रूप होगा और **नाम-रूप में पहचान होगी।** निराकार की पहचान भी निराकार में होगी। हर साकार का आधार निराकार है, क्योंकि उसका प्रकाट्य निराकार से हुआ है।

देह भाव स्वयं में निराकार है और **'मैं'** (जीवात्मा) भी निराकार है। जबकि **'मैं'** स्वयं में अपरिवर्तनीय एवं देहातीत है। साकार प्राणमयी देह के सान्निध्य में जीवात्मा का **'मैं'** शब्द रूप में प्रकाट्य होता है। देह भाव मानसिक स्थितियों के अनुसार बदलता रहता है तद्नुसार देह सहित जगत परिवर्तित होता रहता है। **'मैं'** का मात्र एक ही ऐसा भाव है, जो कभी नहीं बदलेगा, वह है–**भस्मी भाव।** सम भाव (मैं देह हूँ) के समान है **'भसम',** यह भाव सम (मैं भस्मी हूँ) भाव इसलिए नहीं बदलेगा, क्योंकि यह साकार नहीं है। देह की भस्मी है लेकिन भस्मी उस देह विशेष की नहीं है–भस्मी देहातीत (देह से परे) और देहातीत (देह की धर्म-कर्म-कर्तव्य आदि सभी विधाओं से परे) है। जिस प्रकार सबकी **'मैं'** एक है उसी प्रकार भस्मी भी एक ही है। सद्गुरु-कृपा से देह सहित जगत के रहते हुए भस्मी भाव में उतरते ही **'मैं'** (जीवात्मा) सभी

आकारों के भाव से मुक्त हो जाता है और देह सहित जगत में किसी विधा को भाव (मूल्य) नहीं देता।

जीव का देह भाव जोकि सम भाव है, जब भी प्रकट होता है तो 'देह सहित जगत' सहित प्रकट होता है। देह होगी, तो जगत होगा और जगत होगा तो देह होगी ही। जैसी व जिस भी स्थिति में उस समय की देह होती है; उस समय का जगत भी तदनुसार वैसा ही होता है। एक देह साकार नाम-रूप में है और जगत अनेकाकार असंख्य नाम, असंख्य रूपों में है। सब नाम-रूप मेरे हैं, चराचर सहित सब आकार मेरे हैं।

'मैं' (जीवात्मा) प्रकाट्य में एक साकार देह नहीं हूँ, बल्कि अनेकाकार हूँ। जो अनेकाकार हों, उसका एक आकार नहीं हो सकता अतः **'मैं'** स्वयं में निराकार है। जिस प्रकार जल कटोरी में रखा तो कटोरी का आकार ले लिया, गिलास में गिलास का आकार हो गया। इसी प्रकार वायु, आकाश, अग्नि, पृथ्वी भी स्वयं में दृश्यमान हैं, लेकिन निराकार हैं। जीवात्मा, स्वयं में अदृश्य व निराकार है **'मैं'** शब्द में उसका प्रकाट्य होता है। कोई कहे 'मैं हूँ' अतः कोई सक्रिय देह है, जो जगत सहित है। दुर्भाग्यवश जीव-सृष्टि में मैंने देह को अलग और जगत को अलग मान लिया और फँस गया। परमात्मा ने मुझे देह फँसने और भटकने के लिए नहीं दी। देह मेरी नहीं थी, मेरे लिए थी। सद्गुरु कहता है, कि ''तू इस देह से, देह के किसी ऐसे पदार्थ को अपना मान ले जो देह व जगत का एक ही हो और जो स्वयं में देह व जगत ना हो तथा देह व जगत से देह व जगत का हो। वह पदार्थ एक का हो, अनेक का हो और इनमें से किसी का न हो और वह तेरा हो। वह पदार्थ है–तेरी **देह की भस्मी**। तू निर्माण और पालन में फँस गया, क्योंकि तू संहार को भूल गया और जाने-अनजाने उपेक्षित करता रहा। देह भाव का प्रकाट्य 'देह सहित जगत' सहित हुआ। इस 'सम भाव' को भाव सम पदार्थ **'भसम'** द्वारा रूपान्तरित कर दे। यह भसम स्वयं में निराकार है लेकिन दृश्यमान है। तेरा 'देह भाव' प्रकट रूप में अनेक आकारों में दृश्यमान हुआ, तू इनमें उलझ गया 'जीव कोटि में आ गया तेरी एक देह की भसम तेरी 'देह सहित

जगत' का निराकार दृश्यमान स्वरूप है। अब तू उससे स्वयं को आत्मसात् करने की चेष्टा कर।''

हम भ्रमवश निराकार को उपेक्षित करके साकार को महत्त्व देते हैं, जो कि पल-पल परिवर्तनशील है। हमें निराकार को महत्त्व देना होगा और उस निराकार ईश्वरीय शक्ति के सम्मुख समर्पित होना होगा, जो देह सहित समस्त जगत को चला रही है। मेरी देह की आन्तरिक क्रियाओं का संचालन मेरे हाथ में नहीं है और उन व्यवस्थित, सन्तुलित और सुसम्बद्ध आन्तरिक क्रियाओं के कारण मेरी जो बाह्य क्रियाएँ होती हैं, वे मेरे हाथ में कैसे हो सकती हैं? अबोध शिशु एवं पशु यह बात नहीं जानता, लेकिन बोधता में हम जान सकते हैं। अपने मन और बुद्धि के समर्पण के लिए यह छोटी सी बात हम सब समझ सकते हैं। हम बुद्धि से जान लें और मन से मान लें, तो मन-बुद्धि उस शक्ति के सम्मुख समर्पित हो जाएगी, जो देह की आन्तरिक और तदनुसार बाह्य क्रियाओं की प्रेरक, संचालक व सम्पादक है। **तब देह के प्रति हमारा भाव यह हो जाएगा, कि देह भी परमात्मा की है और मैं भी परमात्मा का हूँ।** इस भाव के आते ही प्रकट देह सहित जगत के सभी आकारों पर हमें अधिकार होने लगेगा और जीवन आनन्दमय हो जाएगा। कृपया एकाग्र करिए, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

देह सहित जगत का प्रकाट्य स्वयं में एक परम रहस्यमयी, दैवीय चमत्कारिक घटना है। प्रत्येक सुबह निद्रा उठकर हम सब एक सम भाव ('मैं देह हूँ') के कारण दिन के कार्यक्रम को एक रुटीन समझते हैं, कि अमुक समय मैं वहाँ जाऊँगा और यह-यह कार्य आज पूरा कर लूँगा। जब भी मैंने देह और जगत में किसी भी विधा से सम्बन्धित अथवा अन्य कोई भी कार्यक्रम बनाया है, तो उस सबका आधार मेरा एक भाव होता है, जो सम भाव था, है और होगा कि 'मैं देह हूँ'। मैं कब, कैसा था, अब कैसा हूँ, भविष्य में कैसा व क्यों बनना चाहता हूँ इस सबका आधार एक सम भाव है, कि 'मैं देह हूँ'।

जब-जब **'मैं'** (जीवात्मा) देह भाव के साथ नाम-रूप की अवचेतना में

था, हूँ और हूँगा तो मेरी देह के साथ जगत भी था, है और होगा। अक्सर मैं यह **'सद्'** जाने-अनजाने भूल जाता हूँ अथवा जानते-बूझते हुए भी उपेक्षित करता हूँ। जगत के बिना मेरा देह भाव होना असम्भव है। अर्थात् मेरी देह की अवचेतना जगत सहित ही होती है। क्योंकि देह भाव का प्रकाट्य प्रकट-अप्रकट जगत सहित देह अथवा देह सहित जगत के अनेकाकारों में होता है। यह देह भाव मेरा **'सम भाव'** है। सद्गुरु के निर्देशन में सभी कृत्य, प्रकरण, जप-तप अथवा कुछ भी आपको **'देह-भाव'** से परे ले जाने के लिए किए-करवाए जाते हैं। महापुरुष देह का सदुपयोग **देह-भाव से हट कर अथवा देह-भाव से हटने के लिए ही करते हैं। 'देह-भाव'** से हटकर भी देह होती है, **'देह-भाव'** को हटाने के लिए भी देह होती है और **'देह-भाव'** सहित भी देह होती है। देह और देह में अन्तर है। तथाकथित व्यावहारिक जीवन में जब **'मैं'** देह-भाव में होता हूँ, तो यह मेरी अवचेतना है। **'मैं'** स्वयं में देह से परे था, परे हूँ और परे रहूँगा, लेकिन देह-भाव में देह से इतना युक्त हूँ, कि देह को अपना स्वरूप माने हुए हूँ। **'मैं'** निराकार व अदृश्य है और **'देह'** साकार व दृश्यमान है। निराकार (**मैं**) और साकार (**देह**) में पूर्णतः **'द्वैत'** है और जो थोपा हुआ अद्वैत (मैं देह हूँ) है, वह द्वैत में **अद्वैत सा** है। **मैं** की अवचेतना में देह के साथ **तद्रूपता सी** में समय-समय पर माया की विभिन्न चौरासी लाख विधाओं में देह सहित जगत अथवा जगत सहित देह का प्रकाट्य होता है। **'मैं'** देह से और देह **'मैं'** (जीवात्मा) से परे है, परे थी और परे ही रहेगी। देह सहित जगत का जितना भी व्यवहार था, है और होगा तथा मानव-देह व जीवन के समस्त रोग-दोष, कष्ट, पाप-पुण्य, सुख-दुःख, मर्यादाएँ, धारणाएँ, जन्म-मृत्यु, धर्म-कर्म, जोड़-तोड़-होड़, आधि-व्याधि-उपाधि, वैर-वैमनस्य, ईर्ष्या-द्वेष, सुषुप्ति, मूर्च्छा, विस्मृति, भय-त्रास, मल-विक्षेप, आवरण, काल व कर्म-बन्धन, प्रारब्ध आदि **'मैं'** और देह के इस थोपे हुए, मिथ्या व असद् अद्वैत में हैं कि 'मैं देह हूँ'। इसका मूल एक समभाव (देह भाव) है।

साकार मानव-देह ईश्वर के सम्पूर्ण साकार कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की प्रतिनिधि है और मात्र ईश्वर तथा ईश्वर मात्र द्वारा ही निर्मित, पालित व

संहारित है। **'मैं'** ईश्वर का निराकार, अदृश्य आनन्दमय व अभावमय मानस हूँ। 'देह' ईश्वर की है और **'मैं'** ईश्वर का हूँ। देह के साथ मेरा तालमेल 'देह भाव' से हुआ। यह देह भाव मुझ जीवात्मा की ही तरह निराकार व अदृश्य था। उस समभाव का साकार देह सहित जगत प्रकाट्य है। कोई भी भाव जब तक प्रकट न हो अदृश्य व निराकार ही रहता है। देह सहित जगत में प्रत्येक प्रकाट्य और प्रकाट्य के भाव एवं विचार में एक 'समभाव' देह भाव है कि 'मैं देह हूँ'। साकार देह सहित जगत में कुछ भी छोड़ने, प्राप्त करने, बनने-बनाने, करने-पाने, खोने और होने का महात्म्य कुछ नहीं है। उसके प्रति जो 'भाव' है उसे छोड़ना महत्वपूर्ण है। बाहरी साकार जगत तो निराकार **'देह भाव'** का ही प्रकाट्य है जिसका आधार मेरी देह के नाम-रूप की अवचेतना है। ध्यान रहे साकार देह सहित जगत के प्रकाट्य का आधार **'देह' नहीं देह के नाम-रूप की अवचेतना है**। यह भाव न रहने पर 'जगत सहित देह' विलय हो जाती है। चाहे वह निद्रा की जड़ता हो अथवा तुरिया समाधि की महाचेतना हो।

कृपया एकाग्र करिए! देह भाव कि 'मैं देह हूँ' यह जीव सृष्टि में फँसने वाला भाव था ही लेकिन मैं जो जब, जहाँ, जैसा था इसकी पुष्टि व परिपुष्टि इस 'सम भाव' वश हुई भावनाओं एवं सम्भावनाओं के कारण हुई। देह सहित जगत में हर प्रकाट्य मेरी सम्भावना (मैं देह हूँ) के कारण होता है लेकिन समभावना के अनुसार नहीं होता। अप्रकट रूप में समभाव (देह भाव) के साथ मेरी अपनी सम्भावनाएँ रहती हैं। 'सम भाव' से सम्भावना शब्द बना है। कुछ सम्भावनाएँ मेरे लिए सम्भव होती हैं, कुछ आजीवन असम्भव रहती हैं। 'सम भाव', सम्भावना, सम्भवतः, सम्भव, असम्भव सब एक साथ मिले-जुले निराकार भाव, देह भाव में आते ही निराकार मन-बुद्धि के खेल में अदृश्य रूप से प्रकट हो जाते हैं।

समभावना से सम्भवता और असम्भवता का प्रादुर्भाव हुआ कि, 'मैं असम्भव को सम्भव बनाकर ही छोड़ूँगा। फिर भी सम्भव होगा या नहीं निश्चित तौर पर कह नहीं पाता लेकिन प्रकाट्य से पहले ही एक सम भाव

(मैं देह हूँ) से जीव असंख्य सम भावनाओं एवं असम भावनाओं की श्रंखला में भटकने पर विवश हो गया। सम्भावित को निर्मित करने की सम्भावनाएँ, असम्भव को छोड़ने की सम्भावना और समस्त सम्भावनाओं और असम्भावनाओं का यह खेल साकार प्रकाट्य से पहले निराकार और अदृश्य में ही जीव को संशय, चिन्ता, शोक, वैर, स्पर्धा, भय, त्रास, कटुता, ईर्ष्या, द्वेष, क्रोध, लोभ, काम, मोह, अहं, शत्रुता, बनावट आदि विकारों से घेर लेता है। हमारे मन में असंख्य भाव होते हैं और बुद्धि उन भावों को पहले निराकार में ही आकार देती है, लेकिन प्रकाट्य क्या होगा यह न कोई जानता है, न ही जान सकता है। सम भाव में कोई भाव उठते ही सम्भावनाओं व असम्भावनाओं के अनुसार आन्तरिक जगत में उसका डिज़ाइन बनना शुरू हो जाता है लेकिन जब प्रकाट्य होता है उसमें असम्भव, सम्भव और सम्भव, असम्भव होकर प्रकट होता है। इसी जीव सृष्टि में हम जन्मों-जन्मान्तरों में भटकते रहते हैं।

सद्गुरु देह भाव हटा कर वह निर्मल आनन्दमय एवं अभावमय मानस का अनावरण कर देता है जहाँ सारी सम्भावनाएँ असम्भावनाएँ निर्मूल हो जाती हैं। सद्गुरु 'सम भाव' (देहभाव) को निर्मूल करने के लिए 'भाव सम' पदार्थ **'भसम'** की अवधारणा करवाता है। सद्गुरु कहता है, कि ''सम भाव का भाव सम (भसम) है, वह उस सम भाव (मैं देह हूँ) का **'अर्थ'** है। 'समभाव' बहुत विस्तृत है लेकिन भाव सम 'भसम' अति संक्षिप्त है। प्रत्येक सार्थक प्रश्न का उत्तर चाहे छोटा सा हो, पूरे प्रश्न में समाहित होता है। अति विस्तृत प्रश्न असंख्य गणनाओं और अंकों से परिपूरित होता है लेकिन उत्तर संक्षिप्त एक अंक में होता है। उस एक उत्तर को निकालने के लिए प्रश्न की समस्त गणनाओं और अंकों पर पूरी एकाग्रता से एकाग्र करना होता है। सम्पूर्ण जीवन में सम्पूर्ण देह की समस्त स्थितियों, अवस्थाओं में मैं जो कुछ, जब-जब पाता-खोता हूँ चाहे वह कुछ भी हो, न हो, उसका 'अर्थ' देह से परे है, लेकिन देह में समाहित है। 'मैं देह हूँ' यह 'सम भाव' मेरी मानसिकता (मन की Sickness) है। इस समभाव के प्रकाट्य में जो-जो होता रहा है, हो

रहा है और होगा उसमें **भावसम** 'भसम' समाहित है, जो अन्ततः मृत्योपरान्त देह के चिता में जलने पर उत्तर बनकर प्रकट होती है। यदि देह सहित जगत में सब कुछ उस सम भाव में मेरी सम्भावनाओं के तदनुसार भी प्रकट हो जाता तो भी अन्ततः वही भाव सम ('भसम') ही 'अर्थ' व उत्तर होता। मैं विस्तार से पुनः वर्णन करूँगा।

प्रत्येक सार्थक प्रश्न में उसका उत्तर समाहित रहता है। समाहित रूप में 'अर्थ' या उत्तर प्रश्न की भाँति विस्तृत होता है लेकिन जब बाहर आ जाता है तो अति संक्षिप्त होता है। प्रश्न बिना 'अर्थ' के नहीं हो सकता, लेकिन 'अर्थ' बिना प्रश्न के हो सकता है। समाहित रूप में 'अर्थ' प्रश्न के साथ होगा और प्रकट रूप में 'अर्थ' प्रश्न रहित होगा। मानव-देह क्या है? मुझे क्यों मिली है? यह कभी भी मुझसे छीन ली जाएगी, लेकिन जब तक भी है तो मेरे लिए इसका 'अर्थ' क्या है? इसका वास्तविक अर्थ पकड़े बिना जो कुछ मेरे द्वारा अथवा मेरे लिए करना, पाना, खोना और होना होता रहा है वह निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ की जीव कोटि में ही भटकता है। क्योंकि इस 'सब कुछ' का अर्थ 'कुछ नहीं' है।

प्रश्न सम भाव पर आधारित है और अर्थ 'भाव सम' है। 'मैं देह हूँ' भाव में देह विस्तृत एवं अति विशाल है और असंख्य एवं गणनातीत देहों का समूह है। निराकार देह भाव एक 'सम भाव' है जिसका निराकार में प्रकाट्य है, कि मैं देह हूँ। इस 'सम भाव' में जो, जब, जहाँ, जैसी साकार देह प्रकट हुई वह जगत सहित हुई। प्रकाट्य दैवीय घटना है। कोई भी दैवीय विधा निरर्थक, व्यर्थक व अनर्थक हो नहीं सकती। एक समभाव में असंख्य देहें असंख्य जगत प्रकट हुए। उसमें जीवात्मा जीव कोटि में उलझ गया और उसकी देह जो कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की प्रतिनिधि, संघनित स्वरूप एवं साकार प्रकाट्य का एक मात्र आधार थी एक 'प्रश्न' बन गई।

सम भाव के प्रकाट्य 'मैं देह हूँ' में देह सहित जगत की सक्रियता देह से परे **'मैं'** तत्त्व से हुई। **'मैं'** तत्त्व 'सम भाव' से परे का तत्त्व है, क्योंकि मैं पृथक् है और देह पृथक् है। सद्गुरु कहता है, कि ''इतने बड़े प्रश्न का अर्थ

यदि आनन्दपूर्वक पाना चाहता है, तो मान ले और जान ले, कि इसका अर्थ भस्मी ही है। देह का अर्थ होश सम्भालते ही प्रभु ने तेरे समक्ष रखा है, कि तू जो, जब, जहाँ, जैसे और जिस स्थिति में भी मरेगा तेरा अर्थ 'भस्मी' ही है। मानव-देह रूप में तेरे जीवन का अर्थ जीते जी उस 'अर्थ' (भसम) को निरन्तर आत्मसात् करने की चेष्टा है। उस अर्थ को मद्देनज़र रखते हुए देह का सदुपयोग ही मानव-जीवन की सार्थकता है। क्योंकि जितना 'सब कुछ' है उसका अर्थ 'कुछ नहीं' (भसम) है।''

वह 'भाव सम' भसम, 'सम भाव' 'मैं देह हूँ' की मान्यता में प्रकट देह के जन्म और मृत्यु दोनों छोरों से परे है। वह 'भसम' 'सम भाव' की वजह से है इसलिए देह के उस अर्थ से आत्मसात् होना मानव-देह व जीवन का लक्ष्य है। 'सम भाव' में प्रकट देह और मैं की तद्‌रूपता मिथ्या व असद् है लेकिन देह का अर्थ 'भसम' है। देह और तुझमें तो कोई समानता ही नहीं है। दृश्यमान साकार देह काल की तीनों विधाओं समय, स्थान एवं स्थिति और समय के भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीनों स्वरूपों से बंधी हैं। वह देश, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग और माया के तीनों गुणों से बँधी सतत् परिवर्तनशील है और तू नाम-रूप की देह जीव नहीं है। तेरी देह के साथ प्रकट समय-समय एवं विभिन्न स्थितियों का जगत भी देह के ही समान है अतः वह जगत भी तू नहीं है। जगत सहित देह एवं देह सहित जगत से परे तू जीवात्मा तत्त्व है जिसका प्रकाट्य एक ही शब्द **'मैं'** के रूप में होता है। तू देह के रहते उस देह व जगत से परे के तत्त्व (मैं) को पहचान। देह रूप में तेरा निश्चित, परिलक्षित व दर्शित भविष्य **भस्मी** है। तेरी **'मैं'** देहातीत व अदृश्य है और देह के दौरान वह भस्मी भी देहातीत व अदृश्य है तथा उसी में तेरा स्वरूप छिपा है। जब वह भसम प्रकट रूप में दृश्यमान होती है तब तू यह नहीं कह सकता, कि 'मैं भस्मी हूँ' इसलिए अब तू देह के रहते स्वयं को देह के साथ नहीं उस भस्मी के साथ पहचान। तू समभाव (देह भाव) द्वारा भाव सम (भसम भाव) से तद्‌रूप हो जा। क्योंकि 'सम भाव' का अर्थ 'भाव सम' है। वह 'सम अर्थ' तेरी समर्थ बनते हुए तुझे पैदा हुई देह की चिन्ताओं

की जलन और मृतक देह की चिता की जलन दोनों से मुक्त कर देगा। उस 'भाव सम' 'भसम' का चिन्तन तुझे चिन्ता व चिता दोनों से हमेशा के लिए मुक्त कर देगा। **'मैं'** देह से परे का तत्त्व है और भस्मी भी देह से परे का तत्त्व है, दोनों देहातीत मिल जाएंगे तो इसके बाद देह सहित जगत का हर प्रकाट्य तेरे लिए आनन्दमय ही होगा।''

''बोल सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(13 मई 2008 एवं 8 मार्च 2010)

स्वाध्याय

'स्वाध्याय' से तात्पर्य है **'स्व'** का अध्ययन। **'स्व'** से, **'स्व'** का, **'स्व'** के द्वारा **'स्व'** के लिए और **स्वयं** के बारे में किया जाने वाला अध्ययन **'स्वाध्याय'** है। स्वाध्याय, आत्म-चिन्तन का प्रथम एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सोपान है। हम स्वयं के बारे में जो और जितना भी जानते हैं; वह स्वयं ही जानते हैं। वास्तव में स्वाध्याय ही सर्वाध्याय है। जैसे ही मैं सुबह गहन निद्रा से उठता हूँ, तो मैं 'देह सहित जगत' सहित उठता हूँ। पहले मुझे अपनी देह की Consciousness होती है, तत्पश्चात् जगत की Consciousness होती है। यह अति सूक्ष्म एवं अज्ञात अन्तराल बिजली के स्विच के ऑन होने पर पहले बल्ब और तुरन्त ही उस बल्ब सहित कक्ष के प्रकाशित होने की भाँति होता है। मैं समझता हूँ, कि मैं अकेला सो कर उठा, लेकिन जब **'मैं'** एक नाम-रूप के व्यक्ति के रूप में उठता हूँ, तो मेरे साथ उस समय का मेरा जगत भी साथ ही उठता है। अतः मैं **'देह सहित जगत'** सहित उठता हूँ। अन्य कोई मेरे लिए तभी सोया हुआ, उठा हुआ, मृतक अथवा जीवित होगा, जब मैं एक देह के रूप में उठा हुआ हूँगा। **यह स्वाध्याय का बहुत महत्त्वपूर्ण बिन्दु है, जिसे उपेक्षित करके ईमानदारी से निष्पक्ष स्वाध्याय असम्भव है।**

हमारा व्यवहार समय-समय पर स्थिति, अवस्था व अवसर के अनुसार बदलता रहता है। परन्तु मूलतः मैं क्या हूँ? मेरी डिग्रियाँ, मेरा पद क्या है? इनके पीछे मेरा रवैया और मेरे लिए इनका महात्म्य क्या और किस मात्रा में है, मेरी देह की प्रतिक्रियाएँ क्या हैं? मैं किसी को प्रेम करता हूँ, तो क्यों करता

हूँ? किसी पर क्रोध या घृणा करता हूँ, तो क्यों करता हूँ? अमुक-अमुक विभिन्न पारिवारिक, सामाजिक व अन्यथा व्यक्तियों से मेरे भिन्न-भिन्न व्यवहार का अर्थ क्या है? मैं वास्तव में क्या हूँ और जनता के सम्मुख स्वयं को कैसा प्रस्तुत करता हूँ? मेरी किस प्रकार के साहित्य अथवा कला में रुचि है। मैं क्या व क्यों अध्ययन करना चाहता हूँ, मैं किन स्थानों को देखना चाहता हूँ। विरक्त महात्माओं के स्थान, व्यवसायिक प्रतिष्ठान, ऐतिहासिक महत्त्व की इमारतें या मकबरे, वैज्ञानिक अनुसन्धानात्मक प्रतिष्ठान आदि में से क्या देखना मेरी प्राथमिकता है।

हमारी कुछ तात्कालिक चाहतें समयानुसार व स्थित्यानुसार बदलती रहती है एवं कुछ दीर्घकालीन चाहतें होती हैं। मैं कुल जीवन में क्या-क्या चाहता हूँ? किन प्रतिभाओं और गुणों के प्रति मेरा आकर्षण है? ईश्वर ने मुझे ऐसी किन विशिष्टताओं से नवाज़ा है, जो अन्य लोगों में नहीं हैं। अन्य लोगों की विशिष्टताओं में किन-किन के प्रति मेरा झुकाव है। जब हम किसी के बारे में अपनी राय भी देते हैं, तो अपने हिसाब से देते हैं। हम स्वयं जो, जैसे हैं वैसी ही हमारी दूसरों के विषय में राय होती है। नृत्य, संगीत, गायन, कविता, लेखन, चित्रकला व वास्तुकला में किस कला के प्रति मेरा रुझान है और उनमें क्या परिवर्तन है। अतीत की कुछ विशिष्ट घटनाएँ ही मुझे क्यों याद हैं? उन घटनाओं का स्वरूप नकारात्मक है या सकारात्मक है? जो मैं स्वयं कर रहा हूँ, उसमें मुझे सन्तुष्टि या असन्तुष्टि क्यों है? मैं किसी का पक्षपात या विरोध करता हूँ, तो उसमें मेरा अपना क्या लाभ या हानि होती है, उसके पीछे मेरी नीयत क्या है? मैं क्यों और क्या बनना चाहता हूँ? इस सबका अन्त क्या है ? आदि-आदि असंख्य प्रश्नों का स्वयं से, स्वयं का, स्वयं के लिए उत्तर खोजना और अपनी समस्त चाहतों, प्रतिभाओं, स्मृतियों, जगत व्यवहार, शैक्षिक योग्यता एवं पद प्रतिष्ठा के प्रति स्वयं का, स्वयं द्वारा, स्वयं के लिए अध्ययन **स्वाध्याय** कहलाता है।

जीवकोटि में हमने देह रूप में स्वयं को जगत से अलग मान लिया। जबकि निद्रा से उठते ही मुझे अपनी देह की अवचेतना के साथ ही जगत की

अवचेतना भी साथ-साथ होती है। कभी अकेली देह की अवचेतना हो ही नहीं सकती। जब मुझे अवचेतना होगी, तो देह सहित जगत की होगी और जगत दो प्रकार का होगा—प्रकट-प्रकट और अप्रकट-प्रकट। अप्रकट जगत मेरे भीतर अन्तर्मन में प्रकट होता है, उसमें मैं विचरता हूँ। मैं कभी उसका प्राकट्य चाहता हूँ, कभी नहीं चाहता हूँ। देह के साथ तद्‌रूपता में मेरी जगत के साथ तद्‌रूपता होती है। अतः वह जगत मेरी देह का ही विस्तार होता है और मेरी देह उस समय समस्त विस्तार का संघनित रूप एवं प्रतिनिधि होती है। मैं 'जगत सहित देह' के साथ सोता हूँ और 'देह सहित जगत' के साथ उठता हूँ। जगत सोता है तो मैं सोता हूँ। अतः सोते समय मेरा जगत मेरे लिए सो जाता है, तब मैं सोता हूँ और उठते समय जब मैं उठता हूँ, तब मेरा जगत उठता है। पहले मैं उठा, फिर मुझे मालूम चला मैं कहाँ, किस जगह हूँ, उस समय मेरे जगत में क्या-क्या है? कभी-कभी बहुत गहन निद्रा से उठने के बाद कुछ क्षण **जगह** और **जगत** को पहचानने में लग जाते हैं। जगत और जगह में **'जग'** महत्त्वपूर्ण एवं Common है। मेरे भाव जगत में 'देह सहित जगत' का कोई छोटा सा भी ख्याल, किंचित प्रतिस्पर्धा, वैर, द्वेष, ईर्ष्या आदि हो, तो मुझे स्वतः प्राकृतिक निद्रा नहीं आ सकती। इसलिए कुछ लोगों को सोने के लिए नींद की गोलियों अथवा मादक द्रव्यों का आश्रय लेना पड़ता है।

सोते समय जगत सहित देह सोती है और उठते समय देह सहित जगत प्रकट होता है। सोने में जगत की प्राथमिकता है और उठने में देह की प्राथमिकता होती है। यहाँ शिवरात्रि और नवरात्रि का भेद है। जगत सहित सोते समय यदि अगले दिन के कार्यक्रमों का बोझ होगा, तो निद्रा अस्त-व्यस्त होगी। अगले दिन के कार्यक्रम देह सहित जगत में होने हैं। मैं **'जगत सहित देह'** सहित सोने जा रहा हूँ और 'देह सहित जगत' में होने वाले कार्यक्रमों की उधेड़बुन है, तो मुझे अच्छी व विश्रामदायक निद्रा आ ही नहीं सकती। यदि प्रारब्धवश जाने-अनजाने मुझसे कोई तनावपूर्ण जगत निर्मित हो गया है, तो वह मेरी निद्रा और उठना दोनों को दूभर कर देगा। सोते समय जगत तनावित करेगा और उठते ही जगत गले पड़ जाएगा।

'जगत सहित देह' और 'देह सहित जगत' दोनों का आधार मेरी देह है। जगत तभी होगा जब मेरी देह होगी और जगत होगा, तो मेरी देह होगी ही। कोई पुराना इतिहास, पुराण, भूगोल या कोई मृतक व्यक्ति भी मेरे लिए तब होते हैं, जब मैं देह रूप में **'एक'** होता हूँ। युगों-युगान्तरों के जगत, विभिन्न गाथाएँ आदि देह रूप में मेरे होने से सम्बन्धित होती हैं। मैं न होऊँ तो न भूत, न भविष्य, न वर्तमान, न युग, न युगान्तर, न सतयुग, न द्वापर, न त्रेता, न कलिकाल **'कुछ नहीं'** होता। जब मैं जगत का ख्याल या बात करता हूँ, तो वहाँ मेरी एक आधार देह की अवचेतना का होना आवश्यक है। रात्रि की निद्रा की गुणात्मकता मेरे 'जगत सहित देह' सहित वाले देह भाव पर निर्भर करती है और सुबह उठते समय मेरे दिन की गुणात्मकता मेरे 'देह सहित जगत' सहित वाले देह भाव पर निर्भर करती है। यही जीव-सृष्टि है, जिसमें हम जन्मों-जन्मान्तरों में आधि-व्याधि-उपाधि सहित विभिन्न कष्टों में भटक रहे हैं। रात्रि में गहन सुषुप्तावस्था में मेरे लिए न देह होती है न जगत होता है। अतः मेरा **'कुछ नहीं'** होता और इस स्थिति का मुझे आभास व ज्ञान भी नहीं होता, कि मेरा कुछ नहीं है। यह निद्रा **'जड़ता'** है। मेरा **'कुछ नहीं'** है, यह मुझे आभास हो जाए, तो यह मेरी **'चेतना'** है। मैं **'कुछ न कुछ' 'सब कुछ', 'कभी कुछ-कभी कुछ'** अपना मान लूँ, यह मेरी **'अवचेतना'** है। निद्रा से उठते ही मैं अवचेतना में आकर 'कुछ न कुछ' के पीछे दौड़ने लगता हूँ।

स्वाध्याय के लिए आधार बिन्दु आवश्यक है, जो अपने लिए मूल्यांकन एवं आकलन का मापदण्ड बने। यह तुलनात्मक या सापेक्षिक अध्ययन न होकर वास्तविक व यथार्थ मूल्यांकन है। स्वाध्याय का आधार यह है, कि मैं जो भी, जब भी, जैसा भी, जहाँ भी हूँ, मैं तीन महत्त्वपूर्ण विधाओं के **'वश'** में हूँ—काल, कर्म और प्रारब्ध ये तीन बिन्दु स्वाध्याय के आधार बिन्दु हैं। मैं न केवल 'वश' में हूँ, बल्कि **वशीकृत** हूँ। उसी वशीकरण में इतना **विवश** हूँ, कि मैं बाहर आना ही नहीं चाहता। युगों-युगान्तरों में मेरा देह भाव परिपक्व व परिपुष्ट हो चुका है। इसीलिए मैं 'वश' में हूँ, विवश हूँ, वशीकृत और वशीभूत हूँ। मैं कभी अच्छा हुआ या बुरा हुआ, तो वह सब नियति, स्थिति, परिस्थिति,

समय, अवस्था, काल अथवा प्रारब्धवश हुआ। मैं 'वश' में इसलिए हूँ क्योंकि वशीकरण के सम्मोहन में सम्मोहित वशीभूत हूँ और बाहर भी नहीं आ सकता, क्योंकि विवश हूँ। यह विह्वलता तथा बेबसी से सद्गुरु व इष्ट के चरणों में समर्पित होना है—***त्राहि माम् त्राहिमाम् शरणागतः।***

सद्गुरु कहता है, कि ''तेरी वशता, विवशता, वशीकरण सब कुछ तेरे लिए प्रकट जगत में निर्माण व पालन में है। तूने देह सहित जगत के प्रकाट्य में संहार नामक विधा को बिल्कुल उपेक्षित कर दिया। जबकि संहार ही निर्माण, पालन का श्रंगार है। तू 'वश' में है इसका उल्टा कर—'शव'। अब तू अपने 'शव' का भी ध्यान कर ले। तू 'वश' से बाहर आ जाएगा। तू शिव-शिव कर, तू 'वशी' से बाहर आ जाएगा। तू वशीकरण में नरक भोग रहा है, अब तू 'वशी' का उल्टा 'शिव' का ध्यान कर, तो 'वशी' '**करण**' के **'नरक'** से बाहर आ जाएगा। जिसने तुझे वश में किया है, वे तेरे वश में हो जाएँगे। तू देह भाव के वशीभूत होकर विवश हुआ, क्योंकि एक देह भाव अनेकाकारों में प्रकट हुआ। तूने अपनी देह को सबसे पृथक् मान लिया और तू जीव-सृष्टि में फंस गया। अब तू इस सम भाव (देहभाव) के समान भाव सम (भसम) पदार्थ पकड़ ले, जो तेरी एक देह के साथ प्रकट अनेकाकारों का भी एक ही है। वह पदार्थ **'भसम'** तेरे स्वाध्याय में आ जाए। अपने **'शव'** और **'भस्मी'** का ध्यान संहार का ध्यान है। वह तेरा श्रंगार कर देगा।'' कृपया एकाग्र करिए मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

ईश्वर को शास्त्र ने सच्चिदानंद एवं ठोस-घन-शिला कहा है। जीवात्मा, उसका आनन्दमय, अचल, अपरिवर्तनीय, अदृश्य एवं निराकार मानस है। साकार देह सहित जगत में सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड ईश्वर की माया है। चराचर जगत की यह माया सतत् परिवर्तनशील, साकार व दृश्यमान है। इस सम्पूर्ण माया की प्रतिनिधि, मानव-देह है, जो इस माया की ही तरह साकार एवं चलायमान है। सम्पूर्ण साकार माया का प्रकाट्य आनन्द में एवं आनन्दमय है। अतः इसकी प्रतिनिधि मानव-देह भी आनन्द में एवं आनन्दमय है।

ईश्वरीय मानस जो विरक्त व अभावमय है उसमें उसकी अपनी इच्छाशक्ति से आनन्द में क्रीड़ा हेतु एक भाव या संकल्प का स्फुरण हुआ, कि **'मैं'** एक से अनेक हो जाऊँ–**''एकोऽहम् बहुस्याम्।''** एक से अनेक होने की यह आसक्ति वस्तुतः विरक्त की आसक्ति है। विरक्त की यह आसक्ति आद्याशक्ति माँ भवानी (महाशक्ति) कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के दृश्यमान व साकार चर-अचर जगत का प्रकाट्य करती है। मानव-देह का विस्तार कोटि-कोटि साकार महाब्रह्माण्ड हैं और कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की संघनित स्वरूप व प्रतिनिधि मेरी मानव-देह है। किसी चित्र, कथा, नाटक, फिल्म, कविता, वस्तु, पदार्थ अथवा कुछ भी को हम निर्मित करें, तो उसे बार-बार स्वान्तः सुखाय स्वयं देखना चाहते हैं और देखकर आनंदित व आविर्भूत होते रहते हैं। कई बार हम दूसरों को बताते व दिखाते भी नहीं और स्वयं देख, सुन, छू, सूँघ और चख कर मन्त्रमुग्ध होते रहते हैं। इसलिए उस चराचर कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के प्रकाट्य में उस महाविरक्त को आसक्ति हुई।

चाहे देह सहित जगत हो या जगत सहित देह हो, दोनों मेरे 'देह भाव' (मैं देह हूँ) का प्रकाट्य ही हैं। जैसा भाव होगा, वैसा ही प्रकाट्य होगा। मेरा आनन्दमय मानस स्वयं में अपरिवर्तनीय, स्थिर, निराकार एवं अदृश्य है। देह भाव मेरे उस आनन्दमय मानस के अपरिवर्तनीय एवं अभावमय भाव का विकार या विकृति है। जितना भी देह सहित जगत में साकार प्रकाट्य है, वह आनन्दमय समभाव से है। **जो कुछ भी मेरे मन-मस्तिष्क में प्रकट-अप्रकट जगत है, वह मेरे देह भाव के साथ प्रकट होता है। देह भाव 'समभाव' होते हुए भी देह की तरह परिवर्तनशील है।** देह भाव विकार इसीलिए है क्योंकि वह सतत् परिवर्तनशील, नश्वर एवं मेरे लिए अनिश्चित अवधि में बँधी अस्थिर, साकार व दृश्यमान देह की तरह निरन्तर परिवर्तित होता रहता है।

पंच-महाभूतों में प्रकट चराचर क्रीड़ामय जगत का परम रहस्यमय, चमत्कारिक, सर्वोत्कृष्ट एवं प्रपंचमय करिश्मा व जादू चलती-फिरती

मानव-देह है। किसी इन्द्रजाल, जादू, खेल या नाटक को देखने का उद्देश्य मात्र मानोरंजन, विलास एवं तात्कालिक रसास्वादन होता है। लेकिन पंच-महाभूतों की चराचर प्रपंचमय सृष्टि का प्रकाट्य मात्र मनोरंजन ही नहीं था; क्योंकि समय-समय पर जैसा भी था उस आनन्दमय मानस की उस समय की स्थिति का द्योतक था। निराकार व अदृश्य को तो कोई न देख सकता है और न देखने की सम्भावना है। देह सहित जगत में हुए दृश्यमान साकार प्रकाट्य के माध्यम से **'मैं'** (जीवात्मा) अपनी आनन्दमयी अदृश्य व निराकार मानसिक स्थिति जिससे मेरी देह सहित दृश्यमान साकार जगत प्रकट हुआ है, उसका अवलोकन एवं स्वयं का, स्वयं के लिए स्वाध्याय कर सकता हूँ। यदि यह दृश्यमान साकार प्रकाट्य न होता तो मुझे उस अखण्ड अचल स्रोत आनन्दमय मानस की स्थिति का ज्ञान होना असम्भव था। देह सहित दृश्यमान जगत का साकार प्रकाट्य जैसा भी है जीवात्मा **(मैं)** के लिए मनोरंजन तो है ही, लेकिन साथ ही यह उसकी अदृश्य व निराकार आनन्दमयी मानसिक स्थिति का प्रमाण भी है।

'देह सहित जगत' और 'जगत सहित देह' का आधार देह भाव ही है। देह भाव कि मैं देह हूँ एक सम भाव है और एक का है। लेकिन जब इसका प्रकाट्य होता है, तो उस समय के भावानुसार अनेकानेक आकारों की 'देह सहित जगत' की जीव-सृष्टि में होता है। इसी प्रकार सोते समय जो मेरा जगत है, यदि वह मुझे मानसिक रूप से तनावित कर रहा है, तो निद्रा में बाधक बन जाता है। जो, जब, जहाँ, जैसा भी मैं होता हूँ उसमें **'समभाव'** देह भाव है, कि मैं देह हूँ। सम भाव से सम्भावना शब्द बना है। हम संसारी भौतिक बुद्धि के व्यक्ति हर कृत्य, विचार एवं भाव की भौतिक सम्भावनाएँ देखते हैं और विचारशील तत्त्वज्ञ सम्भावना का आकलन अपने सम भाव से करता है। कोई भी भाव उठने पर वह योग शक्ति, सद् संकल्प शक्ति एवं इच्छा शक्ति से इतना दृढ़ कर लेता है, कि तदनुसार स्वतः वह भाव देह सहित जगत में साकार रूप लेकर प्रकट हो जाता है।

योगी का सम भाव (देह भाव) जब फलीभूत होता है, तो उसकी

सम्भावना अनुमान या विकल्प युक्त नहीं होती। वह यथा तथ्य होती ही है। संसारी लोग सम्भावना के प्रकाट्य में जाते हैं, योगी मूल सम भाव से हर भाव को **'सम्भव'** कर लेता है। अथवा वह देह भाव (समभाव) के स्तर पर ही देख लेता है, कि अमुक भाव का प्रकाट्य असम्भव है। योगी का सम भाव पर अधिकार होता है। योगी चाहे तो असम्भव को सम्भव कर सकता है। विधि के विधाता के सारे लेख बदल देता है।

जो देह सहित जगत प्रकट हुआ है, स्वाध्याय द्वारा उसके मूल स्रोत तक पहुचना आवश्यक है। मैं देह नहीं हूँ। तो जो, जब, जहाँ, जैसी देह प्रकट हुई है तदनुसार प्रकट हुआ जगत भी **'मैं'** नहीं हूँ। तो **'मैं'** कौन हूँ? **'मैं'** जीवात्मा का शब्दरूप में प्रकाट्य है, लेकिन **'मैं'** स्वयं में अदृश्य व निराकार परमात्मा का विशुद्ध अभावमय एवं आनन्दमय मानस है। इस अभावमय मानस में देह व जगत सहित किसी भी साकार विधा के प्रति कोई भाव ही नहीं होता, क्योंकि यह चेतन, आनन्दमय मानस स्वयं में पूर्ण, विरक्त, सहज सुखराशि व सभी ईश्वरीय विभूतियों से सर्वसम्पन्न है। यह अभावमय मानस (**'मैं'**) देह व जगत की किसी भी विधा का भाव आते ही अभाव **में** होकर आसक्ति मन बन जाता है।

'मैं' (आत्म तत्त्व) की तलब मानव-जीवन व देह का मतलब (अर्थ) है। देह भाव में **'मैं'** जीवात्मा से जीव बनकर **'मैं' की तलब'** यानि देह के मतलब (अर्थ) को खोकर निरर्थ, व्यर्थ ओर अनर्थ में भटकता ही रहता हूँ। अतः मुझे सर्वप्रथम देह के अर्थ से आत्मसात् होना होगा। देह आत्म चिन्तन नहीं करने देगी। यदि मुझे देह का अर्थ जानने की तीव्र जिज्ञासा नहीं है और यदि आत्म-चिन्तन की इच्छा नहीं है, तो देह निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थपूर्ण जीवसृष्टि में ही भटकाएगी। यह देह, चिन्ता व चिता दोनों से ग्रसित होने के कारण देह-चिन्तन व स्वाध्याय भी पूरी ईमानदारी व निष्पक्षता से नहीं करने देगी।

'चिन्ता' **'जीवित'** व्यक्ति को जलाती है, उसकी **'भस्मी'** (विरक्ति) से परे कर देती है। **'चिता'** मृतक को जलाती है और भस्मी बनाती है। चिन्ता

और चिता दोनों देहार्थ (देह के लिए) हैं देह चाहे जीवित हो, चाहे मृतक हो लेकिन चिन्तन देह के अर्थ का होगा। देह जो, जब, जैसी, जहाँ भी हो, देह का अर्थ मात्र भस्मी और भस्मी मात्र है। देहार्थ (देह व देहों के लिए) समस्त पदार्थ चिन्ता ग्रसित ही रखते हैं। शव किसी भी समय बन सकता है यह शव भाव भी देह का भाव है। क्योंकि जन्म हुआ है, तो मृत्यु अवश्यभावी है। कोई भी श्वास अन्तिम हो सकती है। यह **'शव भाव'** देहार्थ सभी पदार्थों, प्राणियों व साकार देह सहित जगत की समस्त चिन्ताओं से मुक्त कर 'जगत सहित देह' रहित निद्रा की अभावमयी स्थिति में ले जाएगा। शव चिन्तन (शवत्व की मानसिक स्थिति) ही आत्म-चिन्तन है। मृतक देह (शव) को चिता जलाएगी और भस्मी बनाएगी। जब भस्मी बन जाएगी तो वह चिता को भी समाप्त कर देगी। यह भस्मी चिन्तन, चिन्ता और चिता दोनों को लील जाता है। जन्म और मृत्यु दोनों से परे भस्मी-चिन्तन ही वास्तविक चिन्तन है। **भस्मी-चिन्तन** में न 'देह सहित जगत' होगा न 'जगत सहित देह' होगी। **यह भस्मी-चिन्तन ही ब्रह्म-चिन्तन है।** भस्मी-चिन्तन देह के नाम-रूप को तिरोहित करते हुए **'मैं'** को जीव भाव (देह भाव—'मैं देह हूँ') से मुक्त करते हुए देह के यथार्थ (यथा+अर्थ) को अनाच्छादित कर देगा। देह भाव के हटते ही **'मैं'** की तलब (देह का मतलब) लिए हुए वह देह यथार्थ देह होगी। वह देह जीवात्मा का अवतरण होगी एवं स्वयं में **'मैंमयी'** जीवात्मा होगी। आत्म तत्त्व की जागृति से ब्रह्मचिन्तन होगा और ब्रह्मानुभूति में जीवात्मा व परमात्मा का भेद-अभेद, अद्वैत-द्वैत सब कुछ तिरोहित हो जाता है।

समस्त वक्तव्य का सार यही है, कि देह व देहों में देह सम भाव है। प्रत्येक देह का **'भाव सम'** पदार्थ देह की **'भसम'** है। चाहे वह जगत सहित सोने को उद्यत देह हो और चाहे वह 'देह सहित जगत' सहित उठी हुई **'देह'** हो। उस प्रकाट्य के नेपथ्य में देह भाव **'समभाव'** है। उस भावसम **'भसम'** से आत्मसात् होने की चेष्टा मानव-देह व जीवन की सार्थकता है।

'भाव सम' यानि **'भसम'** को मैं जीवन काल में आत्मसात् कर लूँ वह मेरे 'देह सहित जगत' सहित और 'जगत सहित देह' सहित दोनों स्थितियों

का एक ही पदार्थ होगा। इस स्थिति का नाम निर्वाण है, यही मोक्ष है। देहभाव को Smash (सम ऐश) करने के लिए भाव सम 'भसम' चाहिए। यह भसम देह भाव को हमेशा के लिए Smash कर देगी। सद्‌गुरु कहता है, कि उस ash (भसम) को धारण करके ही तू ऐश करेगा।''

'भस्मी' देह रहित है। देह भाव में देह 'देह सहित जगत' सहित ही होती है। जहाँ **'मैं'** शब्द का उद्‌घोष होगा, वहाँ नाम-रूप में देह होगी और देह होगी तो प्रकट-अप्रकट जगत सहित होगी। वहाँ किस-किस देह का स्वाध्याय करूँ ! अतः देह के रहते **'मैं'** को **भस्मी'** से जोड़ना ही प्रकट देह सहित जगत के मूल स्रोत तक पहुँचना है। **'मैं'** भस्मी हूँ, की अवधारणा में धारित **'मैंमयी'** देह विदेह व विरक्त देह होगी। इसलिए योगी की निद्रा को समाधि स्थिति कहा गया है। वह देह भाव हटा कर उस दिगम्बर स्थिति का आनन्द लेता है और खेलने के लिए देह भाव लीला में ओढ़ कर देह सहित जगत में स्वयं में, स्वयं ही से खेलता हैं

''बोल सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(18 से 21 फरवरी 2010)

लय योग

मानव-देह ईश्वर द्वारा ही निर्मित, पालित व संहारित है और कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के समस्त साकार एवं निराकार दृश्यमान जगत की एकमात्र प्रतिनिधि है। इसके एक-एक पल, एक-एक रोम, एक-एक योजना-परियोजना का स्वामी ईश्वर ही है, इसलिए देह अपौरुष है। साकार मानव-देह की निराकार अवस्थातीत अवस्था, जहाँ देह सहित जगत की सभी विधाएँ एवं सभी अवस्थाएँ समाप्त हो जाती हैं, वह देह के अन्त मृत्यु **'शव'** बनने के बाद शवान्त अथवा भस्मावस्था है, इसे अन्तान्त भी कह सकते हैं। इस अवस्था से स्वयं को पहचानूँ, तो मैं देह के रहते हुए देह द्वारा ही अपने अपौरुष एवं विशुद्ध जीवात्मा स्वरूप की अनुभूति कर सकता हूँ। एकान्त में एक का आभास रहता है और एक देह के साथ ही अनेक हैं। शव स्थिति एकान्त की स्थिति है, लेकिन भस्मावस्था शवान्त या एकान्तान्त है। इस स्थिति में एकान्त का भी अन्त हो जाता है। अतः एकान्तान्त (भस्मी) देह रूप में मेरा अन्तान्त है। यह भी देह की ही अवस्था है, जो मेरा निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य है।

देह की दृष्टि से रुग्णावस्था, स्वस्थावस्था, सुखावस्था, दुःखावस्था, सुषुप्तावस्था, विस्मृति अवस्था, स्वप्नावस्था, मूर्च्छावस्था, शैशवावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, शवावस्था और सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक, राजनैतिक, मानसिक और प्रौपर्टी-सम्पत्ति आदि की दृष्टि से एवं अन्यथा भी जितनी अवस्थाएँ हैं, उन सबका **'भस्मी'** में जा कर विलय हो जाता है। **साकार देह की सभी अवस्थाओं का विलय होने के कारण भस्मीयोग को लययोग की संज्ञा दी गई है।** भस्मी में जाकर पंच-महाभूतों द्वारा निर्मित एवं

पालित साकार देह अपनी समस्त सृष्टि सहित पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। मृतक देह के पंच-महाभूतों में विलय होने के बाद भस्मी शेष रहती है। **''भस्मी'** बनने के लिए आवश्यक है, कि देह पहले शव बने। कोई ज़िन्दा व्यक्ति भी यदि अग्नि में कूद जाए, तो भस्मी बनने से पहले वह मृतक होगा, उसका शव बनेगा और मृतक देह जब पंच-महाभूतों में विलीन होगी, तो भस्मी प्रकट होगी। विशेष देह का शव, देह विशेष का है, लेकिन विशेष देह की भस्मी, देह विशेष की नहीं है। क्योंकि भस्मी से किसी नाम-रूप की देह और उसके विशिष्ट एवं सामान्य निजी जगत को पहचाना नहीं जा सकता। देह का अन्त शव, अग्नि द्वारा पंच-महाभूतों में विलय होता है और अन्ततः अन्तान्त में भस्मी शेष रह जाती है। साकार देह व जगत की यह भौतिक दृश्यमान स्थिति है। अब सद्गुरु-कृपा से मैं इस स्थिति का आध्यात्मीकरण कर रहा हूँ। यह समस्त विषय आत्मानुभूति का है एवं मात्र श्रुतिगम्य है। आप अति श्रद्धा एवं एकाग्रता से इसका श्रवण करें।

वैराग का संघनित पुंज **'शिव'** जब क्रीड़ा करना चाहता है, तो अपनी अतिशक्ति **'विरक्ति'** से पंच-प्राणों की अदृश्य महाशक्ति को प्रकट करता है और उससे स्वतः, स्वान्त सुखाय, स्वयं में क्रीड़ा करता है। इस शिव-शक्ति-क्रीड़ा के आनन्द का प्राकट्य पंच-प्राणों से पंच-महाभूतों की निराकार व साकर सृष्टि के अनेकानेक रूपों में होता है। पंच-प्राणों का प्रकाट्य पंच-महाभूत परम सशक्त होते हुए भी स्वयं में सहज जड़ हैं। अविरल, निरन्तर, चिरन्तन, अकाट्य, अबाध, अति सारगर्भित, संक्षिप्त, परम विशिष्ट, गुणात्मक एवं उद्देश्यात्मक—दशानन गतिशील पंच-महाभूतों की गति की शक्ति, शिव की अतिशक्ति **'विरक्ति'** है। पंच-महाभूत प्रकट हुए पंच-प्राणों से और उन्हें गति मिली अतिशक्ति विरक्ति से। न पंच-प्राणों का कुछ कम हुआ, न अतिशक्ति स्वयं में कम हुई। अतिशक्ति विरक्ति और उससे क्रीड़ा हेतु प्रस्फुटित पंच-प्राणों की महाशक्ति दोनों स्वयं में निर्लेप हैं। उन्हें पंच-महाभूतों के प्रपंच से कुछ लेना-देना नहीं है। इनकी क्रीड़ा पंच-महाभूतों के प्रपंच के प्रकटीकरण के लिए न होकर स्वयं में, स्वतः एवं स्वान्त सुखाय होती

है। कृपया एकाग्र करें, मैं पुनः वर्णन करूँगा।

किसी भी क्रीड़ा में कम से कम दो पक्ष होने आवश्यक हैं—एक पक्ष है शिव की अतिशक्ति विरक्ति जिसकी कोई गणना या सीमा नहीं है। उससे पंच-प्राणों की अदृश्य महाशक्ति प्रकट हुई। पंच-प्राणों की अदृश्य ज्योति, विरक्ति से ही क्रीड़ा करती है। इस क्रीड़ा के दौरान पंच-प्राणों की अदृश्य महाशक्ति पंच-महाभूतों के रूप में दृश्यमान हो गई। हमारी मानव-देह पंच-प्राणों से प्रकट इन्हीं पंच-महाभूतों के चमत्कारिक संगम से बनी है, तो हमारी गतियाँ अस्त-व्यस्त क्यों हैं ? पंच-प्राणों की अतिशक्ति विरक्ति से हुई क्रीड़ा में पंच-प्राण तो पंच-महाभूतों के रूप में प्रकट हुए और वह **एक** विरक्ति शक्ति अदृश्य भस्मी के रूप में पांचों महाभूतों के कण-कण में समाहित होकर इनकी दशानन गतियों का कारण बनी। प्राण, प्राण से प्रकट अग्नि, अपान से प्रकट वायु, समान से प्रकट पृथ्वी, उदान से प्रकट जल और व्यान से प्रकट आकाश को उस एक अतिशक्ति विरक्ति ने अदृश्य रूप में दशानन गतियाँ दी। जिसके फलस्वरूप पंच-महाभूतों के प्रपंच रूप चराचर जगत का निर्माण, पालन एवं संहार हुआ और इसका प्रकाट्य एवं प्रतिनिधित्व भस्मी रूप में साकार देह सहित समस्त चराचर जगत के पंच-महाभूतों में विलय के पश्चात् दृश्यमान होता है।

अतिशक्ति और महाशक्ति में सतत् क्रीड़ा चलती रहती है और उस क्रीड़ा के आनन्द का प्रकटीकरण पंच-महाभूतों के रूप में होता है। ये हैं, लेकिन यह प्रकाट्य मात्र आभास है, इसलिए इसे माया कहते हैं। शिव-शक्ति-क्रीड़ा का यह **'सुफल'** मानव-देह व जगत होते हुए भी नहीं है। इस सद् की अनुभूति मानव-देह से ही होती है। पंच-महाभूतों का प्रपंच प्रभु का तमाशा है। पंच-महाभूतों के चमत्कारिक संगम से मानव-देह और समस्त साकार सृष्टि का निर्माण, पालन व संहार होता दिखाई देता है, जो स्वयं में कुछ नहीं है। यदि ये सब कुछ नहीं है, तो क्यों है ? प्रभु द्वारा निर्मित, पालित और संहारित कोई भी विधा चाहे साकार हो या निराकार व्यर्थ नहीं हो सकती। **'मैं'** (जीवात्मा) को अपने स्वरूप का ज्ञान कराने के लिए प्रभु ने

उसे मानव-देह दी और देह भाव में जगत सहित देह का प्रकाट्य हुआ जो कुछ नहीं **'है'**। स्वप्न सृष्टि से जिज्ञासु सृष्टि के सद् को अधिगृहीत करता है।

मानव-देह पाकर हम विरक्ति को भूलकर साकार मायिक जगत में फँस जाते हैं और सब कुछ का प्रकाट्य 'कुछ नहीं' (विरक्ति का प्रतिरूप भस्मी) से होता है। मानव-देह का हमने बहुत अपमान किया है। इसे उन कामों के लिए इस्तेमाल किया है, जिनके लिए पशु-पक्षी भी चिन्तित नहीं होते। हमने अपनी मानव-देह की गरिमा को जाना ही नहीं। सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड के शासक की इकलौती सन्तान जीवात्मा स्वयं में युवराज होते हुए भी देह के साथ तद्रूपता में साकार जगत में प्राप्य की प्राप्तियों के लिए युगों-युगान्तरों से भटक रहा है। ईश्वर ने समस्त साकार सृष्टि सहित मानव-देह में अपने साकार के साथ अपने निराकार का समस्त रहस्य भी छिपा दिया। महादुर्भाग्यवश मानव होश सम्भालते ही साकार की ओर दौड़ने लगा और निराकार को उपेक्षित कर दिया। ईश्वर ने दृश्यमान साकार देह का निराकार दृश्यमान स्वरूप (भस्मी) देहातीत रख दिया। साथ ही एक औपचारिकता रख दी, कि देह को भस्मी बनने से पहले **'शव'** बनना पड़ेगा।

अन्तान्त में देहातीत बनने वाली भस्मी, देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य है, लेकिन देह और भस्मी के मध्य में शवावस्था या मृतकावस्था की कड़ी है। भस्मी, शव की होती है, यदि यह समस्या न होती, तो मैं सीधा भस्मी से सम्पर्क कर लेता। जीते जी देह के रहते जीवन-काल में भस्मी की अवधारणा के लिए जीते जी पहले मृतक की नाईं होना पड़ेगा। कोई व्यक्ति किसी भी दैहिक अवस्था में है, उसकी मानसिक स्थिति पहले शव की बने और फिर पंच-महाभूतों की मृतक देह का पंच-महाभूतों में विलय हो, तब **'लययोग'** की स्थिति सम्भव है। किसी भी मानव की जो भी अवस्था हो, उसकी देह से सम्बन्धित सभी दैहिक अवस्थाओं का उसके लिए महात्म्य समाप्त होना आवश्यक है। जब **'मैं'** (जीवात्मा) भस्मी से आत्मसात् होना

चाहता हूँ, जो मेरी देह की निश्चित, परिलक्षित, दर्शित अवस्था है, तो देह के होते हुए मुझे देह की सभी अवस्थाओं से परे होना होगा। देहातीत से तात्पर्य देह का न होना नहीं है। सुषुप्ति में **'मैं'** देहातीत होता हूँ, लेकिन मुझे ज्ञान एवं अनुभूति नहीं होती, कि मैं देहातीत हूँ और मुझ पर देह की कोई अवस्था लागू नहीं हो रही है। यद्यपि निद्रा में सब कुछ लय हो जाता है और मेरे लिए पंच-महाभूतों की कोई साकार या निराकार विधा नहीं होती, लेकिन **'सुषुप्ति' 'लययोग'** नहीं है, क्योंकि मुझे उस स्थिति का आभास नहीं होता। इसी प्रकार भौतिक रूप से **'शव'** या **'भस्मी'** बनना एकान्त और एकान्तान्त (लययोग) नहीं है। क्योंकि तब **'मैं'** शब्द रूप में प्रकट नहीं होता। जीवात्मा का द्योतक **'मैं'** शब्द प्राणयुक्त सुषुप्त देह को उठा देता है और मानव होने के नाते मैं अपनी देह का अन्त और अन्तान्त जानता हूँ। भौतिक रूप से यह एक क्रम है, कि पंच-महाभूतों की देह शव बनी और पंच-महाभूतों में ही विलीन होने के बाद भस्मी प्रकट हुई। शव बने बिना और शव के पंच-महाभूतों में विलीन हुए बिना भस्मी नहीं बनेगी।

जीते जी **'भस्मीयोग'** को लययोग कहते हैं। जब मैं (देह से तद्‌रूप हुआ जीव) जीवन-काल की किसी भी अवस्था में अपनी देह की भौतिक रूप से बनने वाली भस्मी के साथ योग करता हूँ, तो सद्‌गुरु कृपा से मेरी लययोग में प्रविष्टि होती है। लेकिन लययोग में प्रविष्टि से पहले देह के साथ तद्‌रूपता में मेरी देह की जितनी भी विभिन्न अवस्थाएँ और विभिन्न दृष्टियों से स्थितियाँ हैं, उनका मेरे लिए भस्मित होना अनिवार्य है।

वस्तुतः भस्मीयोग या लययोग देह की सभी अवस्थाओं एवं स्थितियों से वियोग की स्थिति है। जो मेरे दिल, दिमाग में हैं, थी और हो सकती है, उन सम्पूर्ण अवस्थाओं से एक वियोग का नाम 'लययोग' है। **मैं साकार देह के किंचित दिगम्बर तत्त्व (भस्मी) से योग क्यों न कर लूँ, जो स्वतः सभी अवस्थाओं से विमुक्त है।** इसलिए मुझे अपनी देह की देहातीत अवस्था भस्मी से योग करना होगा और सद्‌गुरु कृपा से वह भस्मी जब मुझे अपना लेगी, तो मैं अवस्थातीत **'लययोग'** की स्थिति की अनुभूति करूँगा। मानव

होने के नाते यही मेरा कर्म है, जो कृपासाध्य है। **'मैं'** देह की बजाय उस भस्मी को अपना स्वरूप मान लूँ, तो उस मानसिक स्थिति में प्रविष्टि पा लूँगा, जिसमें एक देह के साथ असंख्य देहों की सम्पूर्ण अवस्थाओं का लय हो जाएगा। मेरा भूत, भविष्य, वर्तमान सब विलीन हो जाएगा। आसक्तियाँ अवस्थाओं की हैं। विरक्ति मात्र देह की एक अवस्था (भस्मी) से आत्मसात् होकर ही सम्भव है।

जब हम जीवन-काल में देह की अन्ततः भौतिक रूप से बनने वाली भस्मी को आत्मसात् करते हैं, तो यज्ञाग्नि की भाँति लपटें देह में प्राण अथवा अग्नियुक्त भस्मी से आत्मसात् होंगी। जीवन-काल में वर्तमान में जो भस्मी है वह अग्नियुक्त है। वह अग्नि की लपटों की सभी विभूतियों से युक्त है। यज्ञाग्नि की लपटों के नीचे यद्यपि भस्मी दिखाई नहीं देती, लेकिन बिना अग्नि युक्त भस्मी के लपटें हो ही नहीं सकती। हवन में अग्नि प्रकट होते ही भस्मी बननी प्रारम्भ हो जाती है और लपटें अग्नियुक्त भस्मी से ही उठती हैं। जीवन में देह व जगत में सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति की लपटें अग्नियुक्त (प्राण शक्ति युक्त) भस्मी (विरक्ति) से ही उठती हैं। अग्नियुक्त भस्मी ने अग्नि की सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति सभी विभूतियों को देखा है और देख रही है।

सद्गुरु कहता है, कि ''जीवन-काल में जब देह में तेरी सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति की लपटें अति प्रचण्ड होती हैं, तो तू भूल जाता है, कि तेरे साथ एक देहातीत, लपटातीत, प्रकाशातीत तत्त्व भी साथ ही है, जो प्रत्यक्ष रूप से प्रकट तब होगा, जब तेरी देह के साथ वे समस्त विभूतियाँ भी तेरे लिए नहीं रहेंगी। तेरी समस्त चाहतें व अवस्थाएँ जो तेरे सौन्दर्य रूपी लहलहाती लपटों, ज्ञान रूपी प्रकाश, शक्ति रूपी प्रचण्डता, ऐश्वर्य रूपी पदार्थों और ख्याति रूपी धूने की हैं, उनसे अतीत तत्त्व तेरे जीवन के दौरान भी है। वही तेरा आधार है। तू जीवन में चाहे तथाकथित आगे बढ़ रहा है या पीछे हट रहा है, वह तत्त्व निरन्तर बढ़ रहा है। तूने देह में अपने सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति आदि को मान लिया और उन सबसे स्वयं को

पहचाना, तो तू विरक्ति को क्यों भूल गया। देह का वह तत्त्व प्रकट तब होगा जब देह नहीं रहेगी, देह के दौरान भी वह तत्त्व है। देह एवं देह के विभिन्न पदों का तथा तेरा स्वयं का **'अर्थ'** वही है। जब वह प्रकट होगा, तो तेरी देह के विभिन्न पद नहीं रहेंगे।''

''तू जीवन-काल में देह रूप हो गया और देह के विभिन्न पदों से स्वयं को ऊँचा-नीचा मानता है परन्तु इन समस्त पदों का अर्थ तो यह भस्मी रूप देहातीत एवं तत्त्वातीत पदार्थ है। यह देह का निश्चित, परिलक्षित, दर्शित भविष्य **है**। जो है, वह जीवन-काल में देह के रहते दिखाई नहीं देता। इसलिए उसे देखने के लिए उस तत्त्व की अवधारणा का सहारा ले। देह-काल में वह अदृश्य इसलिए है क्योंकि देहातीत है। लेकिन जब तू उसका ध्यान करेगा तू देह के दौरान देहातीत हो जाएगा। देह की अन्ततः भौतिक रूप से प्रकट होने वाली भस्मी तत्त्वातीत तत्त्व एवं विभूत्यातीत विभूति है।'' पंच-महाभूतों की देह के रहते यदि मैं (देह के साथ तद्रूप जीव) उस भस्मी तत्त्व से स्वयं को पहचानता हूँ, तो देह का यथार्थ एवं अपना विशुद्ध स्वरूप अनुभव करता हूँ। सद्गुरु के संकेत पर उसी की कृपा से मैंने मात्र अपना दृष्टिकोण बदला, कि मैं देह नहीं, मैं भस्मी हूँ। मैं उस भस्मी की वजह से ही हूँ। देह पहले थी नहीं और अन्ततः रहेगी नहीं। भस्मी थी, भस्मी है और भस्मी रहेगी।

सद्गुरु आश्वस्त करता है, कि ''देह के अन्त (देहान्त) के बाद अन्तान्त में प्रकट होने वाली भस्मी एक ऐसा पदार्थ (पद+अर्थ) जो पंच-महाभूतों से अतीत तत्त्वातीत तत्त्व एवं विभूत्यातीत विभूति है। इस पदार्थ को जब तू देह के रहते, ध्यान में आत्मसात् करेगा, तो देह में समस्त पदों एवं पदार्थों का माहात्म्य तेरे लिए शून्य हो जाएगा। तू मानव-जीवन का वास्तविक **'अर्थ'** और देह का यथार्थ (यथा+अर्थ) एवं अपना विशुद्ध जीवात्म स्वरूप पा जाएगा। यही **'लययोग'** का सार है।'' यज्ञाग्नि में नीचे अप्रकट रूप से विद्यमान भस्मी यद्यपि अग्नियुक्त होती है, लेकिन स्वयं में पंच-महाभूतों से अतीत होती है। उसकी अग्नियुक्तता ऊपर लहलहाने वाली

लपटों की वजह से होती है। अग्नियुक्त भस्मी में अग्नि की समस्त विधाएँ अदृश्य रूप से समाहित हैं। धूना भी अग्नि का द्योतक है। शीतल भस्मी से लपटें आत्मसात् हो नहीं सकती। इसलिए देह के उस तत्त्वातीत तत्त्व से (जब देह न शव बनी है, न भस्मी बनी है) आत्मसात् होने पर **'मैं'** उस भस्मी की ही भाँति अवस्थातीत हो जाता हूँ और अपने विशुद्ध स्वरूप की अनुभूति करता हूँ।

भस्मी से किसी व्यक्ति विशेष की पहचान नहीं हो सकती। वह भस्मी न साधु है, न शैतान है। न गुरु है, न शिष्य है। न वह सम्राट है, न प्रजा का कोई साधारण व्यक्ति है। न बालक है, न युवा है, न वृद्ध है। न पापी है, न पुण्यी है। सद्गुरु उस देहातीत भौतिक भस्मी का ध्यान करवाता है, जहाँ सब पदार्थों एवं साकार देह की समस्त विधाओं का लय हो जाता है। वह जड़ भस्मी विरक्ति रूप में जीवन्त हो जाती है। विभूत्यातीत विभूति देह को विभूतियों से विभूषित कर देती है और तत्त्वातीत तत्त्व उस महामानव को तत्त्वज्ञ महापुरुष बना देता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(30 मई 2008 एवं 24 जून 2009)

सदासद्

हमें यह पंच-महाभूतों द्वारा निर्मित मानव-देह प्रारब्धवश मिली है। यह जन्म एवं मृत्यु तक दो छोरों में बँधी, निरन्तर एवं अविरल परिवर्तनशील है। हम चाहें न चाहें, इसमें हर निमिष परिवर्तन होता रहता है। **'सद्'** परिवर्तित नहीं होता, लेकिन असद् का आधार **'सद्'** ही होता है। **'सद्'** के बिना असद् भी नहीं होता। **'सद्'** के बिना सम्पूर्ण कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का एक कण भी नहीं हो सकता। सद् और असद् की यदि सन्धि (सद्+असद्) कर दें, तो **'सदासद्'** हो जाएगा। सद् और असद् दोनों अलग-अलग हैं। सद् को प्राथमिकता देते हुए यदि दोनों को मिला दें, तो सब कुछ सदासद् हो जाता है। यही एक द्वार है, जिसके द्वारा असद् से तात्कालिक व अस्थाई **'सद्'** नहीं, सदासद् को पाया जा सकता है। **'सद्'** की विमुखता में हम प्रारब्ध, दुःखों-सुखों, जन्म-मृत्यु, कर्म-बन्धन, काल-बन्धन की अन्तहीन श्रृंखला में जकड़े गए। कोई भी पहिया एक धुरी पर घूमता है। वह धुरी या केन्द्र स्वयं में अपरिवर्तनीय है, जो स्थिर रहता है। सद्गुरु-कृपा से अपनी इस तथाकथित असद् देह द्वारा देह के सद् की अनुभूति आत्मानुभूति बन जाती है।

जीवात्मा को मानव-देह के साथ नाम-रूप में तद्रूपता और देहाध्यास होते-होते देह-धारणा पुष्ट हो गई। वहीं से दो बहुत कठिन बन्धन पड़ गए—काल-बन्धन और कर्म-बन्धन। मैं काल-बन्धन और कर्म-बन्धन में ऐसा जकड़ा गया, कि इससे बाहर आना दूभर हो गया। मुझे देहधारणा साकार देह के साथ हुई, जो पूर्णतः काल के अधीन है। यद्यपि काल और अकाल

दोनों महाकाल की विधाएँ हैं। महा+काल=महाकाल और महा+अकाल= महाकाल।

साकार देह की हर विधा, अवस्था, कृत्य, अकृत्य, कुकृत्य और सब कुछ **काल** के तीनों अंगों समय, स्थान एवं स्थिति से बंधा है। सम्पूर्ण जीवन-काल प्रत्येक मानव के लिए माँ के गर्भ में आने से लेकर मृत्योपरान्त भस्मी बनने और अस्थि-विसर्जन तक **'काल'** से बँधा है। इसका प्रत्येक एपीसोड पहले से ही अंकित है, जो पृथक्-पृथक् स्थिति के अनुसार समय-समय एवं स्थान-स्थान के दृश्यों में पहले से ही Recorded है। विशिष्ट एपीसोड में विशिष्ट स्थिति बनती है, जिसके अनुसार समय और स्थान का निर्धारण होता है। यह प्रारब्ध एवं काल-चक्र तब लागू होता है, जब हम होश सम्भालने पर ईश्वरीय सत्ता के विमुख होते हैं।

असीम (ईश्वर) द्वारा निर्देशित, प्रतिपादित, संचालित, सम्पादित, नियन्त्रित कृत्यों पर हम अपनी शारीरिक, बौद्धिक और मानसिक क्षमता एवं सामर्थ्य का अधिकार जता कर अधिपत्य कर लेते हैं। यह मैंने किया, मैं न करता तो कैसे होता ! हमारे प्रारब्धवश भी जो कुछ होता है, वह भी ईश्वर द्वारा ही होता है तथा उसके अधीन है। हम जीवन-काल में होने वाली घटनाओं को अपने प्रारब्धवश घटी हुई मान लेते हैं, लेकिन वे भी ईश्वर की इच्छा से ही घटित होती हैं। वह महा कालेश्वर उनमें जो भी चाहे परिवर्तन, संशोधन, पुनर्निर्माण, परिवर्द्धन, उन्मूलन आदि कर सकता है। समय, स्थान और स्थिति का अकाट्य एवं अविरल संगम ही **'काल'** है। **'काल'** स्वयं में अकाल के नहीं, कालेश्वर के अधीन है। साकार जगत में हमारी देह व देहें किस समय, किस स्थान पर होंगी इसका निर्धारण स्थिति करती है, जिसे कालेश्वर ने अपने हाथ में रखा है।

समय, स्थान व स्थिति को मैं बाँधना चाहता हूँ, लेकिन वे मुझसे बँधे हुए नहीं हैं। यदि वे मुझसे बँधे नहीं हैं, तो किससे बँधे हैं? मेरे जीवन का आधार काल के ये तीनों अंग हैं। जीवन-काल से **'मैं'** बँधा हूँ, लेकिन काल मुझसे बँधा नहीं है। मेरा भ्रम है, कि वह मुझसे बँधा है, इसलिए छोटी-मोटी

प्राप्ति हो जाती है, तो मुझे अहंकार हो जाता है, कि मेरे करने से हुआ है। अहंकार के साथ ममकार पैदा हो जाती है। अहंकार और ममकार दोनों हमारे भयानक शत्रु हैं। जब हम साकार देह धारण करते हैं, तो इन दोनों शत्रुओं के विध्वंस के लिए **'हुंकार'** चाहिए। ''शिवोऽहम् शिवोऽहम्''।

मैं काल के दृष्टिकोण का अधिग्रहण कर लूँ, तो मेरी दृष्टि काल के ज़रिए सद् के उन्मुख हो जाएगी। जो भी कर्म हो रहा है या होना है, वह काल के अधीन है, मेरे अधीन कुछ भी नहीं है। इस भाव से काल ही तब अकाल में ले जाता है। काल-बन्धन स्वीकार नहीं करेंगे, तो कर्म-बन्धन और पड़ जाएगा। काल-बन्धन और कर्म-बन्धन ही प्रारब्ध है। प्रारब्ध का यह शिकंजा ही मुझे आधि-व्याधि-उपाधि, वैर-वैमनस्य, रोग-दोष, भय-त्रास, मल-विक्षेप तथा आवरण में युगों-युगान्तरों से असंख्य जन्मों-जन्मान्तरों के कल्पित काल-चक्र में भटका रहा है।

काल और अकाल में बहुत सूक्ष्म, चमत्कारिक एवं रहस्यपूर्ण अन्तर है। काल की समय, स्थान एवं स्थिति तीन विधाएँ हैं। इनमें समय के भूत, भविष्य एवं वर्तमान तीन रूप हैं। स्थान, समय के साथ बँधा है और स्थान एवं समय, स्थिति के अधीन हैं। उस स्थिति के अनुसार ही उस समय के भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों रूप होंगे। कोई स्थिति किसी के हाथ में नहीं है।

अकाल वस्तुतः स्वयं में एक स्थिति है, जो काल के समय और स्थान से परे स्थित्यातीत स्थिति है। कालाधीनता (काल+अधीनता) ही अकालाधीनता (अकाल+अधीनता) बन जाती है और मेरा बन्धन मात्र महाकालेश्वर से रह जाता है। **'मैं'** काल से बन्धन स्वीकार करता हूँ, तो काल अपना बन्धन छोड़ देता है और अकाल से जोड़ देता है, क्योंकि काल स्वतः ही अकाल से बँधा है। अकाल-बन्धन स्वयं में बन्धन न होकर स्थित्यातीत अकाल स्थिति है जो मात्र महाकालेश्वर द्वारा प्रेरित, संचालित, सम्पादित एवं नियन्त्रित होती है। समय का सदुपयोग यही है, कि समय को स्थान और स्थिति सहित **'सद्'** चरणों में समर्पित कर दें। यही जीवन का

अर्थ है। जितना ज्योतिष शास्त्र और भविष्य ज्ञान है, वह काल-बन्धन का ज्ञान है।

जीवन-काल में होते विभिन्न परिवर्तनों में जब कभी विवेकशीलता या विचारशीलता उत्पन्न होती है तो मानव यह जानना चाहता है, कि इस सबका अर्थ क्या है? विवेकशील मानव किसी जन्म में विशिष्ट सद्‌गुरु-कृपा से यह सोचता है, कि ''समस्त प्राणी-जगत में सर्वोत्कृष्ट एवं परम विलक्षण मानव-देह मुझे किसलिए मिली है? प्रारब्ध और काल के मैं वशीभूत हूँ, तो हे प्रभु ! इस देह का अर्थ क्या यही है ? जीवन कालवश है, इसलिए जीवन-काल कहा गया है। इसमें सब कुछ स्वतः हो रहा है। जो मुझसे करवाना है, करवा लिया जाता है। जो कालवश हो रहा है, इसका मेरे लिए **'अर्थ'** क्या है और इसमें मेरी भूमिका क्या है? कर्ताभाव के कारण मुझे पहले काल-बन्धन पड़ गया और प्रारब्ध बन गया। अब मैं फिर कुछ करूँगा या करवाऊँगा तो फिर बन्धन पड़ेगा। मेरा छुटकारा कब और कैसे होगा?''

मेरे होने का अर्थ क्या है? जब यह आर्तनाद आत्मा की गहराइयों से उठती है, तो जीव अपनी समस्त प्राप्तियों, पाने, खोने और साकार जगत की समस्त विविध विधाओं से उपराम (विरक्त) हो जाता है। वे सब निरर्थक होती हुई, महत्त्वहीन प्रतीत होने लगती हैं। सब कुछ जानकर अपनी बुद्धि द्वारा मैं इतना जान जाऊँ, कि इस सबका कुछ अर्थ नहीं है। जब तक अपनी देह पर आधारित प्राप्तियों का कुछ भी अर्थ मेरे मन-मस्तिष्क में रहेगा, तब तक वे महत्त्वहीन नहीं लगेंगी। अर्थ ही आधार है, जो ऊर्ध्वगति एवं अधोगति का मापदण्ड है। जिसने अर्थ को छू लिया, उसकी अधोगति कभी नहीं होती। देह की समस्त ऊर्जाओं, बलों, बौद्धिक व मानसिक शक्तियों, सक्षमताओं, विभिन्न प्रेरणाओं व निर्देशों द्वारा जो कुछ भी प्राप्त किया है, जब जीव उसका **'अर्थ'** जानना चाहता है, तो उन समस्त सक्षमताओं के बावजूद वह स्वयं को अक्षम ही पाता है। सक्षमताओं में अक्षमता की स्वीकृति ही सर्वोकृष्ट मानवीय बुद्धि का **'अर्थ'** है। क्योंकि सक्षमताओं में हुई प्राप्तियाँ

महत्त्वहीन हो जाती हैं और तभी मानव, जीवन के वास्तविक लक्ष्य या अर्थ की ओर अग्रसर होता है।

भौतिक दृष्टि से कोई भी प्राप्ति मेरी मानव-देह की Value से कम है। यदि मैं देह का मूल्यांकन दैहिक प्राप्तियों से करता हूँ, तो निश्चय ही मैंने ईश्वरीय सर्वोत्कृष्ट एवं परम चमत्कारिक व रहस्यमय सुकृति का घोर अपमान एवं अवमूल्यन कर दिया। वहाँ वह देह ही मेरे विरुद्ध हो जाती है। लोक-परलोक, सम्बन्ध, धर्म-कर्म-कर्तव्य, स्वर्ग-नरक, भूत-भविष्य, वर्तमान और न जाने किस-किस प्रकार की मान्यताओं, धारणाओं के मकड़ जाल में बुरी तरह से जकड़ कर दीन-हीन सा पशुवत् जीवन यापन करता रहता हूँ। अपने से अपने को आवृत करता हुआ और समय, स्थिति, कर्म, समाज, युग-प्रभाव न जाने किस-किस पर दोषारोपण करता हुआ, एक मिथ्या आडम्बरपूर्ण जीवन पर जीवन घसीटता रहता हूँ।

इस प्रकार ये मिथ्या काल-बन्धन, कर्म-बन्धन अन्योन्याश्रित रूप से नकारात्मकता एवं अधोगति में ढकेलने का कारण बनते रहे और युगों-युगान्तरों में यह अनर्थकारी सिलसिला चलता रहा। अनेकों सक्षमताओं में जीवन के **'एक'** अर्थ को जानने की लालसा के बिना सद्गुरु के चरणों मे समर्पण नहीं हो सकता। **'देहानुभूति'** के प्रवचनों में मैंने मानव-देह के पंच-पाद् सदों का विस्तृत वर्णन किया था :—

1. मानव-देह परमात्मा की समस्त सृष्टि की सर्वोत्कृष्ट, चमत्कारिक एवं विशिष्ट रहस्यमयी संरचना है।

2. जन्म से मृत्यु तक एक सुनिश्चित अवधि में बँधी है। इस देह की अवधि का ज्ञान मानव को न कभी था, न है और न हो सकता है।

3. यह पल-पल परिवर्तनशील है। परिवर्तनशीलता इसका अपरिवर्तनीय **'सद्'** है।

4. यह नश्वर है।

5. अन्ततः डेढ़ दो किलो भस्मी बनना इसका निश्चित, परिलक्षित एवं दर्शित भविष्य है।

जन्म-मृत्यु सहित साकार देह से ही **'मैं'** (जीवात्मा) ने अपने जन्म-मृत्यु रहित शाश्वत् एवं निराकार स्वरूप का दिग्दर्शन किया। सतत् परिवर्तनशील देह का परिवर्तनशील होना इसका अपरिवर्तनीय सद् है। देह ब्रह्माण्ड की सर्वोत्कृष्ट संरचना है और **'मैं'** (जीवात्मा) ब्रह्माण्डातीत हूँ, क्योंकि मैं निर्माणातीत, पालनातीत संहारातीत हूँ। क्योंकि देह ब्रह्माण्ड में है, इसीलिए मैं ब्रह्माण्डातीत हूँ। देह और ब्रह्माण्ड के बिना मेरा ब्रह्माण्डातीत होना कहने में नहीं आ सकता। दूध के कण-कण में घी छिपा है, लेकिन प्रकट नहीं है। दही बनाकर एवं मन्थन करके घी को प्रकट किया जाता है। एक बार घी बन जाने पर फिर कभी पुनः दूध में परिवर्तित नहीं हो सकता। इसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में दिव्यता एवं चेतनता छिपी है। चेतना है, तो अवचेतना है। देह से ही **'मैं'** जाग्रत होगी। निराकार तत्त्व (**'मैं'**) सक्रिय साकार देह के सान्निध्य से प्रकट हुआ है। प्रकट होने के बाद उसका वाणी से शब्द रूप (**'मैं'**) में प्रकाट्य होता है। शब्द में साकार से निराकार तत्त्व को प्रकट करने की शक्ति है। इसलिए शब्द ब्रह्म है। देह की नश्वरता जीवात्मा की शाश्वतता से वर्णित होगी। जीवात्मा की शाश्वतता की उद्घोषणा नश्वर देह द्वारा ही होती है। जब ये दोनों सद्+असद् मिलेंगे, तो सब कुछ सदासद् हो जाएगा। **'मैं'** (जीवात्मा) देह के साथ तद्‌रूप हो गया, जोकि हो ही नहीं सकता। अतः भ्रमित अवस्था में यह तद्‌रूपता **सी** है, दोनों एक दूसरे के सद् वर्णित करने के लिए हैं। लेकिन जब **'मैं'** देह के साथ तद्‌रूप **सा** हो गया, तो देह भी देह **सी** हो गई। **'मैं'** (जीवात्मा) भी मैं **सा** हो गया और ईश्वर भी ईश्वर **सा** हो गया। तद्‌रूप **सा** हो गया, तो शब्द भी **'भ्रम'** हो गया और जब तद्‌रूप नहीं हुआ, तो शब्द तो ब्रह्म है ही। जो भ्रम मुझे भटका सकता है, वह मुझे स्थिर क्यों नहीं कर सकता ! जिस वस्तु में भटकाने की शक्ति है, उसमें स्थिर करने की शक्ति भी होनी चाहिए। अंगरक्षक आपके विरोधियों का सिर तोड़ने और आपका सिर बचाने के लिए नियुक्त किए जाते हैं, अतः उसी एक व्यक्ति में सिर बचाने और सिर तोड़ने की शक्ति है। इस **भ्रम** का भी सदुपयोग किया जा सकता है।

निद्रा, मूर्च्छा, विस्मृति, मृत्यु की जड़ स्थितियों में पूर्णतः ईश्वर विमुखता होती है। इस जड़ता तथा पूर्ण चेतना में कोई भ्रम नहीं होता। **भ्रम** मात्र अवचेतना में होता है और अवचेतना में जो होता है, वह भ्रम ही होता है। **'सद्'** का स्पर्श पाने एवं दिग्दर्शन करने के लिए यदि असद् देह का सब कुछ भी दांव पर लगा देना पड़े, तो मुझे शीघ्रातिशीघ्र लगा देना चाहिए। **'सद्'** कभी परिवर्तित नहीं होता और मेरा स्वरूप **'सद्'** है, जिसे मैं **'असद्'** के चक्कर में खो चुका हूँ। सद्गुरु कहता है, कि तेरी असद् देह की एक ही स्थिति सद् एवं अपरिवर्तनीय है, वह तेरी देह की भस्मी है। देह आज है, कल हो भी सकती है, नहीं भी हो सकती। यदि होगी, तो बदली हुई होगी। इस परिवर्तनशील से तू अपरिवर्तनीय को मान ले और उसे जान ले, फिर देह व जगत तेरे लिए होंगे। देह असद् है क्योंकि परिवर्तनशील है। देह की भस्मी सद् है इसलिए अपरिवर्तनीय है। उस भस्मी से तू अपना अनाच्छादन कर। इस एक **'सद्'** के साथ तू कितने भी असद् जोड़ ले, वे (सद्+असद्) सदा, सदा, सदा, सदा सद् हो जाएँगे। तू अपनी मान्यता और जान्यता की असीम शक्ति को पहचान और असद् देह के सद् को मान और जान, तेरा सदासद् स्वरूप जाग्रत हो जाएगा।

'बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(2 अप्रैल से 30 अप्रैल एवं 15 मई, 2009)

अक्षुण्ण क्षण

सद् के सान्निध्य, सद्गुरु द्वारा निर्देशित किसी भी प्रकरण, पूजा-पाठ, कृत्य-अकृत्य, जप-तप, भजन-कीर्तन, यज्ञ-हवन, तीर्थ-यात्रा, सत्संग और पुरुषार्थ विधाओं में बिताए गए क्षण अक्षुण्ण एवं विलक्षण होते हैं। मात्र वही क्षण शाश्वत् होते हैं और समय रूपी रेत पर अपने पद् चिन्ह छोड़ जाते हैं। समस्त इतिहास उन अक्षुण्ण क्षणों का ही वर्णन है। अन्यथा व्यतीत किए गए क्षण, क्षणिक एवं क्षण भंगुर होते हैं, जो हम मानवों को शनैः शनैः, क्षण-क्षण क्षीण करते रहते हैं तथा पंगु, खोखला, आसक्त, अशक्त, पराधीन, अपंग, जर्जर एवं दयनीय बना देते हैं। हमारी ईश्वर प्रदत्त पाँचों विभूतियाँ जिनका मूल विरक्ति है, पाँच विकृतियों (जिनका मूल आसक्ति है) में रूपान्तरित हो जाती है। सद्गुरु-कृपा से हर क्षण हमें आत्मावलोकन एवं आत्म-विश्लेषण करते हुए अपना स्वयं का मूल्यांकन व आकलन करना है, कि मैं सद् के सान्निध्य में हूँ अथवा अन्यथा पशुवत् जीवन ढो रहा हूँ। क्योंकि अन्यथा क्षणों में जो कुछ होगा, वह उत्साहीन, विषादपूर्ण एवं तनाव से परिपूरित होगा, वे क्षण भंगुर व क्षणिक क्षण निश्चित रूप से विक्षेप का कारण होंगे। जबकि अक्षुण्ण क्षण निश्चित रूप से विलक्षण होंगे। सद् बुद्धि वही है, जो क्षणिकता का क्षण-क्षण त्याग करते हुए अक्षुण्णता का अधिग्रहण करती रहे। मुझे अपने अगले क्षण की कोई सुनिश्चितता नहीं है; न जाने किस क्षण समस्त क्षण मुझसे छीन लिए जाएँ। मानव-जीवन का एक-एक क्षण आलौकिक, आलोकित, विलक्षण, असमान्तर, अद्वितीय एवं अनुपम है।

मानव-देह के अर्थ के विषय में मेरी विचारधारा और ईश्वर के विषय में मेरे दृष्टिकोण का निर्धारण मेरी **'मैं'** का स्तर एवं गुणात्मक करती है। अक्षुण्ण क्षणों के रसास्वादन का आधार मेरी **'मैं'** का स्तर निर्भर होगा। **'मैं'** भ्रमवश, अज्ञानवश क्षणिक क्षणों में एक द्वारा अनेक में भटक गया हूँ। जबकि **'मैं'** (जीवात्मा) एक से अनेक होते हुए भी अनेकों में एक हूँ। **'मैं'** शब्द जीवात्मा का प्रकाट्य रूप में प्रतिनिधि होते हुए भी उसके स्वरूप का द्योतक नहीं है। क्योकि स्वयं में जीवात्मा अदृश्य दृष्टा रूप में ईश्वर का इकलौता मानस-पुत्र है। ईश्वर की ही भाँति सच्चिदानंद, उसकी छः विभूतियों से विभूषित एवं परम स्थिर है, लेकिन जैसे ही **'मैं'** अपनी नाम-रूप की तद्‌रूपता में उतरता हूँ, उसी समय यद्यपि मेरी देह सहित जगत मेरे साथ ही प्रकट होता है, लेकिन **'मैं'** लगते ही मुझे देह व जगत के साथ-साथ ईश्वर की भी अवचेतना (Consciousness of Divinity) हो जाती है। **'मैं'**(जीवात्मा) मानव-देह और ईश्वर तीनों महाचेतन हैं, उनका अधःपतन अवचेतना में हो जाता है। निद्रा की जड़ता में देह व जगत, जीवात्मा और ईश्वर तीनों की अवचेतना (Consciousness) भी नहीं होती। समाधि में मात्र ईश्वर की चेतना (Awareness) ही होती है। समाधि में जीवात्मा का स्वरूप जाग्रत हो जाता है और **'मैं'** शब्द लुप्त हो जाता है। इसलिए समाधि में मुझे ईश्वर की चेतना (Awareness) मात्र होती है।

समाधि में मुझे उस अदृश्य (ईश्वर) का दर्शन होता है, जिसके प्रदर्शन में अज्ञानवश **'मैं'** ईश्वर की विमुखता सी में खो जाता हूँ। मेरी देह सहित समस्त दृश्यमान जगत ईश्वर के दर्शन का प्रदर्शन है। जहाँ सद्‌गुरु-कृपा से एकाग्रता व एकान्त द्वारा प्रदर्शन बिल्कुल समाप्त हो जाता है, वहाँ ईश्वर का दर्शन होता है। दर्शन और प्रदर्शन एक मंच पर कभी खड़े नहीं हो सकते। दर्शन जो दृश्यमान नहीं होता और प्रदर्शन मात्र दृश्यमान ही होता है। इस प्रदर्शन का दृष्टा **'मैं'** जीवात्मा हूँ, क्योंकि मेरी वजय से और मेरे लिए यह प्रदर्शन है। सम्पूर्ण प्रदर्शन का सम्पूर्ण प्रतिनिधि मेरी मानव-देह है।

प्रतिनिधि के लिए आवश्यक नहीं, कि आपके प्रत्येक कृत्य, कला व विधा का प्रतिनिधि हो। भौतिक जगत में विभिन्न पदों और विधाओं के लिए भिन्न-भिन्न प्रतिनिधि होते हैं अथवा नियुक्त किए जाते हैं। प्रत्येक प्रतिनिधि अपने-अपने विभाग में पूर्ण होता है, लेकिन आपका पूर्ण प्रतिनिधित्व कोई एक नहीं कर सकता। लेकिन ईश्वर ने कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों में जिस जगत का सम्पूर्णतः निर्माण, पालन और संहार किया है, एक मानव-देह उसका सम्पूर्णतः प्रतिनिधित्व करती है। दृश्यमान कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के रसास्वादन के लिए इस देह का क्रियान्वयन (Activation) जीवात्मा के प्रकाट्य **'मैं'** शब्द के लगने से होता है। **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए सम्पूर्ण दृश्यमान प्रदर्शनी के प्रतिनिधित्व करती जीवित मानव-देह का तनिक अवलम्बन लेना अत्यवाश्यक है। यही जीवात्मा और मानव-देह के बीच समन्वयपूर्ण सम्बन्ध (Co-relation) है। साथ ही देह का प्राणयुक्त होना भी आवश्यक है।

शव (प्राणहीन देह) के साथ **'मैं'** नहीं लग सकती। मानव-देह श्वास युक्त हो, हृदय की धड़कन और भीतरी कार्य प्रणालियाँ चल रही हों, तभी उससे **'मैं'** शब्द का प्रकाट्य होगा अन्यथा नहीं होगा। जीवात्मा स्वयं में देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, लिंगातीत, त्रिगुणातीत, मायातीत और अपने पिता ब्रह्मात्मा की तरह अदृश्य एवं ब्राह्मण्डातीत है। उसे दी गई मानव-देह उस अदृश्य की कलाओं के दर्शन का प्रतिनिधित्व करती है जिसकी प्रर्दशनी कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का दृश्यमान जगत है। दृश्यमान जगत प्रदर्शन है इसलिए प्रदर्शन में पल-पल परिवर्तन आवश्यक है। अन्यथा प्रदर्शन उपयोगिता रहित एवं आधारहीन होगा। परिवर्तन शब्द का स्रोत प्रदर्शन है। दर्शन =दर्श 'न' जो दिखाई न दे; उस ब्रह्मात्मा की एक सूक्ष्म सी कला है। वह सूक्ष्म कला इतनी अद्वितीय है, कि प्रदर्शन द्वारा प्रभु का सम्पूर्ण दर्शन कराने में समर्थ है। बशर्ते उसका दृष्टा जीवात्मा हो।

प्रभु अदृश्य होते हुए भी स्वयं में सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति

एवं विरक्ति हैं। यह दृश्यमान जगत उनका प्रदर्शन है। इस प्रदर्शन में हम उनके सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य एवं ख्याति का दर्शन कर सकते हैं। भूकम्प, सुनामी, चक्रवात, उल्कापिण्डों का गिरना, ज्वालामुखी का फटना आदि उनकी शक्ति का प्रदर्शन है, प्रकृति के नित नूतन स्वरूपों में उनका सौन्दर्य प्रदर्शित होता है। कोई प्राकृतिक स्थान इतना सौन्दर्ययुक्त एवं प्रसिद्ध है, कि उसे देखने दूर-दूर से लोग आते हैं, तो उसका रचयिता ख्यातिवान होगा ही। वह इतना ऐश्वर्यवान है, कि सम्पूर्ण पृथ्वी, समुद्रों आदि को उसने हीरे, मोतियों, रत्नों, स्वर्ण, चाँदी आदि धातुओं से भर दिया है, कि जितना चाहे निकालते जाओ वह अथाह ऐश्वर्य स्वयं में असीम है। ईश्वर स्वयं में विरक्त है, उसकी विरक्ति का अनुमान हम दृश्यमान में प्रदर्शन से नहीं लगा सकते। दृश्यमान जगत उसकी कला के दर्शन का दर्शन है, जिसकी पंच विभूतियों का अनुमान हमने प्रदर्शन से किया। परन्तु उसकी छटी विभूति विरक्ति का ज्ञान कैसे हुआ ? यह कैसे ज्ञान हुआ, कि ईश्वर ठोस-घन-शिला परम स्थिर है। कहीं आता-जाता नहीं। उसकी दशानन स्थिरता पंच-महाभूतों में दृश्यमान जगत की दशानन गतियों में अदृश्य रहती है।

ईश्वर एक महाकलाकार है। उसकी कला अथवा कलाएँ अनंत हैं। बिना प्रदर्शन के कलाएँ अदृश्य ही रहती हैं। प्रदर्शन द्वारा स्वयं में अदृश्य कलाओं का दर्शन होता है। एक ही कला बहुमुखी आयामों से युक्त हो सकती है, इसका ज्ञान प्रदर्शन से होगा। कला, कला की गहनता, कला के विस्तार एवं विभिन्न कलाओं के विभिन्न आयामों सहित समस्त विधाओं का दर्शन भी कोई-कोई विरला कला पारखी ही कर सकता है। सम्पूर्ण ईश्वर दर्शन का प्रतिनिधि वह एक जीवात्मा है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्ड ईश्वर की एक कला का प्रदर्शन है। वही ब्रह्मा, विष्णु, महेश है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के दृश्यमान प्रदर्शन में जीवन-काल में **'संहार'** विधा के साथ हम **'मैं'** नहीं लगा सकते। निर्माण और पालन के बाद अपना संहार किसी ने नहीं देखा। अपना शव और अपनी भस्मी जीवन-काल में हम सबके लिए अदृश्य रहती है।

'मैं' (जीवात्मा) ने अपना शव नहीं देखा, इसलिए शव मेरे लिए दर्शन हुआ। शव मेरी देह का प्रदर्शन नहीं दर्शन है और शव मेरी देह से परे है। मेरी देह का शव बनेगा, लेकिन मैंने कभी न देखा है न देख सकता हूँ। यदि मैं उस स्थिति को जिसे मैं जीवन-काल में देख नहीं सकता, सद्‌गुरु की विशेष कृपा से देख लूँ, तो मुझमें शवत्व जाग्रत हो जाएगा। तब **'मैं' भस्मी दर्शन** का योग्य अधिकारी बनूँगा। **'भस्मी-दर्शन'** शिव की स्थिरता और विरक्ति का दर्शन है। **'शवत्व'** शिव की सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य और ख्याति विभूतियों का दर्शन है। इन पाँचों विभूतियों का मूल स्रोत **'विरक्ति'** है। क्योंकि पाँचों विभूतियाँ पल-पल परिवर्तित होती हैं। शव दर्शन अथवा शवत्व की मानसिक स्थिति से देह-दर्शन अथवा मानव-देह के देहत्व का दर्शन सम्भव है। शवत्व दर्शन से विभूतियाँ जाग्रत होंगी, लेकिन उनका मूल विभूत्यातीत विभूति **'विरक्ति'** है। उसका दर्शन **'भस्मी दर्शन'** से होगा।

शवत्व देह का अर्थ है, भस्मी विरक्ति की द्योतक है। विरक्ति धर्म है। सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति का कारण और मूल विरक्ति है। 'शव दर्शन' देह के 'अर्थ' का दर्शन कराएगा जब उसके साथ **'मैं'** लगेगी। शव भी तो देह की एक स्थिति है। मेरी कोई भी दैहिक, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक स्थिति **'मैं'** लगे बिना अर्थहीन है। निद्रा स्वयं में सार्थक है और निद्रा भी देह की एक स्थिति है। उसमें **'मैं'** नहीं लगती, वह अर्थहीन के साथ जड़ स्थिति है। उसमें **'मैं'** का स्वरूप और ईश्वर की अवचेतना दोनों का नितान्त अभाव है। लेकिन निद्रा से उठकर मैं देह रूप में अवचेतन हो जाता हूँ। इसलिए अर्थहीन नहीं निरर्थ, व्यर्थ और अनर्थ में असीम अधोगति में भटकता रहता हूँ। निद्रा Reversible है, स्थाई नहीं है। **'भस्मी दर्शन'** विरक्ति दर्शन है, यदि **'मैं'** साथ लग जाए और **शव दर्शन** विभूति दर्शन है, यदि **'मैं'** साथ लग जाए।

जिसे हम जीवित देह कहते हैं जब **'मैं'** साथ लग जाती है, तो शव दर्शन और भस्मी दर्शन दोनों लुप्त हो गए। विभूतियाँ और विरक्तियाँ दोनों विकृतियों और आसक्तियों में रूपान्तरित हो गए। भस्मी के लिए देह चाहिए

और भस्मी बनने के बाद देह होगी ही नहीं क्योंकि भस्मी देहातीत है। **'शव'** देह का अर्थ है क्योंकि वह शव है उसके साथ **'मैं'** नही लगती। यदि **'मैं'** लग जाए, तो वह शवत्व है। अतः वह शव दर्शन है। भस्मी के साथ **'मैं'** नहीं लग सकती, यदि लग जाए, तो वह शिव दर्शन है। वह शिव की कलाओं का दर्शन शिव दर्शन है। **'मैं'** जो प्रदर्शन में लगी वह स्वरूप रहित अवचेतन **'मैं'** थी। **'मैं'** देहमयी हो गई। **'मैं'** शब्द के प्रकाट्य के लिए जीवित देह चाहिए थी।

दृश्यमान जगत की प्रतिनिधि प्राणयुक्त दृश्यमान मानव-देह है। जब उसके साथ **'मैं'** लगी तो **'मैं'** का लगना ही जीवात्मा का हस्तक्षेप है। यदि पूर्णतः जीवात्मा का नियन्त्रण हो, तो देह 'मैं मयी' हो जाएगी। **'मैं मयी'** देह पूर्ण देह होगी और शिवत्व और शवत्व को स्वयं में समेटे होगी। वह विरक्त एवं पुरुषार्थमयी देह होगी। अर्थात् 'अर्थ 'धर्म' के सोपानों पर ऊर्ध्वगति करेगी। वह मात्र ईश्वर का दर्शन नहीं स्वयं ईश्वर की कामना लिए होगी। वहाँ से ईश्वर की कामना जाग्रत हो जाएगी। जब भक्त केवल प्रभु के दिग्दर्शन के लिए लालायित हो जाता है, तो जो अक्षुण्ण क्षण इसे अक्षय बना रहे थे वे ही इसे क्षण-क्षण क्षीण करने लगते हैं। प्रभु की याद में भक्त स्वयं को समाप्त करने के लिए आतुर दीवाना हो जाता है।

''हे प्रभु ! तुम अदृश्य हो, तुम्हें मैं पा नहीं सकता। तुम्हारे दिग्दर्शन का अधिकार मुझे नहीं है, लेकिन मैं तुम्हें पाना चाहता हूँ। मेरी यह अक्षुण चाहत मुझे क्षण-क्षण क्षय व क्षीण कर रही है। तुम हो और अदृश्य हो तो मैं तुम्हें देखना चाहता हूँ।'' यह आर्तनाद कभी ना कभी फलीभूत अवश्य होती है। उस अदृश्य को उस भक्त के भावानुसार दृश्यमान होना पड़ता है। जैसे भक्त उसे देखना चाहता वह वेसा-वैसा होकर दृश्यमान होता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(2010)

विश्व एवं विष

संसार को **विश्व** भी कहते हैं। **'विश्व'** शब्द से **विष** और **शव** की ध्वनि निकलती है। सद्गुरु-कृपा से जिनकी एक-एक श्वास, अपने शव की आस अर्थात् जीते जी अपनी शवावस्था की मानसिकता में प्रविष्टि के लिए होती है, उनके लिए **संसार** या **विश्व**; **'विष'** के समान होता है। वे विश्व में मात्र उन्हीं से उतना सा ही सम्बन्ध रखते हैं, जो उन्हें **जीते जी 'शव वत्'** रहने में सहायक हो। शव 'वतता' (शवत्व) ही हम मानवों की शाश्वतता है और मानव-देह का **'देहत्व'** है। हम संसार से बँधे **से** हैं, जबकि निश्चित रूप से छूटे हुए ही हैं। **हमारे लिए इस नश्वर संसार की सदुपयोगिता शाश्वतता के लिए है अन्यथा संसार में सब कुछ निस्सार है।** देह सहित संसार जो, जब, जहाँ, जैसा भी था, है और होगा वह अवचेतना में है, इसलिए नश्वर है। **'मैं'** (जीवात्मा) ने स्वयं में पूर्ण चेतन होते हुए भी देह भाव की अवचेतना में देह की धारणा की है। वह देह जो एक दिन मेरे लिए थी नहीं और अन्ततः रहेगी नहीं, तो मध्य में यह **'विश्व'** जिसमें मेरी देह उसका एक अंश मात्र है, क्यों है ? **'मैं'** नंगा भूखा पैदा होता हूँ और ऐसे ही चिता पर लिटा दिया जाता हूँ, देह रूप में मेरे इस होने का अर्थ क्या है ? विश्व का सदुपयोग इसकी नश्वरता से अपनी शाश्वतता के अनुसंधान एवं खोज में है।

सदुपयोग, उपयोग और दुरुपयोग मेरी मानसिकता पर निर्भर है। सद्+उपयोग=सदुपयोग है अर्थात् सद् की अनुभूति एवं सद् की सम्मुखता के लिए किया जाने वाला उपयोग ही सदुपयोग है, अन्यथा उपयोग में ईश्वर से हमारा टूटकर वियोग **सा** हो जाता है। सद् से दूर हटने के लिए किया

जाने वाला उपयोग, दुरुपयोग है। अतः इस नश्वर देह सहित विश्व का शाश्वत् सदुपयोग यही है, कि जब भी **'मैं'** इसका प्रयोग करू तो **मैं स्वयं में देहातीत हो जाऊँ।** वस्तुतः **'मैं'** देहातीत हूँ ही। मैं स्वयं में अपरिवर्तनीय एवं शाश्वत् हूँ और देह पल-पल परिवर्तनशील व नश्वर है। अतः मैं देह के लिए ही, देह द्वारा, देह से देहातीत होकर इसका उपयोग करूँ, ताकि यह देह भी नश्वर न रहे, मेरी तरह शाश्वत् हो जाए।

मेरी (जीवात्मा की) वास्तविक यथार्थ (यथा+अर्थ) देह शाश्वत् ही है। उस देह में प्रविष्टि हेतु देह के रहते, इस देह द्वारा, देह के लिए मेरा इससे परे हटना परमावश्यक है। फिर जब मैं चेतनता की खुमारी लिए हुए देह सहित विश्व के रसास्वादन हेतु देह में प्रवेश करूँ, तो यह देह एवं विश्व गदगद् हो जाए और मेरा स्वागत करे। देह तो मेरी (जीवात्मा की) सेविका है। इसका स्वामी भी वही है, जो मेरा स्वामी है। इसके लिए हवा, पानी, भोजन आदि सबकी व्यवस्था वही करता है। मेरे इष्ट द्वारा ही इसका एक-एक रोम गढ़ा गया है। यह देह मेरे लिए है, तो मैं इसके लिए कम से कम इतना तो करूँ, कि मैं इसके द्वारा इससे परे (देहातीत) होकर इसका सदुपयोग करूँ। शव की मानसिकता में प्रविष्टि ही मेरा एक मात्र लक्ष्य हो, तो शव की आशा लिए हुए नश्वर देह की हर श्वास मुझे शाश्वत् बना देगी। **'शवत्व'** को छूकर देह भी नश्वर नहीं रहेगी। मैं (जीवात्मा) **'शव'** की तरह ही देशातीत, कालातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कर्तव्यातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत हूँ और माया **में** होते हुए भी **मायामय** नहीं हूँ; इसलिए माया के तीनों (सतो, रजो व तमो) गुणों से अतीत हूँ।

मानव-जीवन प्रथम श्वास द्वारा शैशव (सह शव) से शुरू होता है और शव में अन्त होता है। साकार देह जो दृश्यमान है, **'शैशव'** उसकी प्रथम सुनिश्चित अवस्था है। शेष सभी अवस्थाएँ यदि हैं, तो वे शैशव (सह शव) का रूपान्तरण हैं, क्योंकि श्वास (शव+आस) चल रहा है। देह के शव बनने तक शव की आस निरन्तर बनी रहती है। सह+शव और शव+आस के दोनों शव को मिला दें=सह श्वास, जो **सह श्वास** (श्वास सहित) **है, उसका**

सह शव (शैशव) **होना अनिवार्य है। श्वास** (शव+आस) **रहित** मानव-देह **'शव'** ही है, चाहे साँस ले रही जीवित क्यों न हो। जन्म और मृत्यु की कालावधि में बँधी श्वासों की श्रंखला युक्त मध्य की दृश्यमान देह का अन्त शव है, इसे देहान्त भी कहते हैं। यह सद् मुझमें **'शव'** की मानसिकता की स्मृति जाग्रत कराता है। शवोऽहम्, शवोऽहम् रूप में हर श्वास धन्य है, क्योंकि शवोऽहम्, सोऽहम् होते हुए शिवोऽहम् बन जाता है। इसके अतिरिक्त ली गई श्वास **'निःश्वास'** (साँस) है। हमने होश सम्भालते ही अपने उस शव को भुला दिया, जो कभी भी बन सकता है अतः हर श्वास में शव के अतिरिक्त कोई न कोई **'आस'** रह गई; जो आसक्ति बन गई, कि श्वास है, तो आस है। यदि **'शवत्व'** साथ रहता अर्थात् हर श्वास शव की आस लिए होती, तो आसक्ति क्यों होती, तब स्वतः ही विरक्ति होती। **'शव'** से रहित मेरा ईश्वर भी नश्वर (न शव) सा अनीश्वर बन जाता है। सद्‌गुरु कहता है, कि ''तू जीव नहीं विशुद्ध जीवात्मा है। हर श्वास मानो तुझसे कहता है, कि तेरा आरम्भ शैशव यानि शव के साथ हुआ और अन्त शव में हो जाएगा। इसलिए मैं उस शव की आस लिए आया हूँ। जो क्षण बिना श्वास के होगा, वहीं तेरा शव प्रकट हो जाएगा। इसीलिए तू उस शव वतता (शाश्वत्‌ता) को जीते जी आत्मसात् कर। शवत्व तुझे शिवत्व या भस्मी योग में प्रविष्टि दिलाएगा और कभी न कभी किसी जन्म में तेरी अपनी विभूत्यातीत विभूति **वैराग'** जाग्रत हो जाएगी। यह वैराग तेरी अपनी ही पाँचों (सौन्दर्य, ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य, ख्याति) विभूतियों का मूल स्रोत है।''

मानव-देह के भौतिक मूल्यों का देह के रहते अवमूल्यन हो जाए, तभी देह के यथार्थ की सिद्धि होगी। **मानव-देह का 'अर्थत्व' अथवा 'देहत्व' देह में नहीं देहातीत है।** यह अर्थत्व पंच-महाभूतों की देह सहित जगत के प्रपंच से परे तत्त्वातीत तत्त्व **'भस्मी'** है, जो शिव की विभूत्यातीत विभूति का दृश्यमान स्वरूप है। देह रूप में मेरा आर्थिक स्तर, पद-प्रतिष्ठा, धन-सम्पदा, समाज में रुतबा, शिक्षा-दीक्षा, पत्नी, बच्चे, सौन्दर्य, हर तरह की शक्ति आदि-आदि देह से पहले नहीं था और देह कभी भी छीन ली जा सकती है।

इसके जाते ही वह **'सब कुछ' 'कुछ नहीं'** रहेगा, तो मध्य में भी यह 'सब कुछ' क्यों है ? यह विवेकशील मानव ही सोचेगा। मानव-देह स्वयं में ईश्वर-प्रदत्त एक कैरियर है। प्रभु द्वारा रचित अति विलक्षण, रहस्यमयी एवं चमत्कारिक सुकृति है, जो प्रभु की अकारण कृपावश हमें मिली है और कभी भी छीन ली जाएगी। मानव-देह का मिलना, मानव-देह में जिज्ञासा का होना और किसी सद्गुरु का मिलना—ये तीन वस्तुएँ अति दुर्लभ मानी गई हैं। जब समस्त सोच-विचार, कार्य, योजनाएँ, स्तर, विचार धाराएँ मुझे जीव+न अर्थात् मैं जीव नहीं जीवात्मा हूँ, इसके exploration, विस्तार, खोज व प्रकाट्य में ले जाएँ, उसका नाम जीवन है। मानव-देह प्राप्त होने के बाद जन्मों-जन्मान्तरों से मैं (जीवात्मा) सन्देह (मैं देह हूँ) में जीव-सृष्टि की अवचेतना में भटका हुआ हूँ। अपनी पहचान खो चुका हूँ। यद्यपि मेरे पास पहचान पत्र है, लेकिन पहचान नहीं है।

यदि कोई व्यक्ति मानसिक विकृति के कारण अपनी पहचान या परिचय खो दे, तो अपने माता-पिता, परिवार, धर्म, देश, काल, कर्म, कर्तव्य, पद, प्रतिष्ठा, शिक्षा, दीक्षा आदि के बारे में कैसे जान पाएगा। कोई उसे याद भी दिलाएगा, तो वह न जाने क्या प्रतिक्रिया करे। Dementia और Schizo Phrenia पागलपन में विशिष्ट मानसिक रोग हैं, जिनमें व्यक्ति अपना नाम व अपनी पहचान बिल्कुल भूल जाता है और अपने माँ, बाप या परिवार के लोगों को पत्थर तक मारने लगता है। यही जीवात्मा के साथ हुआ। प्राणयुक्त मानव-देह के सान्निध्य में **'मैं'** शब्द प्रकट होते ही इसकी देह सहित जगत इसके लिए सक्रिय हो गया। **'मैं'** शब्द हटते ही (सुषुप्तावस्था, विस्मृतावस्था, मूर्च्छावस्था, मृतकावस्था, भस्मावस्था) इसके लिए न वह देह रही, न जगत साथ ही देह के साथ तद्रूपता के सन्देहवश इसने स्वयं को भी सुषुप्त, विस्मृत, मूर्च्छित, मृतक और भस्मित मान लिया। अतः **'मैं'** शब्द प्रकट होते ही भ्रमवश इसने न केवल देह की गलत पहचान की बल्कि अपना वास्तविक स्वरूप भी खो दिया। यह चेतन जीवात्मा से अवचेतन जीव बनकर जीव सृष्टि के कल्पित काल-चक्र में जन्म-दर-जन्म भटकने लगा।

मुझे मानव होने के नाते यह ज्ञान होना आवश्यक है, कि मैं देह व जीवन में किन विधाओं को भाव दे रहा हूँ। वास्तव में मानव-देह स्वयं में क्या है और क्यों है, कोई नहीं जानता। होश सम्भालते ही जीवन में साकार जगत की विभिन्न विधाओं उच्च शिक्षा, अधिक से अधिक डिग्रियाँ, ऊँची से ऊँची पोस्ट, सम्पदा, पद, प्रतिष्ठा, जन बल, धन बल, छलबल और विभिन्न प्रकार की शक्तियों को और-और बढ़ाने में हम अपनी उन्नति एवं सार्थकता मानते हैं। विभिन्न वस्तुएँ एवं पदार्थ देह से, देह द्वारा, देह में, देह के लिए पाना चाहते हैं और अपनी देह, मन और बुद्धि को आजीवन थकाते रहते हैं। होश सम्भालने से होश जाने (मृत्यु अथवा अन्यथा) तक हमारी सारी होश इन्हीं के लिए बरबाद होती रहती है। क्योंकि हम वस्तुतः देह की वास्तविक वस्तु को जानना और मानना ही नहीं चाहते। देह से, देह तक और देह में ही रहते हुए एक दिन देह चली जाती है। मृत्योपरान्त मेरे लिए कुछ नहीं रहता केवल देह की डेढ़ दो किलो राख शेष रह जाती है। देह से सम्बन्धित मूल्यवान और आडम्बरपूर्ण बाह्य वस्तुओं एवं साकार विधाओं की प्राप्ति के लिए भागते-भागते प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से हमने अपनी अनमोल मानव-देह का अवमूल्यन कर दिया।

समस्त प्राणी जगत, जलचर, नभचर, थलचरों में **'मैं'** सर्वोत्कृष्ट देहधारी हूँ और युगों-युगान्तरों में विस्तृत कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का यह समस्त जगत देह रूप में एक मेरे होने की वजह से है। जब मैं निद्रा से उठता हूँ, तो मेरे साथ सामान्य एवं एक विशिष्ट जगत भी उठता है। यह जगत नित्य भिन्न होता है। मैं देह रूप में नित्य भिन्न होता हूँ। इसे शास्त्र ने नित नूतन की संज्ञा दी है। माया की चौरासी लाख योनियों में से जिस योनी में जिस समय मेरी देह होती है, उसी स्थिति में मेरा उस समय का जगत भी होता है। जब तक यह रहस्य मेरे पल्ले नहीं पड़ता, तब तक मैं देह रूप में स्वयं को जगत से भिन्न मानता रहता हूँ। यही मेरी अधोगति एवं समस्त विडम्बनाओं का कारण है। उदाहरणतः श्रोता, वक्ता को सुनने आते हैं, तो वक्ता और श्रोता परस्पर पृथक् कैसे हो गए ? मैं वक्ता बनूँगा, तो

श्रोता मेरे सम्मुख आ जाएँगे। मैं परोपकारी बनूँगा, तो वे लोग मेरे सामने आ जाएँगे, जिन्हें मेरे से कुछ उपकार की अपेक्षा है। स्वयं एक देह रूप में कुछ भी बनने का अर्थ मूर्ख बनना ही होता है। क्योंकि कोई भी मानव-देह व्यष्टि नहीं है। हरेक व्यष्टि स्वयं में समष्टि है। मेरी Totality ही मेरी Individuality है। कुछ भी बनने से पहले मैं मानव तो बनूँ।

निद्रा से उठते ही जागने के लिए तू अपनी भस्मी का ध्यान करते हुए अपनी निद्रा की मानसिक स्थिति देख लेना। फिर पंच-महाभूतों के इस स्वप्नवत् संसार का आनन्द लेना। जिस देह से मैं तुझे नवाज़ रहा हूँ, उसमें प्रारम्भ में **शैशव** और अन्त में **'शव'** की गारण्टी है। तू शैशव से शव में होते हुए उसके शवान्त भस्मी को हमेशा सम्मुख रखना, ताकि तू जागरूक रहे, कि यह सारा खेल वास्तव में **कुछ नहीं** है। यह जादू बड़ा प्रबल है। इस जादू की पिटारी तेरी पंच-महाभूतों की मानव-देह है। ये पंच-महाभूत वास्तव में हैं नहीं। शास्त्र में भी संसार को **'वंध्या सुत'** की संज्ञा दी गई है। जिस बाँझ की कोख से बच्चा पैदा नहीं हो सकता, यह जगत उसकी औलाद है। रात्रि की निद्रा में स्वप्न में भी तो एक जगत होता है, पृथ्वी, जल, अग्नि व आकाश होते हैं। मानो स्वप्न में वर्षा में आप भीग रहे हैं, तो जागने पर उस वर्षा से आपका बिस्तर भीगा हुआ नहीं होता। अतः स्वप्न के वे पंच-महाभूत उस स्वप्न-सृष्टि से नींद खुलने पर तिरोहित हो जाते हैं। इसी प्रकार यह जगत है। इसे स्वप्न की नाईं देखने के लिए मोह एवं अज्ञान की निद्रा से जागना होगा। इस अज्ञान निद्रा में सोए हुए हम तो (सुषुप्ति में देखे गए) अपने स्वप्न का अर्थ तक जानना चाहते हैं; यद्यपि जागकर अच्छी तरह से ज्ञान है, कि मैं सोया हुआ था और वह सृष्टि मेरी सुषुप्ति में आभासित एवं मायिक थी।

मानव-देह सहित पंच-महाभूतों का यह जगत **'है सा'** है। अपना जन्मदिवस मनाते समय मैं यदि अपने जन्म से पहले के विषय में चिन्तन कर लूँ, कि मैं जन्म से पहले माँ के गर्भ में था, तो उससे पहले मैं कहाँ था ? यह सोचने से मैं अपने निराकार एवं अकाल स्वरूप **'प्रारम्भारम्भ'** की ओर जाऊँगा और मृत्यु का ध्यान करने से अपने अन्तान्त की ओर जाऊँगा। **'मैं'**

(जीवात्मा) ने स्वयं को साकार देह के 'जन्म-मृत्यु' के दो छोरों में बँधी देह तक ही सीमित कर लिया। इसीलिए अपने निराकार एवं अकाल स्वरूप को भूल गया। साकार देह के ही जन्म से पहले और मृत्यु के बाद के दोनों छोर स्वयं में निराकार एवं अकाल हैं। जन्म से पहले प्रारम्भारम्भ अदृश्य है, क्योंकि भ्रूण रूप उस बिन्दु (Zygote) को नग्न नेत्रों से देखा नहीं जा सकता। उस प्रारम्भारम्भ से देह के जन्म की सुनिश्चतता नहीं होती, लेकिन मृत्यु के बाद मृतक देह जब पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है, तो अवशेष भस्मी दृश्यमान होती है। वह भस्मी किसी भी देह के प्रारम्भरम्भ, जन्म, जीवन और मृतकावस्था चारों बिन्दुओं की सुनिश्चितता लिए होती है। यदि सदृगुरु-कृपा से भस्मी में ध्यान लग जाए, तो अकाल काल में स्थित्यातीत मानसिक स्थिति में प्रविष्टि हो जाती है।

भस्मी (देह का अन्तान्त) में जीवात्मा का विशुद्ध स्वरूप अन्तर्हित है। इसको अपने साथ रखते हुए मानव-देह के साथ तनिक भ्रमित होकर जीवात्मा अपने पिता (परमात्मा) द्वारा रचाई माया का आनन्द लेता है और फिर अपने स्वरूप में आ जाता है। वह देह जो जन्म से पूर्व प्रारम्भारम्भ में थी नहीं और मृत्योपरान्त भस्मी बनने पर रहेगी नहीं। मध्य में 'है सी है'। मानो जादूगर ने जादू द्वारा खाली डिब्बे में से कभी कबूतर, कभी फूल, कभी कुछ, कभी कुछ निकाल दिया हो और फिर खाली डिब्बा दिखा दिया हो। देह को **'विष'** शव बना देता है और जीते जी शवत्व की अवधारणा में विश्व **'विष'** बन जाता है। यह विश्व किसी को अधिक देर तक **'शव'** नहीं बने रहने देता। कोई शव **'भस्मी'** रूप में अपने अन्तान्त में रूपान्तरित हो जाए, इसका प्रबन्ध भी शीघ्रातिशीघ्र यह विश्व ही करता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(14 जून, 22 से 25 अगस्त 2008)

समर्पण

समर्पण शब्द **'सम'** और **'अर्पण'** दोनों का युग्म है। समर्पण वास्तव में **'सम'** का ही होगा अन्यथा समर्पण शब्द का दुरुपयोग होगा। युग धर्म और विभिन्न मानवों की भिन्न-भिन्न मानसिकताओं के अनुसार शब्दों और अर्थों का उपयोग, दुरुपयोग अथवा सदुपयोग होता है। **'सम'** समस्त का होता है और जो समस्त का होता है, वह ही **'सम'** होता है। उसका समर्पण ही वस्तुतः वास्तविक समर्पण है। समस्त का अधिग्रहण **'सम'** द्वारा सम्भव है। **'भसम'** का **'सम'** और **'भस्मी'** की **'स्मी', 'सम'** की द्योतक है। जो मानव उस **'सम'** (भस्मी) का जीते जी अधिग्रहण करते हुए, उस **'सम'** तत्त्व समत्व को स्वयं में समाहित कर ले, वही विरक्त अध्यात्म पथ पर अग्रसर होने योग्य है। व्यष्टि-समष्टि में अन्तर मात्र **'सम'** का है। लेकिन व्यष्टि का अस्तित्व समष्टि के बिना नहीं है और समष्टि है, तो व्यष्टि होगी ही। जोड़ने वाला, तोड़ने वाला सम ही है। समर्पण, अर्पण, तर्पण, अर्चन, मस्ती, उत्साह, सुरभि, सुवास, हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्व सम्पन्नता, वेग, उद्वेग, आवेग, अर्थ, समर्थ, असमर्थ आदि-आदि में दिव्यता का वास है। ये समस्त विधाएँ मात्र मानवों की, मात्र मानवों के लिए ईश्वर प्रदत्त और ईश्वर समर्पित मानव-देह व जीवन में हैं।

समर्पण दो प्रकार का है—देहार्थ (देह के लिए) समर्पण और देह के अर्थ के लिए समर्पण। सम अर्थ की प्राप्ति के लिए किया गया समर्पण ही वास्तविक समर्पण है। देहार्थ (देह व देहों के लिए) अर्थ, समय, स्थान व स्थिति के अनुसार बदलते रहे, बदल रहे हैं और बदलते रहेंगे। देह के समय,

प्राप्तियों, प्रतिभाओं, विशेषताओं, गुणों, अवगुणों, ज्ञान-विज्ञान, देह के सब कुछ और एक प्राप्ति के लिए दूसरी प्राप्ति के समर्पण आदि के नेपेथ्य में छिपी नीयत दैवीय दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। नौकरी या व्यापार करना भी एक प्रकार का समर्पण है। किसी संस्था अथवा किसी निर्देशक के अधीन काम करने के लिए देह का समय, पढ़ाई, लिखाई, डिग्रियों, सौन्दर्य, कलाओं, प्रतिभाओं आदि की कीमत लगाई जाती है। तद्नुसार देहार्थ (देह के लिए) अर्थ (धन) उपलब्ध किया जाता है। यह अर्थ समय-समय पर विभिन्न स्थितियों में बदलता रहता है। यदि हमने देह व देह पर आधारित सब कुछ का समर्पण मात्र देहार्थ (देह के लिए) किया है, तो लब्ध को ही उपलब्ध करते रहेंगे। साथ ही उनके भोग से वंचित हो जाएँगे और कर्म-बन्धन, काल-बन्धन एवं प्रारब्ध-बन्धन की पुष्टि-दर-पुष्टि ही होती रहेगी। दूसरा, देह की प्रतिभाओं, कलाओं आदि का देह के अर्थ के लिए समर्पण है।

एक जीवन मात्र देहार्थ है और एक जीवन देह का अर्थ जानने के लिए है। जो देह देहार्थ (देह के लिए) ही है, वह सार्थकता से बहुत दूर है। पशु-पक्षी, प्राणी जगत, जानवर, समुद्री जीव भी देहधारी हैं। इनकी देह के लिए खान-पान, रहना-सहना, बच्चे पैदा करना, जन्म-मृत्यु, मृत्यु के बाद इनकी देहों का विलय आदि सब कुछ माँ प्रकृति करती है। मात्र मानव प्रकृति का बाध करके परिस्थितियों को एक सीमा तक अपने अनुकूल कर सकता है और परमात्मा का दर्शन भी कर सकता है। पशु-पक्षियों को प्रकृति ने स्वतः उनके स्वाभावानुसार अनुकूलन दिया है और मानव को अपने अनुसार निर्माण की क्षमता प्रदान की है। पशु-पक्षी अपनी देह के लिए प्रकृति का बाध नहीं कर सकते, मानव कर सकता है। प्रकृति का बाध करते हुए देह की सुख-सुविधाओं के लिए देहार्थ जीवन जीना कोई बड़ी बात नहीं है। यदि मानव भी देहार्थ ही जी रहा है, तो वह निम्न कोटि का जीवन है।

हम मानव Source से बँधे हैं और अन्य प्राणी जगत Resource से सम्बद्ध हैं। पशु-पक्षियों को प्रकृति ने Resource में रखा हुआ है। तोता आम के पेड़ पर बैठ कर आम खाता है। पशु-पक्षी नदिया से जल पीते हैं, जो जल

का स्रोत एवं Resource है। हम मानव नल से जल पीते हैं। पशु-पक्षी सूर्य की धूप से गर्मी लेते हैं, हम हीटर आदि पर आश्रित हो जाते हैं। हमारा सारा जीवन देह व देहों के लिए संकुचित तुच्छ Source अथवा पदार्थ जुटाने में बीत जाता है। Source का Source Resource (प्रकृति के स्रोत) हैं। योगी के लिए सारा ब्रह्माण्ड, सारा समय, प्रकृति की हर विधा, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश का प्रत्येक आयाम मात्र उसी के लिए होता है। इनमें हर परिवर्तन उसके आनन्द में वृद्धि करता है। मात्र देह के अर्थ से आत्मसात् होने की चाहत जब जनून बन जाती है, तो जिज्ञासु अमर्यादित सा हो जाता है। समस्त दैहिक, बौद्धिक, मानसिक शक्तियाँ सद्गुरु के दरबार के लिए समर्पित हो जाती हैं, ताकि देह से उसे देह का अर्थ मिल जाए, यह श्रेष्ठतम एवं उच्चतम चरम समर्पण देह का समर्पण है–***''त्वदीयं वस्तुं गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पये।''*** जिज्ञासु की सम्पूर्ण देह अपने समस्त कायिक, वाचिक, मानसिक कर्मों, धर्मों, प्राप्तियों, प्रतिभाओं, शक्तियों आदि सहित सद् के चरणों में समर्पित हो जाती हैं, उसे देह का अर्थ किसी भी कीमत पर जानना है।

जो, जब, जहाँ, जैसी देह है और उसकी जैसी प्रतिभाएँ, प्राप्तियाँ, कलाएँ, शक्तियाँ आदि थीं, हैं और होंगी, उनका देह के अर्थ के लिए समर्पण भाव होने से वह धन, सम्पदा, सौन्दर्य, प्रतिभा, ख्याति, जनबल, कलाएँ, प्रतिभाएँ, ज्ञान, डिग्रियाँ आदि तुरन्त दिव्य हो जाती हैं। दिव्यता को समर्पित करने से दिव्य होंगी और सब उपलब्धियों से लब्धियाँ बन जाएँगी। उन लब्धियों सहित जब देह समर्पित होगी, तो समस्त लब्धियाँ दुर्लभ हो जाएँगी।

उपलब्धि दैहिक है और लब्धि दैवीय होती है। देह का समर्पण सीधा नहीं हो सकता। जब तक देह द्वारा, देह से प्राप्त समस्त प्रतिभाएँ, कलाएँ, उपकलाएँ, ज्ञान, धन, पद, प्रतिष्ठा आदि समर्पित नहीं होती, तब तक देह समर्पित नहीं होती। अतः देह के अर्थ के लिए देह का समर्पण अन्तिम लक्ष्य है, कि ''प्रभु यह सब कुछ तो आपका ही है मुझे देह के अर्थ से अवगत करा

दीजिए। मैं नंगा-भूखा पैदा हुआ और ऐसा ही चिता पर लिटा दिया जाऊँगा। मुझे इस देह के शव और इसकी भस्मी से आत्मसात् कर दीजिए।''

मृत्यु के बाद भी देह भाव, देहाभास के रूप में जीव की चेतना में बना रहता है। यह देहाभास ही देह के सान्निध्य में पुनः देहाधिपत्य, देहाध्यास और देहधारणा का रूप ले लेता है। सबका मूल देह भाव है। **'देहभाव'** स्वयं में अदृश्य एवं निराकार है, लेकिन देह स्वयं में साकर एवं दृश्यमान है। साकार व दृश्यमान का **'भाव'** मानस का होने के कारण निराकार एवं अदृश्य है। यह भाव ही जन्मों-जन्मान्तरों में पुष्ट, पुष्टतर, पुष्टतम होते-होते स्वभाव बनते हुए देहधारणा बन जाता है, कि मैं देह ही था, देह ही हूँ और देह ही रहूँगा। भाव, स्वभाव, धारणा, मान्यता, संस्कार आदि सब मन की हैं। मन स्वयं में अदृश्य व निराकार है, अतः ये सब भी अदृश्य एवं निराकार हैं। देह के भीतर मन नहीं है। **'मन' के भीतर देह सहित जगत है।** मानस से समय-समय पर विभिन्न स्थितियों, स्थानों, अवस्थाओं में प्रकट होता है और कुछ देर चलकर मानस में ही समा जाता है। जैसे कि रात्रि का स्वप्न मानस में प्रकट होकर मानस में ही समाहित हो जाता है।

दृश्यमान सृष्टि में, देह भाव एक साकार देह के रूप में प्रकट नहीं हुआ, क्योंकि देह जब भी प्रकट हुई, जगत सहित प्रकट हुई। अतः एक समभाव (देह भाव) प्राकाट्य में अनेकाकार हो गया। जब भी मैं देह रूप में एक होता हूँ, तो अनेक नाम-रूपों में प्रकट या अप्रकट जगत भी होता हूँ। जगत, देह सहित होता है, इसलिए जगत मुझसे भिन्न नहीं होता। **'मैं'** देह सहित जगत अथवा जगत सहित देह के असंख्य नामों असंख्य रूपों में प्रकट होता हूँ। देह नहीं होगी, तो जगत भी नहीं होगा और जगत में कोई सूक्ष्म सा आभास भी होगा, तो देह तो होगी ही।

एक देह जब जगदाधार बनती है, तो दो प्रकार का देह सहित जगत प्रकट होता है—प्रकट-प्रकट और अप्रकट-प्रकट। अप्रकट-प्रकट जगत का आधार भी देह ही होती है। निद्रा से उठते ही जैसे ही मैं अपनी देह की

अवचेतना में स्वयं को पहचानता हूँ, तो अनेक देह सहित जगत प्रकट-अप्रकट रूप में प्रकट हो जाते हैं। कोई मुगल कालीन, गुप्त कालीन इतिहास अथवा राम, कृष्ण, बुद्ध आदि अवतारों की लीलाएँ भी मेरे लिए तभी प्रकट होती हैं, जब मैं देह रूप में एक होता हूँ। निद्रा, मूर्च्छा, मृत्यु, विस्मृति और तुरिया समाधि में यह सब प्रकट-प्रकट अथवा अप्रकट-प्रकट जगत मेरी एक देह के साथ ही विलय हो जाता है। जब मैं अपनी एक विशेष देह को पहचानता हूँ, तो वह मात्र एक देह नहीं होती, बल्कि वह एक देह युगों-युगान्तरों के भूत, भविष्य व वर्तमान सहित समस्त कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का संघनित स्वरूप होती है। अतः देह भाव वस्तुतः जगत भाव है, जिसमें मेरी एक देह भी होती है। भाव मन का है अतः देह सहित जगत मन में समाहित रहता है। इसलिए जगत सहित देह भाव को लिए **'मैं'** निद्रा में जाता हूँ और देह सहित जगत भाव को लिए मैं निद्रा से उठता हूँ। किसी विशिष्ट जन्म में जीव में एक विवशता, आर्तनाद प्रकट होती है, कि इस सब कुछ का अर्थ क्या है और वह मात्र देह के अर्थ असम भाव से आत्मसात् होना चाहता है।

देह के अर्थ के लिए अर्थात् सद् की अनुभूति के लिए देह की किसी एक विधा अथवा किसी एक प्रतिभा के समर्पण में दैवीय दृष्टि से देह व देह की समस्त विधाएँ समर्पित मान्य हो जाएँगी। जब मन एवं रूह की गहराईयों से जीव आश्वस्त हो जाता है, कि देह मेरी नहीं है, मेरे लिए है और मेरे लिए क्यों है, मैं न जानता हूँ न जान सकता हूँ। तब जीव आर्तनाद करता है, कि "प्रभु ! यह देह भी तेरी है और मैं भी तेरा हूँ। मुझे इस देह का कोई सदुपयोग तो क्या उपयोग भी करना नहीं आता, मुझे जो आता है वही करूँगा। इसलिए आप ही इसका प्रयोग करें। मैं काल-बन्धन, कर्म-बन्धन, प्रारब्ध-बन्धनों के वशीभूत हुआ विवश हो चुका हूँ। मैं इनसे बाहर नहीं आ सकता।" इसके बाद ही दैवीय दृष्टि से देह का समर्पण मान्य होता है।

पहले हम स्वयं जान लें और मान लें, कि हमारा समर्पण किस श्रेणी का है—देहार्थ है अथवा देह के अर्थ के लिए सद् की अनुभूति के लिए है।

विवशता की नाद को आर्तनाद कहते हैं और यही प्रभु की वास्तविक आरती है। अश्रुओं से प्रभु का तर्पण हो। प्रभु के लिए विवशतापूर्ण तड़पन ही तर्पण है। तड़पन में **'न'** नाद का द्योतक है। **'अर्चन'** वास्तव में अर्थ के लिए किया जाने वाला नाद है। उस विह्वलता में शब्द नहीं होते, मात्र अश्रुपात होता है। मैं अपनी बेबसी और विवशता को हृदय द्वारा कितनी अच्छी तरह प्रभु को सम्प्रेषित कर सकता हूँ, यही उत्तम और उत्तमोतम उपासना पद्धति है। अराधना भी अर्थ (अरधना) न के नाद हैं। वहाँ पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक की मर्यादाओं की सीमाओं का स्वतः उल्लंघन हो जाता है। सद् की प्राप्ति के लिए इस यथार्थ देह का समर्पण दैवीय दृष्टि से मान्य होगा। यह यथार्थ देह जन्म-मृत्यु, आधि-व्याधि-उपाधि, मल-विक्षेप, काम-क्रोध आदि विकृतियों से मुक्त विरक्त देह होती है और नित्य नूतन संहार रूपी श्रंगार से सुसज्जित होती हुई जगत सहित प्रकट होती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(6 जनवरी, 3 से 16 फरवरी 2010)

अलौकिक

ईश्वर अलौकिक है, इसलिए स्वयं में आलोकित है। जो आलोकित है, वही अलौकिक है। अलौकिक देहातीत है; अर्थात् साकार देह सहित जगत की समस्त देश, काल, धर्म, कर्म, कर्तव्य, सम्बन्ध, लिंग, सुख-दुःख, लाभ-हानि, जन्म-मरण, रोग-दोष, मान-अपमान, यश-अपयश, वैर-प्रेम, ईर्ष्या-द्वेष, भय-त्रास, मल, विक्षेप, सतोगुण, रजोगुण, तमोगुण आदि विधाओं से परे है। देह सहित समस्त कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों का तथाकथित लौकिक जगत भी उस मायातीत, ब्रह्माण्डातीत एवं आलौकिक ईश्वर के आलोक से आलोकित है, इसलिए स्वयं में देह व जगत भी लौकिक नहीं, अलौकिक ही है। 'मैं देह हूँ' का भाव स्वयं में सन्देह है। इसके कारण देह सहित जगत का अवलोकन अलौकिक के आलोक से आलोकित नहीं होता। उसका आलोक किंचित आच्छादित हो जाता है और साकार देह सहित जगत की समस्त विधाएँ लौकिक हो जाती हैं। कृपया एकाग्र करें, मैं सविस्तार वर्णन करूँगा।

कोटि-कोटि साकार महाब्रह्माण्डों की युगों-युगान्तरों में विस्तृत समस्त समष्टि की एकमात्र प्रतिनिधि एवं संघनित स्वरूप एक मानव-देह है। Total totality को Individually देखने का अधिकार केवल मानव-देह को है। कुछ भी देखने और प्रतिक्रिया स्वरूप उसकी प्रशंसा, आलोचना एवं प्रत्यालोचना करने से पूर्व हमें ज्ञान होना चाहिए, कि क्या देखना है, किससे देखना है, कैसे, कब और क्यों देखना है। माया परमात्मा की है। मायापति की यह माया परमात्मा की तरह बड़ी प्रबल है। सत, रज, तम तीनों गुणों से

युक्त यह माया ईश्वर द्वारा रचाया गया खेल मात्र है। एक ही प्रकार के दृश्यों को देखते हुए उसका मानस पुत्र जीवात्मा बोर न हो जाए, इसलिए नित नूतन यह देह सहित मायिक जगत विभिन्न गुणों में क्षण-क्षण परिवर्तनशील है। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की समस्त ईश्वरीय माया जो 84 लाख योनियों में है—वह माया साकार एवं दृश्यमान है। इस समस्त ईश्वरीय माया का संघनित रूप एक मानव-देह है, उससे ईश्वर ने अपने मानस-पुत्र जीवात्मा को नवाज़ा है। यह मानव-देह अति चमत्कारिक, परम रहस्यमयी, समस्त प्राणी जगत में परम विलक्षण व सर्वोत्कृष्ट ईश्वरीय सुकृति है। अतः मानव-देह भी स्वयं में अलौकिक, आलोकित व अपौरुषेय है।

जीवात्मा स्वयं में निराकार एवं अदृश्य ब्रह्मात्मा का उसी के जैसा आनन्दमय मानस है और इसकी एक मानव-देह सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की प्रतिनिधि है, जिसका अवलम्बन लेकर दृष्टा जीवात्मा ही पंच-महाभूतों के साकार मायिक प्रपंच की अलौकिकता के आलोक का आनन्दमय अवलोकन करता है। ईश्वर की सृष्टि में कुछ भी लौकिक, लोकाचार या लोक व्यवहार नहीं है। हर दृश्य अलौकिक है और ईश्वरीय दिव्य आलोक से आलोकित है। लेकिन जो ईश्वर के आलोक से आलोकित नहीं है, वह अलौकिक नहीं होगा। "How does it look like" अंग्रेज़ी का लुक शब्द **'लोक' व 'लौकिक'** का द्योतक है। Look वाली बाह्य लौकिक दृष्टि इस आलोक की अलौकिकता नहीं देख सकती। अलौकिक के लिए अंग्रेज़ी में शब्द नहीं है। अवलोकन हिन्दी शब्द है और अवलोकन लौकिक और अलौकिक दोनों दृश्यों का होता है। प्रश्न उठता है, कि **'मैं'** (जीवात्मा) मानव-देह रूप में अलौकिक से लौकिक और आलोकित से आच्छादित व अन्धकार युक्त कैसे हो गया ? अलौकिकता के आलोक में मेरा विचरण अलौकिक था। लोकाचार के कारण मैं जीव-सृष्टि में पशुवत् चरने लगा। इसके आलोकित व अलौकिक अवलोकन के लिए देहातीत, निराकार व अदृश्य दृष्टा जीवात्मा की पूर्ण आलोकित सम्यक् दृष्टि अपेक्षित है। ब्रह्ममय अलौकिक आलोक 'मैं देह हूँ' के भाव में आच्छादित होकर धुँधला

सा होते हुए लौकिक एवं भ्रममय हो जाता है। **'भ्रम'** वहाँ होता है जहाँ न तो पूर्ण प्रकाश हो, न पूर्ण अन्धकार हो। स्पष्ट दृष्टिगत होना ही पर्याप्त नहीं है; जो दिखाई दे रहा है, वह कैसा लग रहा है; यह महत्त्वपूर्ण है। उसका मात्र अवलोकन न पर्याप्त है और न आवश्यक है। उसके अलौकिक होने का प्रमाण मुझे अवलोकन के बाद के **'लगने'** पर निर्भर है। अवलोकन से **'मैं'** आनन्दित होता हूँ अथवा भ्रमित होता हुआ खिन्न, विक्षिप्त, भयभीत, त्रसित और उद्वेलित हो जाता हूँ। यह मेरी दृष्टि नहीं मेरे दृष्टा स्वरूप पर निर्भर करता है। **'मैं'** इष्ट व सद्‌गुरु की प्रेरणा से मात्र श्रुतिगम्य यह विषय अनावृत कर रहा हूँ। आध्यात्मिक इतिहास में परम जिज्ञासु एवं आशीष्य श्रोताओं एवं पाठकों के लिए इस श्रुतिगम्य विषय का अनावरण प्रथम बार सहज, सरल एवं बोधगम्य शैली में मात्र आत्मानुभूति एवं ब्रह्मानुभूति के आधार पर किया जा रहा है। आपकी अति श्रद्धा एवं एकाग्रता परम वांछनीय है।

सम्पूर्ण कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की समस्त मायिक सृष्टि का कण-कण अलौकिक एवं आलोकित है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है, कि मुझे वह मानव-देह स्वतः अकारण कृपावश प्रभु ने दी है। जिसका रोम-रोम और समस्त संरचना, पालन एवं संहार अलौकिक द्वारा ही होता है। जितना जप, तप, तीर्थ-यात्रा, ध्यान-धारणा, प्राणायाम-प्रत्याहार, भजन-कीर्तन, यज्ञ-हवन, सद्‌गुरु-सेवा और कृपा का परम लक्ष्य यह है, कि इस सृष्टि के कण-कण में व्याप्त अलौकिक के आलोक के अवलोकन में सब कुछ और कुछ भी को मैं वैसा ही (तदर्थ) देखूँ, जैसा वह है। यह अवलोकन की औपचारिकता नहीं आवश्यकता है। अवलोकन करने वाला **'मैं'** (जीवात्मा) जब तक स्वयं में आलौकित नहीं होगा, तब तक वह इस अलौकिक लीला का रसास्वादन नहीं कर सकता। यहाँ खिन्नता, विक्षेप, भय, त्रास और उद्वेलन का कोई कारण नहीं है।

लौकिक भ्रम है और अलौकिक ब्रह्म है। ब्रह्म का अवलोकन भ्रमपूर्ण व आच्छादित दृष्टिकोण एवं मलिन दृष्टि से नहीं किया जा सकता। 'मैं देह हूँ'

भाव की मलिनता से अलौकिक व आलोकित दृष्टा (मैं) का आलोक आच्छादित होते ही **'जीवात्मा, देह, नाम-रूप जटिल्य'** रूप में जड़-चेतन की ग्रन्थि बन गई। इससे दृष्टा की दृष्टि धुँधली होते हुए भ्रमित व लौकिक हो गई। वस्तुतः यह दृष्टि-दोष न होकर दृष्टा-दोष था। निराकार व अदृश्य जीवात्मा साकार व दृश्यमान देह रूप दृष्टा हो गया और उसका दृष्टिकोण असम्यक् व प्रदूषित हो गया। इसके बाद हर अवलोकन में दृष्टि-दोष होना स्वाभाविक ही था। अतः प्रत्येक दृश्य इसके लिए दोष, मलिनता व विक्षेप युक्त ही होता है। इससे उसकी देह का यथार्थ, आत्मत्व एवं ईश्वरत्व तीनों एक साथ आवृत हो गए।

ब्रह्म स्वयं में अलौकिक एवं आलोकित है, ब्रह्म का माया में प्रकाट्य भी अलौकिक एवं आलोकित है तथा इसका अवलोकन भी परम आनन्दमय एवं दिव्यतापूर्ण है। समस्त भ्रम का निवारण और ब्रह्म का अवलोकन ही अनावरण की परिभाषा एवं प्रमाण है। भ्रम के निवारण का प्रमाण यही है, कि मुझे हर तरफ ब्रह्म ही ब्रह्म का अवलोकन हो। भ्रम आवरण है और भ्रम के निवारण के बाद अवलोकन आवश्यक नहीं है लेकिन भ्रम के निवारण के बाद ही ब्रह्म ही ब्रह्म अवलोकन की सिद्धि होगी। यही अनावरण का प्रमाण, पुष्टि एवं सत्यापन है।

सद्गुरु कहता है, कि ''तू ब्रह्ममय अलौकिक देह सहित साकार कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों के अवलोकन से आलोकित हुआ है अथवा तू स्वयं में पूर्ण, अखण्ड, अनादि, अनन्त अपने स्वरूप ब्रह्मात्मा के एकमात्र मानस पुत्र जीवात्मा के अलौकिक आलोक से आलोकित होकर अवलोकन कर रहा है—तेरे भ्रम का निवारण और ब्रह्म का अनावरण इन दोनों तथ्यों पर निर्भर है। जहाँ तेरा स्वरूप आच्छादित हुआ, वहीं तेरी देह का यथार्थ और ईश्वर का ईश्वरत्व भी तेरे लिए आच्छादित हो जाता है। तीनों एक साथ आवृत होते हैं और अनावरण भी एक ही साथ होता है। भगवत्ता इसमें हस्तक्षेप नहीं करती, क्योंकि भगवत्ता स्वयं में आवरण व अनावरण से परे है और दोनों का **'सद्'** एक ही है। लेकिन भगवत्ता अति कृपालु होते हुए आर्त जनों एवं

विवश जीवों की विवशता से करुणार्द्र होकर जब हस्तक्षेप करती है, तो स्वयं में अलौकिक व आलोकित सृष्टि में दिव्य स्वरूप सद्‌गुरु के रूप में प्रकट हो जाती है। वह पार ब्रह्म परमेश्वर उस रूप में अपने लौकिक स्वरूप में आ जाता है। वह कृपावश लौकिक को अपने अलौकिक आलोक से आलोकित कर देता है और अपनी माया के अवलोकन की निःसन्देह दृष्टि दे देता है। उसका दृष्टा-दोष दूर कर देता है। वह दिव्य स्वरूप में विदेह होते हुए भी नाम-रूप धारी महापुरुष या संत के रूप में सदेह होता है और जीव के भ्रम का निवारण करके उसे अनावृत करता हुआ आलोकित कर देता है।

सद्‌गुरु कहता है, कि "तू सच्चिदानंद ईश्वर की इकलौती सन्तान जीवात्मा है, तू जीव नहीं है। ईश्वर अदृश्य एवं निराकार है और तू उसका मानसपुत्र भी अदृश्य एवं निराकार है। तू यहाँ कुछ करने नहीं बल्कि अपने पिता परमात्मा द्वारा रचाई गई सृष्टि का रसास्वादन करने वाला दृष्टा मात्र है। पंच-महाभूतों में निर्मित, पालित एवं संहारित कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों के जादू भरे प्रपंच अथवा इन्द्रजाल का रसास्वादन करते हुए तू इसमें फँस न जाएँ इसके लिए ईश्वर ने तुझे मानव देह कुछ निर्देशों के साथ दी है। "हे जीवात्मा ! मैं तुझे एक साकार मानव-देह दे रहा हूँ, उसका एक-नाम एक-रूप होगा। वह नाम-रूप तेरा नहीं होगा। मेरी साकार संरचना का जादू सिर चढ़ जाता है, तू इसमें फँस मत जाना। तू दृष्टा बनकर मायिक सृष्टि की 84 लाख विधाओं का रसास्वादन करना और यह मत भूल जाना, कि इस समस्त साकार प्रपंच का निर्माता, पालनकर्ता और संहारकर्ता होने के साथ-साथ मैं (ईश्वर ही) **'महादृष्टा'** भी हूँ।"

"मेरे युवराज ! मैं (ईश्वर) तुम्हें (जीवात्मा को) हर पल देखता रहता हूँ और देखता रहूँगा। तू (जीवात्मा) मेरे **'दृष्टत्व'** का प्रतिनिधि मात्र है। इसके अतिरिक्त मैं (ईश्वर) तुम्हें (जीवात्मा को) कोई और अधिकार नहीं दे रहा हूँ। तुम्हें बस देखना है और मेरे द्वारा रचाई गई, पालित एवं संहारित सृष्टि की सभी विधाओं में मेरी असंख्य बहुआयामी कलाओं के प्रदर्शन का दर्शन करते हुए मात्र वाह-वाह करनी है। किसी मानव को मैंने स्वतन्त्र **'दृष्टत्व'** नहीं

दिया। मैं (परमात्मा) जो दिखाऊँ, तुझे (जीवात्मा को) वह देखना है। तुझे बहुत कुछ नज़र आएगा, लेकिन तू मात्र वही देखना, जो मैं तुझे दिखाऊँगा।'' **अकर्ता बने बिना कोई भी दृष्टा नहीं बन सकता।** सर्कस का खेल या जादू देखने के लिए दृष्टा को **'दर्शक दीर्घा'** में स्थिर होकर बैठना होगा। जो अच्छे जादूगर होते हैं, वे अपने शिष्य को जादू का एक छोटा सा नुक्ता बता देते हैं, जिससे वह जादू का रहस्य जान ले। इसी प्रकार उस परम खिलाड़ी एवं जादूगर परमात्मा ने अपने इकलौते मानस पुत्र जीवात्मा को साकार मानव-देह देते हुए उस देह का निश्चित, परिलक्षित व दर्शित निराकार स्वरूप (भस्मी) प्रत्यक्ष दिखा दिया। संसार महानाट्यशाला का खेल प्रसन्न मन से आनन्दित, हर्षित, विस्मित, अचम्भित, हतप्रभ एवं उत्सुकता से देखने के लिए जीवात्मा को देह के दौरान अपनी देह की भस्मी (अन्तान्त) से नित्य थोड़ी देर आत्मसात् होना पड़ेगा। तभी वह अपने स्वरूपयुक्त होकर स्रष्टा (परमात्मा) द्वारा रचाए गए खेल की वाह-वाह कर सकेगा। संसार महानाट्यशाला की दर्शक दीर्घा में बैठने के लिए देह का अन्तान्त (भस्मी) ही टिकट है, ताकि माया का जादू सम्मोहित एवं प्रभावित न कर सके।

ईश्वर ने स्पष्ट दिखाया, कि देह की **'भस्मी'** अवश्य बनेगी और कभी भी बन जाएगी। इसलिए परमात्मा ने अपने युवराज (जीवात्मा) को निर्देश दिए, ''मेरे लाडले ! तू कभी निर्माणकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता मत बनना, बस तू मात्र देखना। तू दृष्टा बनना लेकिन देखते हुए यह जान लेना, कि मैं (ईश्वर) महादृष्टा भी हूँ। कोटि-कोटि महाब्रह्माण्डों की समस्त माया जो युगों-युगान्तरों में थी, है और होगी, उस समस्त निराकार एवं साकार सृष्टि की प्रतिनिधि और संघनित रूप सर्वोत्कृष्ट मानव-देह मेरे द्वारा ही निर्मित, पालित एवं संहारित है। तुझे इस देह का अवलम्बन लेना होगा। इस देह में यदि तू तद्रूप होकर सन्देह में फँस जाए, तो इसी देह के अन्तान्त (भस्मी) को पकड़ लेना। दोस्ती और दुश्मनी बराबर वालों के साथ अच्छी लगती है। जिस देह से मैं (ईश्वर) तुझे नवाज़ रहा हूँ, उसमें एक ही अवस्था है जो निश्चित, दर्शित और परिलक्षित है, वह है–देह की भस्मी। यह अवस्था

तेरे जैसी है। तू उससे दोस्ती कर लेना। तू नित्य सुबह उठते ही कुछ क्षण देह के अन्तान्त से आत्मसात् होना, तो तू सब कुछ आनन्द में देखेगा, अन्यथा मेरी माया के जादू में तू भी भ्रमित होकर भटक जाएगा। मेरी यह माया मेरा जादू का खेल है, जो बहुत कुछ होते हुए भी कुछ नहीं है। यदि तूने देह का अन्तान्त नहीं देखा, तो तू स्वयं कर्ता बनकर खुद को भूल जाएगा और जब तू खुद को भूल जाएगा, तो मुझे तो भूलेगा ही।''

''संसार में जो मैं तुझे दिखाना चाहता हूँ, वह न देखकर वह देखेगा जो तू देखना चाहेगा। तेरी बुद्धि खराब हो जाएगी। तू कर्ता बन जाएगा। तू वह सुनेगा, वह चखेगा जो तू सुनना व चखना चाहता है। हर रोज़ तेरे भाव बदलेंगे, तो तू मेरी रचाई सृष्टि की आलोचना प्रत्यालोचना करने लगेगा। तू स्वयं वह सामान एकत्र करने लगेगा, जो तेरे लिए स्वतः समय-समय पर प्रकट होना है। मेरे न चाहते हुए भी तू मुझसे विमुख सा होकर जड़ हो जाएगा। मुझसे विमुख होकर तू मेरी सम्मुखता का भी लाभ नहीं उठा सकेगा और न चाहते हुए भी मुझे तेरे ऊपर प्रारब्ध का केस चलाना पड़ेगा। इसलिए तू अपनी देह के अन्त का अन्त पकड़ लेना। वह तुझे अन्य देहों का नज़र आएगा, लेकिन अपनी देह में तुझे नज़र नहीं आएगा। तू उसे परख लेना, कि वह सबका एक ही है, ऐसा ही तेरी देह का भी होगा। उसका कोई नाम, रूप, जाति, धर्म, कर्म, कर्तव्य, लिंग, सम्बन्ध, पद, प्रतिष्ठा, देश, काल कुछ नहीं है, लेकिन वह है, है और है ही। यह भस्मी करोड़ों महाब्रह्माण्डों के अन्तान्त को समेटे हुए है। वही तेरी देह के आरम्भ का आरम्भ है और अन्त का अन्त है। तू एक आध घण्टा नित्य उसके साथ आत्मसात् होकर बैठना, तुझे बहुत आनन्द आएगा, क्योंकि जो तेरे गुण हैं, वही भस्मी के भी गुण हैं। देह की समस्त कार्यप्रणालियाँ ईश्वर के हाथ में हैं, बुद्धि तुझे इसलिए दी थी, कि तू सोच कि तेरे हाथ में कुछ नहीं है, सब कुछ परमात्मा के हाथ में है। तू **'कुछ नहीं'** (भस्मी) पकड़े रखना। फिर तू बिना भ्रमित हुए विश्व के समस्त प्रपंच का आनन्द लेगा। राजपाट आएँगे-जाएँगे, जन्म-मरण होता दिखाई देगा, तू उन सबका आनन्द लेगा।''

उसके बाद हर दृश्य का अवलोकन उसे अलौकिक व आलोकित करता है और तदनुसार ही नज़र आता है। ईश्वर अदृश्य तभी तक है, जब तक **'मैं'** (जीवात्मा) आच्छादित है और अपने स्वरूप बह्म के आलोक से आलोकित नहीं हूँ। भ्रम का निवारण होने पर **'मैं'** (जीवात्मा) का दर्शन होते ही मुझे प्रत्येक दृश्य में तू ही तू (ईश्वर) का अवलोकन होता है और मेरी वह देह स्वयं में जीवात्मावतरण व अनावरण का प्रमाण होती है। जब मैं देह के साथ नाम-रूप की तद्‌रूपता में सदेह होता हूँ, तो सन्देह युक्त होता हूँ। मेरा दृष्टा सन्देह युक्त होकर अपनी अलौकिकता एवं आलोक खो बैठा मेरे लिए ब्रह्म भी भ्रम बन गया। निःसन्देह में कोई भ्रम नहीं है, वह बह्म है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(12 मई 2010)